



उत्सुक, जाग्रत !  
भारतीय विद्या मंदिर  
बीकानेर

१० -  
स्वामी विवेकानन्द  
का  
हिन्दू-राष्ट्र को अमर संदेश

संस्करणकर्ता  
एकमाथ एनडे  
मनुबाबक  
देवेन्द्रवर्मा अग्रवाल

प्रकाशक :

मानु प्रताप धुवस

'राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन'

भारतीय संस्कृति पुनरुत्थान समिति उत्तर प्रदेश

लखनऊ

•

तृतीय संस्करण

(संगोपित एवं परिष्कृत)

मूल्य ₹ १० पैसा मात्र

•

मुद्रक :

जवाहा प्रसाद चतुर्वेदी

इपरीत प्रेस

वीरमबुद्ध मार्ग

लखनऊ

## प्रकाशकीय निवेदन

अपन बेशबाधियों के सम्मुख यह पुस्तक प्रस्तुत करत हुए हमें अतीव हर्ष हो रहा है। निश्चित ही पूज्य स्वामी जी के जन्मशताब्दी समारोह के अवसर पर अनेक सुप्रसिद्ध लेखकों द्वारा उनके श्रेष्ठ जीवन से सम्बन्धित प्राप्य साहित्य में वृद्धि होगी। फिर भी हमन पूज्य स्वामीजी के विचारों और उपदेशों को प्रतिपादित विषय की सीमित मर्यादाओं में पूरा संक्षिप्त परन्तु सुस्पष्ट रूप से रखने का प्रयास किया। हम समझते हैं कि यह पुस्तक पूज्य स्वामीजी के जीवन अथवा कार्यों पर उपलब्ध अनेक पुस्तकों में और एक की संख्या-वृद्धि न हाकर उनके अपने ही शब्दों में उन भावों का एक अभिन्न विवेचन है, जिसके लिये आजीवन कर्मरत रहकर उन्होंने प्रायात्सर्ग किया।

निस्संदेह पुष्प सुन्दर होते हैं परन्तु श्रेष्ठ रीति से सुम्पित पुष्प-माला प्रत्येक पृषक-वृषक पुष्प की सुन्दरता क पूर्णयोग स भी अधिक सुन्दर होती है और उसका श्रेय उस कुशल मासी को ही दिया जा सकता है जिसने उन्हें अत्यन्त सुन्दर रीति से प्रस्तुत पुस्तक में सुम्पित किया है। स्वामीजी के प्रेरणादायी विचारों को श्रेष्ठ रीति एवं संक्षिप्त रूप में सकलित करन का श्रेय सकलनकर्ता की एकनाप रणडे की विषय का सुस्पष्ट ज्ञान एवं उनमें अन्तर्निहित भावों का मर्म समझन की शक्ति का है। स्वामी विवेकानन्द द्वारा उद्घोषित पुनर्जागत भारत के आदर्श के प्रति पूर्ण समर्पण एवं ठाणारम्य भाव के कारण ही वे इस कठिन कार्य को योग्य रीति से सम्पादित कर सक। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में आधिकारिक से ही विभिन्न उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुये (जिसमें सरकार्यवाह का दायित्व भी शामिल है) भारने राष्ट्र की सेवा की है पानकार पाठकों क लिये उसका उत्प्रेषण यहाँ आशयक नहीं।

आज जब कि सम्पूर्ण विश्व असीम उस्ताह के साथ उस महापुरुष की पुण्य-स्मृति में अपनी विनीत श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने जा रहा है हम अपनी ओर से इस पुस्तक के रूप में एक छोटी सी भेंट उस महामानव के चरणों में समर्पित करने में हार्दिक आनन्द का अनुभव करते हैं। यदि यह पुस्तक पाठकों के हृदय में पीरूप सेवा और समर्पण का भाव उत्पन्न कर उन्हें अपनी मातृभूमि के प्रति अपने कर्तव्यपालन की प्रेरणा देने में सहायक हो सके तो हम अपने इस प्रयास को पूर्णतः सफलमूलक समझेंगे।

स्वदेश प्रेस सचमठ के संचालकों की तत्परता के कारण ही अत्यल्प समय में पुस्तक का यह हिन्दी संस्करण पाठकों को प्राप्त हो सका इसके लिए हम हृदय से उनके अमारी हैं।

कानपुर

—प्रकाशक

मकर संक्रान्ति सं० २०१६



## तृतीय संस्करण की मूमिका

उत्तिष्ठत आग्रह के विगत दो संस्करण इतनी धीमती से समाप्त हो गये कि बनेक बडासु पाठकों को स्वामीजी के प्रेरणादायी सन्देशों से बञ्चित रह जाना पड़ा। विचारहीन पाठकों के अत्यधिक आग्रह का ही यह परिणाम है कि अन्य बनेक प्रकाशनों को स्वयित कर हमें बाध्य होकर यह कार्य प्रथम ही करना पड़ा। वर्तमान संस्करण को पूर्ववर्ती दोनों संस्करणों से अधिक आकर्षक एवं बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है। उत्तिष्ठत आग्रह के इस तृतीय संस्करण के प्रकाशन का सीमाप्य प्रदान करने के लिए हम पूर्ववर्ती प्रकाशक श्री मंसाराम श्री कुप्त के हृदय से आभारी हैं। उन्हीं की कृपापूर्ण अनुमति से हमें यह सत एवं महत्कार्य करने का सुभवसर मिल सका है।

आशा है इस संस्करण का भी वैशमक्त जनसमाज उत्तुक्त अन्त-करण से स्वागत करके हमें बल प्रदान करेगा।

मकर संक्रान्ति  
सम्बत् २०२१ वि०

}

—प्रकाशक



## सकलनकर्ता की ओर से

आज से सी बर्ष पूर्व अवतरित स्वामी विवेकानन्द की जन्म शताब्दि  
 मनाये के लिए सम्पूर्ण देश में बड़े उत्साह के साथ तैयारियों की जा रही हैं  
 अथ उस महान् योपी के जीवन एवं उसके उपदेशों को पुन अभ्ययम एक  
 मनन करने की प्रवण इच्छा भी समाज में उत्पन्न होना स्वाभाविक है। श्री  
 रामकृष्ण परमहंस के महान् सिष्य के रूप में विद्यत छ. लताश्रियों में वे प्रथम  
 हिन्दूधर्म प्रचारक संन्यासी थे जो देश-देशांतरों में गये और जिन्होंने हिन्दू  
 राष्ट्र के सनातन-धर्म का संबन्ध पुन विश्व को दिया। एक महान् देशभक्त  
 समाज-सुधारक और संगठक के अतिरिक्त राष्ट्रीय पुनरुत्थान की शक्तियों को  
 संपष्टि एवं परिष्कृत करने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे और उन्होंने अंग्रेजी  
 शासन के प्रथम आघात से किष्ट धवित और परामुठ राष्ट्र के पुननिर्माण का  
 पथ प्रशस्त किया। उन्होंने ही देश को उसके अेतना-केन्द्र—'धर्म के प्रति  
 आपरक कर पुनर्धित भारत की आभार-तिसा रखी और आध्यात्मिक भारत  
 के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने इस बात का बृह स्रणों में प्रतिपादन  
 किया कि केवल धर्म के चारों ओर ही हिन्दू राष्ट्र को उसके सव्यानुकूल दिशा में  
 प्रभावकारी रूप से संपष्टि किया जा सकता है।  
 पर जिस समय भारतीय जन-समाज उक्त महापुरुष के प्रति अपनी विनम्र  
 यज्ञाञ्जलि अर्पित करते हैं, तैयारी कर रहा था और शताब्दि समारोह  
 समितियों कुछ सक्रिय हुई थीं तभी राष्ट्र को प्रवण पश्चा सया और उसने यह  
 अनुभव किया कि उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति उत्तर से आये विश्वपाठी और बर्बर  
 शत्रु के संपष्टि आक्रमण का प्रतिहार करने में सपानी है। एक ओर तो चीन  
 शाप हमारे ही धीने हुए भूमण के बारे में समझौता एवं मीनी-वार्ता के आश  
 रण में भी यदि लघुता मुठ की तैयारियाँ सया बुरही ओर हमारे साधकों की



स्वप्नित और कास्मिक अवस्था में विपरम करने की प्रवृत्ति के कारण उस समय वेद पूर्वतया झुका-झुका रह गया जब तन्मू ने हिमालय को साँच कर व्यापक एवं नम आक्रमण किया ।

आज की यह परिस्थिति स्वामी विवेकानन्द के सन्देश को एक नया महत्व प्रदान करती है । इसका कारण यह है कि उनका सन्देश शक्ति का वा जिसमें शारीरिक शक्ति मानसिक शक्ति और इच्छा-शक्ति का समावेश किया गया था । यही शक्ति आज के समय की सबसे महती आवश्यकता है । स्वामी विवेकानन्द ऐसे राष्ट्र-शरीर की रचना करना चाहते थे जिसकी संसोधियाँ मोहि की ओर घिराएँ इस्पात की बनी हों और उसके अन्दर ब्रह्म के समान मस्तिष्क हो । वे अपने देशवासियों के अन्दर शक्ति पीस्य धर्मिय-वीर्य के साथ ही ब्रह्म-देव का आरोपण कर उसका विकास करना चाहते थे । संसोध में यही वे वस्तुएँ हैं जिनकी इस विनाश और संकट के काल में हमें सर्वाधिक आवश्यकता है और यही वे गुण हैं जिनकी स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् विदेशों से उधार लिए गए शौचिकवादी दर्शन और ऐहिक जीवन को ही सार सर्वस्व समझने के कारण हमारे द्वारा उतर् अचहेसना एवं उपेक्षा की गयी है ।

यदि हम संसोध में स्वामीजी की शिक्षाओं का निरूपण करना चाहें तो हम यही कहेंगे कि उन्होंने हमें एक महान् मंत्र दिया और वह मंत्र यह कि ईश्वर में विश्वास करो । अपने आपमें विश्वास करो । अपने आपमें विश्वास का भाव उपनिषदों के इस महान् सत्य पर आधारित है जो उद्घोष करता है कि 'मैं आत्मा हूँ मुझे समझार काट नहीं सकता कोई तस्म छेद नहीं सकता अग्नि जसा नहीं सकता और न वायुमुखा सकता है । मैं सर्व-व्यापक हूँ मैं सर्वत्र हूँ यही वह मंत्र है जिसे स्वामी विवेकानन्द अपने देशवासियों के गानों में उल्लेख करते रहे । उन्होंने जो कुछ कहा जसका उपदेश किया उसका आधार यही मंत्र था । यही समय है जब हमें इस मंत्र के आध्यात्मिक अर्थ को हृदयंगम कर उसका अनुसरण करना चाहिए । यदि हमने ऐसा किया तो पृथ्वी पर विद्यमान कोई शक्ति हमें पराभूत नहीं कर सकेगी ।

उन्होंने इसके पश्चात् घोषणा की कि मोक्ष प्राप्ति के लिए हमें पहले अपने धर्म का पालन करना होगा । बस्तुतः धर्म के बिना मोक्ष प्राप्ति हीनी भी नहीं । आज जबकि आने अज्ञान के कारण हमें अपना धर्म भ्राम्यस्त प्रतीत हो रहा है दम सत्य का पुनरावर्ण और भी अधिक आवश्यक हो गया है । दम प्रकार वास्तव में उन्होंने न केवल गृहस्थ के जीवन को पुनर्धर्मित

क्रिया बरम् जसे एक महीन गौरव भी प्रदान किया। उन्होंने अपने देगवासियों को उन शक्तियों का स्मरण बिसामा जो 'धीर भोम्या बसुम्परा' का उद्घोष करते हैं और धीर-वृत्ति को प्रगट करने का आदेश देते हैं। स्वामी जी हमें यह स्मरण रखने का निर्देश देते हैं कि शास्त्रों में हमें उन नैतिक परिस्थितियों की शिक्षा मिलेगी जहाँ हमें कार्य करना है। सत्ता की स्वीकार करके चलने की कहा गया है। अपनी परिस्थितियों एवं बातावरण को इस प्रकार स्वीकार करके ही हम उनका सुधार करने एवं उन्हें उभार उठाने की प्रकृति कर सकते हैं। अब स्वामीजी ने अपने देगवासियों से शास्त्राग्राह्य के स्मरण न करने का आग्रह कर कहा कि परिस्थितियों के अनुरूप साम-व्याय संघ और मेव के राजनीतिक उपायों का उपयोग कर अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त करते हुए संसार का उपभोग करो तथा तुम अपने धार्मिक बंधुओं को भी अपने ही हितानुसार कोई भी व्यक्ति तुम्हें कुल्हारे या अपमानित करने से बचाओ। यह भी बताना है कि नरकमय ही ही प्रायगा परलोक भी सुखमय नहीं हो सकेगा।

अपने इतिहास के उस कठिन काल में जबकि सम्पूर्ण राष्ट्र अपनी अमूल्य स्वाधीनता अपनी श्रेष्ठ जीवन प्रणाली अपने स्वयं और अपने प्रतिष्ठान की रक्षा के लिए उठाने को बाध्य हुआ है, स्वामीजी का यह संदेश हमारे विषय को दुःख एवं हमारी शिराओं को बन्धन-मुक्त बनाने में बहुत अधिक सहायक होगा। उन्होंने पुनः हमें सन्देश दिया कि भारत की राष्ट्रीय एकात्मता के लिए विभिन्न साम्प्रदायिक शक्तियों के एकत्रीकरण द्वारा ही संभव है। उनका मत था कि 'भारत के राष्ट्रीय ऐश्वर्य के लिए समान साम्प्रदायिक राष्ट्र से संघटित रूपों का मिलन अनिवार्य है। इस संदेश का हमें विशेष रूप से ध्यान देना होगा विशेषकर आज की परिस्थिति में जब कि राष्ट्रीय एकात्मता और राष्ट्र की सम्पूर्ण शक्तियों का स्वरित सक्रिय होना सबसे बड़ी आवश्यकता बन गयी है।

स्वामीजी ने हिन्दू-राष्ट्र को एक और संदेश दिया। उन्होंने हमें अपने हृदयों के अन्तः-जगत् को दूर करने का आह्वान किया। इसका कारण यह है कि हम अपना अन्तः ही शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता कटिबन्धित मानसिक सुदृढता पारस्परिक कसह और हृदय-धीरत्व जैसे दोषों को उत्पन्न करता है। इन दोषों से मुक्त होकर हम अतिशय संगठन और एकात्मता की बन

बट्टान लड़ी करके अपनी पूषक-मृषक इच्छाओं के समन्वयीकरण द्वारा अतीत से भी थोड़ा भविष्य का निर्माण करने में सफल हो सकेंगे। स्वामीजी का यह संदेश भी अत्यन्त सामयिक है। इसका कारण यह है कि जिस संकटपूर्ण स्थिति का हम सामना कर रहे हैं ऐसे समय में ही राष्ट्रों को आत्म-निरीक्षण और अतीत का पुनर्बीक्षण करने का अवसर मिलता है।

समय की इसी आवश्यकता-पूर्ति के लिए इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। स्वामीजी के उपदेशों और लेखों में दर्शन बर्न समाज-शास्त्र और कला संगीत एवं पुरातत्व संबंधी सामग्री भी समाविष्ट है। इस प्रकार उनके द्वारा प्रतिपादित विषय लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों से सम्बद्ध हैं। किन्तु इस पुस्तक के प्रकाशन का सीमित उद्देश्य होने के कारण समूहों का संकलन किया गया है जो अपने अतीत की गौरव-भाषा से संबंधित हैं और जिनमें राष्ट्र की दुरवस्था के कारणों का विवेचन करते हुए स्वधर्म एवं उज्ज्वल भविष्य निर्माण करने का संकेत किया गया है। अतः उनके उपदेशों और लेखों को विषय के अनुसार एकरूपता प्रदान करने के लिए नए सिरे से क्रमबद्ध किया गया है। साथ ही सार्वकालिक और सार्वभौमिक महत्त्व के उन लेखों का चयन किया गया है जिन्हें उनके मूल भाव से पूषक करने पर भी वे अपना अर्पण न लो बैठें।

इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य केवल स्वामीजी के इतरतर-विचारों का संकलन कर उनके संदेश को बिना किसी व्याख्या के उनके लेखों में ही प्रस्तुत करना था। अतः प्रस्तुत प्रत्येक पंक्ति स्वामीजी के अपने शब्द है। संकलनकर्ता ने केवल सामग्री को क्रमबद्ध करते हुए विषयानुसार उनका चयन करना मात्र किया है। इसी प्रकार विषय को स्पष्ट करने के लिए कठिन स्थलों पर सर्वनाम के स्थान पर संज्ञा का प्रयोग किया गया है। अतः पाठकों को स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्रत्येक अंश को सङ्ग्रह के रूप में क्यों नहीं दिया गया। भारत में ही पूरी पुस्तक ही उद्धरण के रूप में है। इस पुस्तक की सामग्री के चयन के लिए 'अद्वैत धाम' द्वारा प्रकाशित "The Complete Works of Swami Vivekanand Life of Swami Vivekanand" by His eastern and western disciples जैसे अप्रिच्य लेखों तथा पूष्य स्वामीजी के जीवन-नाम से ही प्रकाशित होने वाले 'प्रबुद्ध भारत' 'ब्रह्मचरिन्' और 'उद्बोधन' के पुराने अंकों के साथ ही वार्षिकीय कविपय पत्र-पत्रिकाओं का भी आशय दिया गया है।

पुस्तक का बर्णोकरण सामग्री के अनुसार चार विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है ये हैं—(१) संदेश (२) संभाव्य प्रवचन एवं सेखों से संकलित (३) चिन्तन-कृम एवं प्रताड़ना तथा (४) मनुष्य-निर्माण अथवा कार्यकर्ताओं का गठन ।

(१) संदेश—पुस्तक का यह भाग मुख्य रूप से पूज्य स्वामीजी के राष्ट्र चिन्तन से सम्बन्धित है । यह एक प्रकार से स्वामीजी द्वारा प्रतिभाषित 'वीक्षित' है और वैसे कि ठहर कहा जा चुका है यह उनके असंख्य माधवों, बाठस्तापों पत्रों और सेखों में से संकलित किया गया है । यद्यपि यह विभिन्न स्थानों से लिए गए लेखों का एकत्रीकरण मात्र है तथापि इन्हें 'मुद्रायक-कर्म' के समान इस ढंग से संजोया गया है जहाँ यह पूज्य स्वामीजी के विचारों का स्वतंत्र रूप मान हो ।

(२) संभाव्य, प्रवचन एवं सेखों से संकलित—इस भाग में अत्यन्त महत्व पूर्ण विषयों पर स्वामीजी द्वारा व्यक्त किए गए उन विचारों की समाहित किया गया है जो उनके 'संदेश' से सम्बन्धित तो बरबस हैं पर जिनको प्रथम भाग में समाहित न किया जा सकता था अथवा जिनका उल्लेख मात्र उक्त भाग में किया गया है ।

(३) चिन्तन-कृम एवं प्रतरङ्गता—इस अध्याय में सम्मिलित उद्धरणों का उद्देश्य पाठकों को स्वामीजी के मस्तिष्क की चिन्तनशीलता एवं हृदय की अनुभूतियों से परिचित कराना है । इन लेखों का मनन पाठकों को किसी भी समस्या के प्रति स्वामीजी के शान्त और सुस्पष्ट विचारों की तह में विद्यमान उनकी मावसीलता का अनुभव करने में सहायक होगा ।

(४) मनुष्य-निर्माण अथवा कार्यकर्ताओं का गठन—अपनी सभी रचनाओं अथवा उपदेशों में स्वामीजी ने राष्ट्र-निर्माण का कार्य करने के इच्छुक कार्यकर्ताओं के गठन एवं उनके मस्तिष्क और हृदय के आबन्धन पूर्णों का इतस्तत् उल्लेख किया है । इन सभी विद्याप्रद संकेतों का विभिन्न शीर्षकों जैसे (१) संघटन (२) नेतृत्व (३) सच्चा मार्गदर्शक और (४) सफल जीवन का रहस्य ब्रह्मा कर्म कीर्तन के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है । स्वामीजी के संदेश के क्रियतमक पल से सम्बन्धित होने के कारण ही इन्हें यहाँ उद्धृत किया गया है ।

यद्यपि कुछ निविष्ट विषयों को प्रस्तुत करने के निवचन के कारण सामग्री के चयन का क्षेत्र सीमित हो गया था, फिर भी प्रत्येक प्रस्तुत विषय पर

प्रचुर मात्रा में सामग्री उपलब्ध थी। अतः स्वाभाविक रूप से संकलनकर्ता को उक्त सभी सामग्री को समाहित करने के साधन का संवर्धन करने की कठिन समस्या का सामना करना पड़ा। कारण, यदि सम्पूर्ण महत्वपूर्ण सामग्री को पुस्तक में समाहित किया जाता तो स्वात् पुस्तक का मूल्य हमारे बहुत से पाठकों की श्रम-शक्ति के परे हो जाता। लेकिन संकलनकर्ता और प्रकाशक दोनों ही पुस्तक का मूल्य जहाँ तक संभव हो, कम से कम रखना चाहते थे जिससे अधिकारिक व्यक्ति स्वामीजी के विचारों से लाभ उठा सकें। हमें यह जानना है कि प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के अन्तर स्वामीजी के उपदेशों का विस्तृत अध्ययन करने की विमोक्षा एवं उत्कृष्ट जपायेबी और उनमें से अधिकाराण लोय अर्द्धत आधम' द्वारा प्रकाशित स्वामी विवेकानन्द के सम्पूर्ण साहित्य' को पढ़ने के लिये प्रेरित होने।

कलकत्ता

मद्र संक्रान्ति सं० २०१६

१४ फरवरी १९६३

एकनाथ रानडे



## अनुवादक की ओर से—

अनुवाद के इस द्वितीय संशोधित संस्करण में प्रथम संस्करण का सगमय कायापसट ही हो गया है। कारण ? उच्च आध्यात्मिक शक्तियों एवं बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न स्वामी विवेकानन्द की उपोपूठ बाणी के मर्मार्थ मर्म को छू पाना इस अल्पक एवं अपरिपक्व-दृष्टि अनुवादक के बस की बात नहीं थी। इसीलिए प्रथम संस्करण में पग-पग पर दृष्टियों एवं भावियों का एह्र जाना मिताग्न स्वामाधिक था। किन्तु मूल अंग्रेजी ग्रन्थ के संकलनकर्ता सुकमद्रष्टा एवं प्रत्येक छोटे से छोटे कार्य को निर्दोष बनाने के लिए सर्वत्र सचेष्ट मान्यवर थी एह्रनाप रागडे को अनुवाद कार्य की यह कमी मत्ता बर्षोंकर सत्य होती ? अत उन्होंने अपने अति व्यस्त जीवन में स एक सप्ताह का अमूल्य समय निकालकर इस अनुवाद के संशोधन हेतु रिया। जितनी एकाग्रता एवं ईर्य के साथ उन्होंने स्वामीजी के अवाह विचार-सागर में गहरे डूबकर हमें यह संकलन स्वी बनभोल मोती निकाल कर दिया उतनी ही तग्नपता एवं ईर्य के साथ उन्होंने अनुवादक के मुक से अनुवाद के एक-एक शब्द को गुना स्वामीजी की बाणी का सम्पक अर्थ व भाव-मन्धन कर अनुवाद के लिये मयास्थान उपयुक्त शब्द एवं वाक्य-रचना प्रस्तुत की। वस्तुत यदि यह संशोधित संस्करण स्वामीजी के गहन विचारों व भावों को प्रकाशित करने में थोड़ा भी समर्थ हो सता है तो इयका सम्पूर्ण श्रेय माननीय एह्रनापजी के अल्पवसाय एवं मर्मभेदी दृष्टि को है। अनुवादक का शोधदान इसमें निपिक से अतिक्रुष नहीं है। फिर भी जहां कहीं दृष्टियाँ रिकार्ड दें उन्हें अनुवादक के प्रभाव आतस्य एवं असावधानी का ही कुपरिनाम मानना चाहिये।

—देवेन्द्र स्वस्व अग्रजात

प्रचुर मात्रा में सामग्री उपलब्ध थी । अतः स्वामाधिक रूप से संकसनकर्ता को बस सभी सामग्री को समाहित करने के लोभ का संवरण करने की कठिन समस्या का सामना करना पड़ा । कारण यदि सम्पूर्ण महत्वपूर्ण सामग्री को पुस्तक में समाहित किया जाता तो स्यात् पुस्तक का मूल्य हमारे बहुत स पाठकों की श्रम-शक्ति के परे हो जाता । लेकिन संकसनकर्ता और प्रकाशक दोनों ही पुस्तक का मूल्य अहाँ तक घटाने हो, कम से कम रखना चाहते थे जिससे अधिकारिक व्यक्ति स्वामीजी के विचारों से लाभ उठा सकें । हमें यह धारणा है कि प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के अन्दर स्वामीजी के उपदेशों का विस्तृत अध्ययन करने की जिज्ञासा एवं उत्कंठा जगायेगी और उनमें से अधिकतर लोग 'अद्वैत धारम' द्वारा प्रकाशित 'स्वामी विवेकानन्द के सम्पूर्ण साहित्य' को पढ़ने के लिये प्रेरित होंगे ।

कसकता

मकर संक्रान्ति सं० २०११

१४ फरवरी १९६३

एकनाथ रामडे



## अनुवादक की ओर से—

अनुवाद के इस द्वितीय संशोधित संस्करण में प्रथम संस्करण का लक्ष्य कायापलट ही हो गया है। कारण ? उच्च ब्राम्हारिणिक शक्तियों एवं बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न स्वामी विवेकानन्द की उपोपुत्र बाणी के मर्याद मर्म को छू पाना इस अल्पस एवं अपरिपक्व-वृद्धि अनुवादक के बस थी बाध नहीं थी। इसीलिए प्रथम संस्करण में पग-पग पर वृत्तियों एवं प्रातिबन्धों का एह जाना नितास्त स्वामाधिक था। किन्तु भूत अंग्रेजी प्रभु के संकलनकर्ता सुहृद्गण्डा एवं प्रत्येक छोटे से छोटे कार्य को निर्दोष बनाने के लिए सर्वत्र सचेष्ट मान्यवर थी एकाग्र रागों को अनुवाद कार्य की यह कमी भला क्योंकर सह्य होती ? अतः उन्होंने अपने अति व्यस्त जीवन में से एक सप्ताह का अमूल्य समय निकालकर इस अनुवाद के संशोधन हेतु दिया। त्रिभूती एकाग्रता एवं धैर्य के साथ उन्होंने स्वामीजी के अवाह विचार-सामर में गहरे डूबकर हमें यह संकलन कपी जनमोक्ष मोक्षी निकाल कर लिया उसनी ही तन्मयता एवं धैर्य के साथ उन्होंने अनुवादक के मूल से अनुवाद के एक-एक शब्द को मुना स्वामीजी की बाणी का सम्यक् अर्थ व भाव-मन्वन कर अनुवाद के लिये यथास्थान उपयुक्त शब्द एवं वाक्य-रचना प्रस्तुत की। बस्तुतः यदि यह संशोधित संस्करण स्वामीजी के गहन विचारों व भावों को प्रकाशित करने में योद्धा भी सफल हो सका है तो इसका सम्पूर्ण श्रेय माननीय एकाग्रता के अध्यक्षताय एवं मर्मनिरी दृष्टि को है। अनुवादक का मोषदान इसमें निष्क स अधिक कुछ नहीं है। फिर भी, जहाँ जहाँ वृत्तियाँ दिखाई दें, उन्हें अनुवादक के प्रयास आत्मस्य एवं अवाहानी का ही कुपरिणाम मानना चाहिये।

—देवेन्द्र स्वस्व अग्रवाल





## अनुक्रम

महान् जीवन की एक झलक

—एक युग प्रभात

भाग—१

सन्देह

हमारी पृथ्वीमूर्ति और उसका परिवर्तनय अतीत	--	--	४१
अतीत से वर्तमान की ओर	--	--	२१
भारत की आत्मा—बर्म	--	--	६१
पुनरुत्थान का कार्य आचार और विज्ञान	--	--	१६
'पुनरुत्थान' कार्य में रत कार्यकर्ताओं से	--	--	६१
पुनरुत्थान का कार्य—१ गीर्वाण-निर्माण	--	--	१०१
पुनरुत्थान का कार्य—२ कार्य योजना	--	--	११०

भाग—२

संभाषण, प्रवचन एवं लेखों से संकलित

हिन्दू-धर्म की मर्यादाएँ	--	--	१४५
भारतीय नारी—इसका अतीत, वर्तमान और भविष्य	--	--	१४५
सायनाचार्य का पुनर्जन्म	--	--	१४५
सम्प्रदायों का सामा-सामा	--	--	१४५
हमारी सम्प्रदाय धार्मिकता है	--	--	१४५
आर्यों के आचरण का विषय सिद्धांत	--	--	१४७
संभाषण आर्यों द्वारा बनाएँ की विषय का उदाहरण नहीं	--	--	१४७

## भाग—३

## स्फुट विचार एवं प्रस्तावना

स्फुट विचार			
प्रत्येक पुराण में महासत्य अनुस्मृत है	---	---	१२३
प्रतिक्रियात्मक ज्ञानोत्सर्गों की बीज मृत्यु	---	---	१२४
पहले 'मनुष्य निर्माण' करो	-	---	१२५
उपासना एकाग्र में होती है, समूह में नहीं	---	---	१२६
बनायास समाधि अवस्था पाने से हानि	-	---	१२७
प्रस्तावना			
ओ ! अंग्रेजों का लम्बानुकरण करने वालो !	---	-	१६०
आओ मनुष्य बनी	---	---	१६१
ओ, भारत के उज्वल बर्गों !	---	---	१६२
शैतन्य के दिव्य प्रेम' का यह बिकृत रूप	---	---	१६३
हे ईसाई पादरियो !	---	---	१६५
ईश्वर और एपभाजों की पूजा साब-साब संभव नहीं	---	---	१६६
मेघ वैगम्बर ही सच्चा वैगम्बर है	---	---	१६८

## भाग—४

## मनुष्य-निर्माण अथवा कार्यकर्त्ताओं का गठन

संपन्न	---	---	१७४
नेतृत्व	---	---	१७८
लक्ष्य भावदर्शक	-	---	१८२
सफल जीवन का रहस्य अथवा कम-कीमत	---	---	१८३





गुरुदेव रामकृष्ण परमहंस





शिशु का स्वागत किया क्योंकि प्रकृति के साथ ही वह भी अपने जीवन में उत्पत्ति चाहती थी । सूर्यदेव के साथ वह भी अपनी राह बदलने को उत्सुक थी । इस कार्य के सम्पादन के लिए उसे चाहिये या एक ऐसा चाहती सबसे एवं तेजस्वी व्यक्तित्व को सबको सचेत कर उसके सोनेबानों को शसकोर कर जगा सके । मृतप्राय पड़े मरठ पुत्रों की अप्तियों की सन्तानों को जीवन-दान दे सके । उस दिन जब ऐसे ही व्यक्तित्व का पनी माता की गोद में उतरा तो फिर उसका स्वागत वह कैसे न करती ?

शिशु बाराणसी के बीरेस्वर महादेव की आराधना के प्रसाद रूप में जन्मा था । अतः उसका नाम रखा गया 'बीरेस्वर' । माता उसे प्रेम से पुकारती 'बिने' और पिता ने कहा मेरे पुत्र का नाम होना—'नरेन्द्रनाथ' ! लेकिन मायब उन्हें यह पता नहीं था कि यह नाम भी अतीत की शुभमयी स्मृतिमान बनकर यह ज्ञायमा और विश्व नरेन्द्र को विवेकानन्द के रूप में जानेवा उठी रूप में उसकी बन्दना करेगा । आध्यात्मिक राचना अपूर्व चारिभ्य प्रखर स्वदेव प्रेम दीनों-मुक्तिप्यों और बसितों की ममता से परिपूर्ण ठैव भीयं ज्ञान से विभूयित यह भारत का ही नहीं अपितु विश्व मानवता का प्राता बन जायगा ।

## बचपन

नरेन्द्रनाथ बचपन से ही बड़े मेधावी थे । उनकी विसंगणता वाक्यज्ञान से ही स्पष्ट दिखानी देने लगी थी । बहते हैं कि एक बुद्ध पड़ोसी से रात में सोते समय मुन-मुनकर मुक्तजीव' व्याकरण के सभी सूत्र उग्होंने कण्ठ्य कर लिए थे । 'मां मुबनेखरी से रामायण और महाभारत का पाठ मुनकर उसके अनेक अंश उनकी शिष्टता पर जा गए थे । बचपन से नरेन्द्रनाथ मेधावी निर्भीक दृश्यप्रिय मृति एवं स्मृतिपर व । जिसे वे एक बार सुनते या पढ़ते वह सदा के लिए उनके स्मृति पटल पर अंकित हो जाता । राममत्त बहावीर हनुमानजी नरेन्द्रनाथ के जीवनार्यं थे । यही कारण है कि बड़े होने पर साहज बन भीयं एवं पवित्रता की मृति हनुमान जी की पूजा उग्होंने निरिजि भारत म पर-पर प्रचरित करनी पाही ।

पाण्डुराज ने ही वे जिही स्वभाव के थे । जिसे एक बार पढ़ते फिर कोई भी बाधा उसे रुदा न पाती । हाइना धमरी भय एवं पौष सभी व्यर्थ जाने । वे उग्हें दिया न पाते । मां मुबनेखरी कभी-कभी अपने अज्ञान्य पुत्र की गोदी में लिए बहा करती— मैंने बहूत मनोनी करके विश्व के मन्दिर न परना

देकर एक पुत्र की कामना की थी परन्तु उन्होंने भेज दिया एक भूत । नरेन्द्र गाय की बेबामन करने के लिए वो नौकरानियाँ बिल रात उसके पीछे फिरा करती थी । जब कभी उन्हें कोष या जाता तो फिर हितहित का विस्मरण करके कुछ भी कर बैठते । घर के सारे सामान तोड़-काड़ कर नष्ट कर डालते ।

ध्यान-भारणा एवं पूजन-बंधन इनका बचपन का ही सहज संस्कार था । अनेक बार ध्यानमग्न हो बैठ जाते तो अपनी सुन-बुन छोड़कर बाह्य-जगत एवं इतनी दूर चल जाते कि बुनिया का उन्हें कुछ ज्ञान ही न रहता । रामकृष्णदेव ने भी ब्रह्मिणेश्वर में एक बार उनका उल्लेख करते हुए कहा था कि 'नरेन्द्र ध्यान सिद्ध पुरुष है । जिस दिन वह ज्ञान संकेता कि वह कीन है उस दिन इस ससार में नहीं रहेगा । दुःख सकल्प के द्वारा योग मार्ग से शरीर छोड़कर चला जायेगा ।

बड़े होने पर 'नरेन्द्र' विद्याभ्यसन के लिए पाठशाळा गये । पर वहाँ के शास्त्रावरण में व्यवहार और विद्या सीखना तो दूर रहा उल्टे मानी और अस्सील धर्म सीखकर सीटते । फलतः पिता बिम्बनाथरत्न ने उनका विद्यालय पाना बन्द करा दिया । अब घर पर ही शिक्षक से वे ज्ञान ग्रहण करने लगे । कुछ दिन बाद जब वे पुन विद्यालय भेजे गये तो वे अंग्रेजी पढ़ने की राजी न हुये । वे बोले— 'मह बिदेसी भाषा है । इसकी अपेक्षा अपनी भाषा सीखना अधिक श्रेयस्कर है । कई मास संघर्ष करते रहे । अन्त में अंग्रेजी पढ़ना स्वीकार कर लिया और उसका प्रारम्भ उन्होंने अपनी माता से ही अंग्रेजी वर्णमाला सीख कर किया । वे जब तक किसी वस्तु का प्रत्यक्ष प्रमाण न पाते उस पर विश्वास न करते । इसी कारण जब उन्हें कोई हीरा भूत राक्षस आदि का भय दिखाने की काश्चिद करता तो वे हँसकर उका देते ।

### 'मैं बचपन में बहुत उद्विग्न था'

विद्यालय का काम करने अथवा अपना पाठ याद करने में उन्हें बेरी न लगती । समय इतना बच रहता कि कभी-कभी उसके उपयोग की समस्या आ खड़ी होती । ऐसी स्थिति में वे मुहम्मद के मङ्गलों को साथ लेकर संपीठ बिदेटर, व्यायामशाला कुम्भी और न जाने क्या-क्या काम किया करते । अपनी अपरिमित शक्ति के उपयोग की जैसे उन्हें वही जगह ही न मिलती हो । गुस्ती बड़ा दीड़ भूय मार-पीट घुसेबाजी साटी का खेन वैराकी आदि उनके नित्य के काम थे । इन सबमें वे दमपति का काम करते । उनका बचपन की उद्विग्नता तथा



साहस की अनेक बटमारों हैं। जब वे अमेरिका से बिस्वविजयी होकर भाये तो कभी-कभी शाय्यों से बिनोद में नहा करते— 'मैं बचपन में बहुत उर्ध्व था। अगर ऐसा न होता तो क्या इसी तरह मैं सारी दुनियाँ घूम जा सकता था ?

उनके अन्दर एक ऐसा विराट पुरुष निवास करता था जिसके प्रकाश से नरेन्द्रनाथ का जीवन बचपन से ही ज्योतिषूज के रूप में दिखने लगा। उसी शक्ति का प्रकाश समय-समय पर अनेक रूपों में प्रकट हुआ था। इसी कारण नरेन्द्र में विपुल आध्यात्मिक शक्ति दया साम्य मैत्री आत्मविरवास तेज सर्व स्वयं शीर्ष बस इहलौकिक एवं पारसीकिक ज्ञान हुएसे भी ऊपर यप्रतिग्रही नेतृत्व के भाव स्वयमेव विकसित हुये थे। जाने बसकर जिस गरिमा एवं प्रगल्भता का परिचय उन्हें ही दिया वह सब उनके आत्मिकाम से ही स्पष्ट दिखाई देता था। बचपन की छोटी-बड़ी संकड़ों पट्टामों के समष्टिरूप में स्वामी विवेकानन्द। हीन-शुचियों को देखते ही उनका हृदय ह्वित हो जाता। उनके पास कुछ बेने पायक न रहता तो अपनी छोटी-शुलका भी वे बेते। किसी के जीवन में पैठकर उचित प्रयत्न अनुभव करना उनका आत्मिकाल का ही स्वभाव था।

पाठ्य पुस्तकों की छोटी-सी सीमा नरन्द्र को संतुष्ट न कर पाती। परीक्षा उत्तीर्ण करमा उनके लिये तुच्छ बात थी। उसके लिये उन्हें भ्रम नहीं करना पड़ता था। यही कारण है कि प्रवक्तिका की परीक्षा में पूर्व उन्होंने भारतीय इतिहास के साम ही ताब अनेक साहित्यिक विषयों का अथ्य ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बसिष्ठ शरीर के अन्दर से सांक्रता हुआ स्वरूप मस्तिष्क विविध शास्त्रों दर्शन बाध संगीत नृत्य आदि के रूप में साक्षात् दिखाई पड़ जाता। गम्भीर अध्ययन शौकीन ध्यान-वचनकता एवं सर्वजनप्रियता तो उनका जन्म पात्र पुत्र था। विद्यार्थी जीवन से ही वे एक प्रभावी बक्ता के रूप में सबके सामने आ चुके थे।

अब 'नरेन्द्र' प्रप्रेक्षिका की परीक्षा उत्तीर्ण कर बालेज में भर्ती हो गये। इस समय उनके विचार-जगत में एक महान् आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। वे भारत की सीमा रेखा के पार विराट विषय की ओर बसे। दिलय नवीन विचार एवं नवीन संस्थाओं उन पर अपना प्रभाव डालने लगी। पाश्चात्य दार्शनिकों एवं साहित्यिकों की कृतियाँ उनके अध्ययन का विषय बन पयी। बहसुंभर्ष के वाच्य में उन पर गहरा प्रभाव डाला। डेबार्टे ह्यूम। बेन डार्विन एवं एग्यर के साहित्य में उनके चित्त में विचार मचा दिया ऐसा बर्षकर संसावात कि कई बार वे परेशान हो जाते।

पारशरथ दर्शन ने यद्यपि उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया था पर प्राच्य और पारशरथ दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन के बाद उन्होंने कहा—' हिन्दू दर्शन, प्रागैतिहासिक युग से जिस परम धर्म की उपलब्धि करके, जिस स्थिर विद्या पर पहुँचा है पारशरथ दार्शनिक उसका धीमे-सा आभास मात्र पा सके हैं—पूर्व सत्य की उपलब्धि वे नहीं कर सके । वे बैठे-बैठे यही सोचा करते कि इस विद्याम सृष्टि के सुनिश्चित परिणाम के पीछे कोई शक्ति है या नहीं ? मानव जीवन का उद्देश्य क्या है ? संसार में इतना दुःख और वे विपदायों क्यों हैं ? पत्नी के महल के पास ही पत्नी की भीषण छोपड़ी क्यों है ? व्यक्तिगत सामाजिक और राष्ट्रीय विपदायों ने उनके मन को बिड़ोही बना दिया ।

नरेन्द्रनाथ का अन्तर धर्म-भाव से परिपूर्ण था । धर्म-भाव को इच्छा से ही वे ब्रह्म समाज में आने-जाने लगे । धीरे-धीरे समाज की उपासना-प्रवृत्ति के अनुसार उन्होंने मिथ्याकार ब्रह्म की उपासना प्रारम्भ की । ब्रह्मसमाजियों का अनुकरण कर हिन्दू धर्म की निन्दा भी करने लगे । आदि-श्रेष्ठ की समालोचना, स्त्री-विद्या और स्त्री-स्वाधीनता की आकांक्षता का वे बड़े बोरों से प्रचार करने लगे ।

### धता वे कोई

धर्म का मूल उद्देश्य है—'ईश्वर प्राप्ति । फलतः नरेन्द्र ईश्वर की खोज में प्याकुल हो उठे । अनेक धार्मिक ग्रन्थों एवं सन्तों की शरण में गये पर समा-भान न हुआ । इसी खोज-बीन में वे एक दिन महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास । नरेन्द्र ने उम्मत की शक्ति महर्षि से पूछा— 'महात्म्य ! क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है ?' पर महर्षि समुचित उत्तर न दे सके । वे कुछ क्षण तो आश्चर्यमिथित भाव से देखते रहे । फिर बोले—'तुम्हारे मेत्र योनिशों बैठे हैं । नरेन्द्र की आकांक्षा निराशा में बदल गई । हताश होकर वे लौट पड़े । प्याकुलता बढ़ती ही गई । वे कभी-कभी बड़बड़ा उठते— ऐसे तत्वदर्शी महर्षि रूप कहाँ मिलेंगे जो ब्रह्म का दर्शन करा सकें ।

धीरे-धीरे ब्रह्मसमाज के बनाबटीपन से उनका मन ऊँच गया । वे जिस धर्म की उपलब्धि चाहते थे, जिस अवस्था में स्थित होने की कैप्टा कर रहे थे—उसका उन्होंने ब्रह्मसमाज में सर्वथा अभाव पाया । ध्यान और अध्ययन के बाद भी अन्तर न जाने किस अज्ञात के बना से पीड़ित हो उठता । वे कहाँ जायें ? क्या करें ? जिससे ईश्वर की प्राप्ति हो सके—यह बताने वाला कोई न मिलता ।

इसी उद्घाषाह व भयंकर अन्तर्द्वेष्टा के सभों में ईश्वरद्वेष्टा से परमहंस रामकृष्ण देव से उनका मिलन हुआ । रामकृष्ण देव एवं नरेन्द्र का यह मिलन, नर का नाशयण से प्राचीन का महीन से नबी का सागर से, स्वयं का मर्त्य से तथा विश्व का भारत के साथ मिलन था ।

### ये विषमताएँ क्यों ?

यह नरेन्द्र की आयु का १८वाँ वर्ष था । वे बी ए की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे । अब तक वे विश्व के अनेक भादों एवं दर्शनों का भारतीय दर्शन के साथ तुलनात्मक अध्ययन कर चुके थे । अतिस्नेह से घर में ज्ञानित-वासित मुबक दीन-दुस्त्रियों को देखते ही रो देता । उसका अन्तर बार-बार यही प्रश्न करता—“संसार में इतनी विषमता क्यों ? सभी एक ही परमपिता की उत्पान है फिर भी ब्राह्मण एवं जाह्ननास के भीतर ऐसे दुर्मम अन्तरात्म की सृष्टि कैसे हुई ?” ओस से प्रोय ताजे कृष्ण के समान उनके निष्कमुय जीवन पट पर य विषमताएँ अपना प्रभाव छोड़े बिना न रही ।

### सप्तवि मण्डल का महवि

नरेन्द्रनाथ के दशभेस्वर आने से पहिले ही थी रामकृष्ण देव नरेन्द्र के स्वरूप के सम्बन्ध में जाम चुक था । वे उनसे मिलन को ध्याकुल थे । कभी-कभी 'नरेन्द्र-नरेन्द्र' कहकर शीत उठते थे । एक दिन कसकते में नरेन्द्रनाथ मित्र के निवास-स्थान पर नरेन्द्रनाथ जय भजन गाने के लिये आय ता भी रामकृष्णदेव उठते देखते ही शोक पड़े 'अरे ! यही तो सप्तवि मण्डल का महवि है । उनके इस असीमिय बनेन में क्या दिया उस अपरिचित मुबक का यही परिचय । वे निरास हो गये । वे तो अब तक उनकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे । नरेन्द्र में भजन पाये तो परमहंस की भाव-समाधि सय गई । कार्यभर समाप्त होते ही बाहर साकर नरेन्द्र को ध्यानपूर्वक देखते हुये उन्होंने दशभेस्वर आने का निर्मरण दिया । जिने नरेन्द्र अस्वीकार न कर सके ।

### 'में विधाह नहीं करूँगा'

एक बटना के बाद नरेन्द्र ने अपनी एक० ए० की परीक्षा समाप्त की । नरेन्द्र की परीक्षा के बाद घर माने ही पिता की ने एक कड़ी परिष्ठा ली । उन्होंने एक धनी पिता की पुत्री के साथ नरेन्द्र का विवाह निश्चित कर दिया ।

नरेन्द्र के सामन प्रस्ताव जाया तो वे बिजोह कर बैठे—उनका एक ही उत्तर था—'मैं विवाह नहीं करूँगा। उनका वैराग्य प्रवर मन प्रतिक्रिया से भर गया। वे और अधिक ध्यान और भजन में डूब गये। उनही यह दशा देखकर एक दिन डा० रामचन्द्र दत्त ने कहा— 'आई यदि तुम परार्थ में धर्म-लाभ करना चाहते हो तो ब्रह्मचर्या आदि स्वात छोड़कर दक्षिणेश्वर में परमहंस रामहृष्ण देव के पास जाओ। उनकी बात नरेन्द्र को बख्ती मनी। दो-तीन दिनों के साथ नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर पहुँचे।

१८८१ ई० का दिसम्बर मास था। नरेन्द्रनाथ ने साधियों के साथ जैसे ही कमरे में प्रवेश किया टाकुर प्रसन्नता से भाव उठे। प्लै पर पड़ी बटवाई पर नरेन्द्र को बैठ गया। परमहंस देव ने मन्त्र माने का अनुरोध किया। फिर क्या था—मन्त्र स्वर की संज्ञा से आश्रम का कौता-कौता पुष्कित हो उठा। श्री रामहृष्ण देव अपने को संभाव न सके। 'अहा! अहा!' कहते हुये वे समाधि में मीन हो गये।

उत्प्रेरणात् एक अप्रत्याशित घटना बन गई। वे नरेन्द्र का हाथ पकड़ कमरे के बाहर बरामदे में न गये एवं आनन्दामु बहाते हुए बोले— 'इतने दिनों के बाद आये? मैं तुम्हारे लिये व्याकुल प्रतीक्षा में बैठा था—तुमने यह एक बार भी नहीं साधा?' दूसरे ही क्षण रोते हुये हाथ जोड़कर बोले— 'मैं जानता हूँ प्रभु, तुम वही सनातन ऋषि बन कपी नायक हो जीवों का कुल दूर करने के लिये पुन पैदा हुए हो।'।

दोनों कमरे में सीट कर बायस आये। धर्म-बर्षा अपने स्वामात्रिक रूप से बनने लगे। नरेन्द्रनाथ इस रहस्यमय व्यक्ति को विन्मय से देखते रहे। उन्हें पता चला कि वे जो कुछ कह रहे वे वह पुस्तक की कोई रटी पटाई बात नहीं थी। बातचीत के क्रम में—'धर्मवान् को देखा जा सकता है कि नहीं?—इस प्रसंग में टाकुर बोले— 'कहाँ नहीं? उन्हें जैसे ही देखा जा सकता है, जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ। तुम्हारे नाम बाते कर रहा हूँ ठीक जैसे ही बलि और निरुत्सव भाव से ईश्वर को देखा जा सकता है उनसे बाते की जा सकती हैं। बैठा कौन करता चाहता है? मीन पानी-मुर्खों के मोह में पड़ों जायू बहाते हैं विषय और राये पैने के निग रोते हैं परन्तु धर्मवान् की प्राप्ति नहीं हुई यह कह कर कौन रोता है?' 'अपरा धर्म नहीं लिया' यह कह कर यदि कोई राये हुए उन्हें पुकारे, तो वे अवश्य दर्शन देते हैं। नरेन्द्रनाथ इन बातों से प्रभावित हुये बिना न रहे। वे चुनबाव मोचने लगे—'अन्मा' होने पर भी ईश्वर के लिये अपना स्वाम मसार

इसी क्लृप्तोद्भूत व मयंकर बन्धवैद्या के धनों में ईश्वरेश्वर से परमहंस रामहंस देव से उनका विवाह हुआ । रामहंस देव एवं नरेन्द्र का यह विवाह मर का शाश्वत से प्राचीन का महीन से नदी का सागर से स्वर्ग का मर्त्य से तथा विराट का मातृ के साथ विवाह था ।

### ये विपमताएँ क्यों ?

यह नरेन्द्र की बापु का १०वाँ बर्य था । वे भी ए की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे । जब तक वे विराट के जनक बापों एवं बर्यनों का आराध्य दहन के साथ तुपनात्मक सम्बन्ध कर चुके थे । अतिशेहू से पर में लाभित-माहित पुष्कट धीन-दृष्टियों का दखते ही रो देता । उसका जन्म बार-बार यही प्रसन्न करता—“तुम्हारा म इतनी विपमता क्यों ? सनी एक ही परमज्ञा की कृपा है फिर भी बाह्य एव आन्तरिक में भीतर ऐसे दुर्बल बन्धुत्व की मृष्टि क्यों हुई ?” सोम स थोड़े ताक पून के समान उनके निष्कमुष जीवन पट पर ये विपमताएँ अपना प्रभाव छोड़ विना न रहीं ।

### सप्त्यापि मण्डल का महर्षि

नरेन्द्रनाथ के बलिभोगर आने से पहिल ही भी रामहंस देव नरेन्द्र के स्वरूप के सम्बन्ध म जान चुके थे । वे उनसे मिलने को ब्याकुल थे । कभी-कभी 'नरेन्द्र-नरेन्द्र' कहकर भीत्र उल्टे थे । एक दिन कतकसे में नरेन्द्रनाथ मित्र के विवाह-स्वात पर नरेन्द्रनाथ जब मरण पाठ के लिये आये तो भी रामहंसदेव उन्हें देखते ही बौक पड़े "बरे ! यही तो सप्त्यापि मण्डल का महर्षि है । उनके इस अतीश्रिय बर्तन मे क्या दिना उस अतीश्रिय पुष्कट का सही परिचय । वे विद्वान्त हो गये । वे तो अब तक उनकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे । नरेन्द्र ने मरण पाये तो परमहंस की माह-समाधि मय गई । कार्यक्रम समाप्त होते ही बाहर जाकर नरेन्द्र का ध्यानपूर्वक देखत हुए उन्होंने बलिभोगर आने का निमंत्रण दिया । मित्र नरेन्द्र अस्वीकार न कर सके ।

### 'मैं विवाह नहीं करूँगा'

इस घटना के बाद नरेन्द्र ने अपनी ए० ए० की परीक्षा समाप्त की । कानेर की परीक्षा के बाद घर आते ही पिता भी ने एक बड़ी परीक्षा ली । उन्होंने एक घनी पिता की पुत्री के साथ नरेन्द्र का विवाह निश्चित कर दिया ।

नरेन्द्र के सामन प्रस्ताव आया तो वे विद्रोह कर बैठे—उनका एक ही उत्तर था—'मैं विवाह नहीं करूँगा। उनका वैराग्य प्रवर मन प्रतिक्रिया से भर गया। वे और अधिक ध्यान और भजन में डूब गये। उनकी यह बात देखकर एक दिन डा० रामचन्द्र दत्त ने कहा—'भाई यदि तुम यमार्थ में बर्न-भाष करना चाहते हो तो ब्रह्मसमाज भादि स्थान छोड़कर बक्षिणखर में परमहंस रामहृण्ण-देव के पास जाओ। उनकी बात नरेन्द्र को अच्छी लगी। दो-तीन मित्रों के साथ नरेन्द्रनाथ बक्षिणखर पहुँचे।

१८८१ ई० का दिसम्बर मास था। नरेन्द्रनाथ ने साधियों के साथ जैसे ही कमरे में प्रवेश किया टाकुर प्रसन्नता से नाच उठे। फर्श पर पड़ी चटाई पर नरेन्द्र को बैठाया। परमहंस देव ने भजन गाने का अनुरोध किया। फिर क्या था—मधुर स्वर की झंकार से आश्रम का कोना-कोना पुनर्जित हो उठा। श्री रामहृण्ण देव अपने को समाप्त न सके। 'अहा! अहा!' कहते हुये वे समाधि में सीत हो गये।

सत्वरवान एक अप्रत्याशित घटना घट गई। वे नरेन्द्र का हाथ पकड़ कमरे के बाहर बरामदे में स गये एवं आनन्दाम् बहते हुए बोले—'इतन दिनों के बाद आये? मैं तुम्हारे मिय ध्यानुस प्रतीभा में बैठा था—तुमने यह एक बार भी नहीं सोचा? दूसरे ही क्षण रोते हुये हाथ जोड़कर बोले—'मैं जानता हू प्रभु तुम वही सनातन श्रुति गर रूपी मायाम हो जीवों का दुःख दूर करने के लिये पुन पैदा हुए हो।'

दार्तों कमरे में सीत कर बापस आये। धर्म शर्षा अपने स्वामाधिक रूप से अपने लयी। नरेन्द्रनाथ इस रहस्यमय व्यक्ति को चिन्मय से देखते रहे। उन्हें पता चला कि वे जो शृष बह रहे वे बह पुण्यक की कीर् रटी रटाई बात नहीं थी। बातशील के कम में—'भगवान् को देखा जा सकता है कि नहीं?—इस प्रसंग में टाकुर बोले—'क्यों नहीं? उन्हें मैं ही देखा जा सकता है जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ। तुम्हारे नाम बार्ने कर रहा हूँ ठीक जैसे ही बन्धि और निरुत्तम भाष से ईश्वर को देखा जा सकता है उनसे बार्ने की जा सकती हैं। बीसा कौन करता चाहता है? मोम पत्नी-मुर्षों के शोक में बर्षों आँसू बहाते हैं विषम और दारुने पैग के लिए रोते हैं परन्तु भगवान् की प्राप्ति नहीं हुई यह बह कर कौन रोता है? उनका दर्शन नहीं किया यह बह कर यदि कोई रोते हुए उन्हें पुकारे, तो वे अचर्य दर्शन देते हैं।' नरेन्द्रनाथ इन बातों से प्रभावित हुये बिना न रहे। वे भुजवान मोचने लये—'उमाद होने पर भी ईश्वर के लिये इतना त्याग संसार

में बहुत कम सोम कर सकते हैं। यह उम्मादी व्यक्ति महाम् पवित्र एवं त्यागी है। इन्होंने ईश्वर के दर्शन किये हैं वत ये हर मानव के लिये पूजनीय हैं।”

स्पर्श मात्र से

उन्हीं सब विचारों की झ्यापोह में नरेन्द्र कतकत्त वापस आ पड़े। इसपर नरेन्द्र ठाकुर के सम्बन्ध में चिन्ता सोचते उतना ही अधिक उमर सिचते जाते विस्मय में डलजाते जाते और छपर ठाकुर का चित्त उन्हें पुन देखने के लिये व्याकुल हो उठता। नरेन्द्रनाथ पढ़ाई में भरसक मन लगाने की कोशिश करते पर मन न पाठा। अत्यन्त व्याकुल होकर एक दिन बड़ेसे ही दक्षिणेश्वर की ओर चल पड़े। उन्हें देखते ही ठाकुर आनन्द-विभोर हो उल्लस पड़े— ‘अरे तू आ क्या? और उनका हाथ पकड़ कर अपने पास बिठा लिया। पुनक्तिव हो उन्हें देखते रहे। फिर धीरे-धीरे उनके पास सरक आये। माबासिरेक में ठाकुर ने नरेन्द्र को छू लिया। फिर क्या था वे संज्ञा-सूय से फिटी और शोक में पहुंच पड़े। बोड़ी देर परचाव जब चैतना सीटी तो बिस्सा उठे— ‘अरे तुमने यह भेरी कौसी हामठ कर बासी मेरे तो मां-बाप हैं।

ठाकुर हंस पड़े। नरेन्द्र की पीठ सहमाते हुये बोले— ‘तो तुम अभी नहीं तक रहे। एक ही बार में नहीं होना कम पुन होना।

जब ठाकुर बसल चुके थे। उन्हें नरेन्द्रनाथ से प्यार करने बिनाने-पिमाने में विशेष मुक्त का अनुभव हो रहा था। उन्हें किसी भी प्रकार तृप्ति नहीं हो रही थी। इसपर संझा हो गई तो नरेन्द्र बिधा सेने गये। ठाकुर आग्रहपूर्वक बोले— ‘बोली फिर शीघ्र ही आओने न? ‘हाँ कहकर नरेन्द्र ने किसी प्रकार बिधा ली।

चिन्ता अन्तुत आकर्षण था ठाकुर में। नरेन्द्र के दिन बीतते तो रत करते न कटती। किसी प्रकार एक सप्ताह बिताकर के पुन दक्षिणेश्वर पहुंचे। उस दिन ठाकुर उन्हें सिकर बगीचे में छुपने बले पड़े। वे पास-पास बैठे थे। नरेन्द्र उस दिन काफ़ी उत्सर्क थे। फिर भी ठाकुर के स्पर्श करते ही नरेन्द्र अपने को संमास न पाये। बाहरी ज्ञान एकदम लुप्त हो गया। चैतना सीटी तो देसा रामकृष्ण देव मुस्कुराते हुए उनकी पीठ पर हाथ डेर रहे थे और नरेन्द्र असाहय से पड़े उन्हें एकटक देख रहे थे। उस दिन की अचेतावस्था में ठाकुर ने नरेन्द्र से अनेक प्रश्न किये जिसका उन्होंने स्पष्ट उत्तर दिया था। परमहंस देव को अपनी कल्पना के अनुरूप ही उनमें विपुल तेज दिखाई दिया। इसके बाद सगमय पांच वर्ष तक नरेन्द्र स्वामी जी के साधिम्य में रहे। इस

बीच उनके जीवन में खामूस परिवर्तन हो गया। फिर भी मूर्ति-पूजा पर उनका विश्वास नहीं जमा। कभी-कभी ठाकुर की हंसी उड़ाते हुये कहते— 'बाप ईश्वरीय रूप बादि जो कुछ देखते हैं वे सब विमायी क्यास हैं। फिर भी परमहंस कभी झुम्ब न हुए। अपने आध्यात्मिक बल से उन्होंने नरेन्द्र को बली भूत कर लिया। अन्त में श्री रामकृष्णदेव को उन्होंने दृष्ट गुह और सबकार रूप में मान लिया। दिव्य-दृष्टिसम्पन्न स्वामी यह जानते थे कि नरेन्द्र जैन है और वह क्यों बामा है ? वे यह भी जानते थे कि नरेन्द्र के द्वारा पुन-धर्म का प्रचार कार्य सम्पन्न करया जा सकता है।

### कठिन परीक्षा

नरेन्द्र अब अपनी मंजिल पर बहुत आगे बढ़ चुके थे। परमेश्वर का साक्षात्कार करना ही अब उनका जीवनोद्देश्य बन चुका था। उठ उठ भर ध्याकुल हृदय से बपते रहते और उसी ध्यान-भारपा में ही बिठा देते। इस समय तक बी० ए पास करके नरेन्द्र ने बी० एन० की कक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ किया। ऐसे ही समय सन् १८८४ के प्रारम्भ में उनके पूज्य पिता का आधय सदा-सदा के लिये समाप्त हो गया। नरेन्द्रनाथ के पारिवारिक जीवन में एक महान् संकट उत्पन्न हो गया। माँ बहिन और भाई भाणि स्र-साठ व्यक्तियों के अन्न-वस्त्र का प्रश्न आ खड़ा हुआ। एक-एक करके सभी भेतदार जाने गये। नरेन्द्रनाथ मंजे पाँच फटा कुख्या पहिने मौकरी की तलाश में इधर उधर घूमने लगे। कितना कष्ट आ उस मुगावतार को इसकी कम्पना सहज में ही की जा सकती है। सबेरे उठते ही स्नान-स्नान कर 'निर्मलग हैं' कह कर निकस जाते और दिन भर मौकरी की तलाश में बिना चाये-पिये घूमते रहते आम को घर बापस आ जाते। पर इस गरीबी में भी प्रसोमन उन्हें दिगा न पाते किसी के सम्पति की मरीचिका उन्हें छप न पाई। वे इस संकट में भी विश्रयी होकर निकसे।

भूत-व्यास की ज्वाला में बसते परिवार की क्या वे आखिर कब तक सहते। एक दिन माँ से न रहा गया। वे कुछ हो गईं। बोलीं— 'पुप रह सकके। बचपन से ही 'मगवान्-मगवान्' कहता है। क्या कुछ किया तुम्हारे मगवान् ने बैठ लिया। यह बात तीर की तरह चुभ गई। दुर्भाग्य के कठोर आघात ने माँ की ईश्वर भक्ति को विचलित कर दिया। स्मरण रहे बु-बों के इन्हीं कारनामों ने ही भाबी के स्वामी विवेकानन्द को जन्म दिया था। बहुत



धूमने-फिरने के बाद एटार्नी कार्यालय में एक अस्थायी नौकरी मिल गई। अब बोका बहुत धन मिलने लगा था पर उतने से परिवार का पुष्प बुर न हो सका। यन्त्रणा के इन्हीं क्षणों में उनके मन में यह विचार उठा कि 'ठाकुर की प्रार्थना भगवान् मानते हैं। यदि वे मेरे लिये ईश्वर से प्रार्थना करें तो कोई हानि निकल सकता है। ठाकुर मेरी कोई बात ध्यान नहीं सकते। इसी विचार से वे एक दिन दक्षिणेश्वर पहुंचे। पहुंचते ही बोले—'आपको मेरी कोई न कोई श्मशाना करनी ही होगी। यदि आप अपनी 'मा' से कहें तो वे मेरे सारे कष्टों का निवारण कर सकती हैं। ठाकुर मन्त्र स्वर में बोले—'जरे ! मैं 'मा' से यह सब नहीं मांगता। तू ही आकर क्यों नहीं मांग लेता ? तू 'मा' को नहीं मानता इसीलिये तो यह सब कष्ट भोगने पड़ रहे हैं। थोड़ी देर चुप रहने के बाद पुन बोले—'जा आज रात को तू मा से जो कुछ मांगना चाह लसे देगी।' तरेन्द्र आश्चर्य होए। रात को वे काशी मन्दिर में गये। मा काशी की वैशम्प मूर्ति देखकर आत्मविभोर हो गये। सांसारिक माया का बचन कट गया। वे सारा दुःख भूल गये।

उन्हें मा बहिनों और भाइयों के कष्टों का ध्यान ही न रहा। वे मठ मस्तरु होकर बोले—मा मुझे विवेक को वैराग्य को ज्ञान और शक्ति को अपना साक्षात्कार होने दो। ठाकुर के पास गये तो पूछने पर बताया कि 'मैं तो सब कुछ भूल गया। मा से मैं अपने दुःख कष्ट की तुच्छ बात क्या कहूँ। पर ठाकुर के कहने से वे दो बार पुन गये लेकिन एक बार भी वे अपनी बात न कह सके। पर बाहर जान के बाद वे मा-बहिनों का कष्ट भूल न पाये। ठाकुर से बोले—'ये सब आपके ही काम हैं। आपने मेरा मन पसट दिया। अब आपका ही मेरे परिवार का कोई न कोई प्रयत्न करना होगा। अब तो मैं आपकी शरण न छोड़ूंगा। अनेक अनुग्रह-विनय के बाद स्वामी जी बोले—'ब्रह्मा वा ! 'मा' से कहूया जिससे तेरे अग्र-वस्त्र का अभाव कभी न हो। तरेन्द्र अब निश्चित थे। मा काशी की महिमा जमनी समग में जापई की।

### गुरुदेव का निर्वाण

धीरे-धीरे तरेन्द्र का वैराग्य बढ़ता गया। ठाकुर का सामीप्य उन्हें आनन्द देने लगा। लेकिन तरेन्द्र को कुछ और ही मंजूर था। रामरूप्य देव कष्ट-रोग से आशान्त हो गये। ठाकुर अब शरीर-त्याग के लिये तैयार हो रहे थे। मठ-तरेन्द्र की सर्वश अपने साथ रखते थे। एक दिन एक कागज पर लिखकर

बहा—'नरेन्द्र सोऊ-सिखा बेगा। देह-रपाग के तीन-बार दिन पूब एक दिन संघ्ना समय श्री डाकुर म नरन्द्र की बुलाया। दरबारा बन्य कर दिया। नरेन्द्र की भीषों में एकटक देखत हुए समाधि में बूझ गये। उही समय उनके शरीर से एक अतिवृद्ध निकसा श्री नरन्द्र के शरीर में समा गया। फिर क्या था ब भी म्यानस्य हा गया। बठना का नाब आज पर देखा—'यमहृष्य देव आगम' विद्वान् बधु-बाग्य दहा रहूँ यः। डाकुर गद्गद स्वर में बोले—'बाज मैं सबस्य तुमे देकर छडीर बन गया। तू इस शक्तिबल पर सघार में बनेक कार्य कर सकया। काम समाप्त होते ही सौट बापया। यह मुनकर नरेन्द्रनाथ बिसख पड़े। १६ अक्टू १८८६ ई० को १० बजकर ६ मिनट पर रावि की महानिशा में तीन बार 'कानी' नाम का उच्चारण कर श्री यमहृष्य देव महासमाधि में लीन हो गये।

श्री यमहृष्य देव की मृत्यु के परवात् नरेन्द्रनाथ बाबि सामझ मुबक मछों का नहीं रहने का ठिकना न रहा। सात दिन बाद ही कानीपुर उद्यान मकम के द्वितीय की अवधि समाप्त होते ही बुद्ध सोम बार लीन गये और कुछ दनात्म पर बन गये। नरेन्द्रनाथ म्याकुल हो उठे। डाकुर महासमाधि के पूब जहाँ पर मुबक-मछों का भार सौंप गया थे। पर ब ता स्वयं बकिबन सम्पासी थे। फिर भी एक दूध मकान मकर उम्होंने सबको इकट्ठा करके खापना प्रारम्भ कर दी। इसी समय श्री नरेन्द्रनाथ विन सहजता के लिए आ पड़्ये। बाधम के खर्च का कुछ भार उठाना उम्होंने स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों बाद कलकत्ते के उत्तर में बाण्डू नगर में एक भूतहा मकान द्वितीय पर लिया गया। वहाँ कुछ रगामी भल निवास करने लगे। उनी के हृदय में उस समय तीव्र बीरग्य था। सबके मिनकर बाण्डू नगर मठ की स्थापना की। १८८७ ई० में नरेन्द्रनाथ बाबि मछों ने संन्यास ग्रहण कर लिया। तपस्या और ब्रह्मज्ञान का जीवन बना। कनी-कनी ठी मुया ही रह जाना पड़ता और कभी-कभी केवल ममक-जात धाकर गुनाघ करना पड़ता।

उर्ध्वप्रथम स्वामी जी बाड़े शिनों के तिय मठ छोड़कर बीरनाथ एवं मिथुनिना बाबि स्थानों में प्रमम करके बाण्डू नगर लीन आये। सन १८८८ ई० में वे तृतीया निकर पड़े और बाण्डूनगरी से मकर श्रृंखला तक के सभी प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया। कलकत्ता मिया तब तक दास ? रीदन जाये थे। उनका स्वास्थ्य दिग्द गया और वे बाण्डू नगर लौट आये। बा वर्ष तक बाण्डू नगर मठ में रहने के परवात् स्वामी जी १८९० ई० में याने नुरमार्ड

स्वामी ब्रह्मचर्यात्मक जी के साथ हिमालय यात्रा पर बस बिये । जिस-जिस से वे मिले वही मुग्ध हो गया । वे अब केवल केवल मुनिवृत्त पड़े बस्त्रों में घूमनेवासे संन्यासी मात्र नहीं थे बल्कि अस्माच्छासित बहिष् के समान अपने ज्ञान से प्रगट होने वाली प्रतिभा दिखा पाने में असमर्थ थे । अस्मोका और नैनीताल के रास्ते में स्वामी जी कुछ से मूर्च्छित होकर पिर पड़े । ईश्वरयोग से एक फकीर ने खीर सिक्कावर उनकी प्राण-रक्षा की । अस्मोका से वे उत्तराखण्ड के तीर्थों का दर्शन करने बस पड़े । कभी ग्राम ठा कभी शहर कभी राजमहल ठा कभी पठान की झोपड़ी । अनेकानेक अनुभवों का संग्रह स्वयंसेवक होने लगा । महान् और गौरवशाली भारत का वास्तविक रूप उनके अन्तर में उद्भासित हो उठा । उन्होंने देखा कि कैसे मनुष्य के अन्दर अथवा बिलुप्त एवं क्लेश हो रहे हैं । भारत के जनसाधारण का कष्टन मार्तण्ड उनके मन को आसोदित करने लगा । वे कभी-कभी सिद्ध उठते— 'अरे ! वे कैसे निश्चय एवं निःसहाय हैं ।

मरठ छोड़ने के बाद दिल्ली राजपूताना अजमेर जयपुर आदि विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए स्वामी जी दक्षिण की ओर पड़े ; राजस्वान की एक समा म बोझते हुए उन्होंने कहा— मैं एक ऐसा बर्ष चाहता हूँ जो हम लोगों में आत्मविश्वास तथा जातीय मर्यादाओं के प्रति निष्ठा जमाने और जन-जन को ब्रह्म ब्रह्म तथा सिद्धा देने के साथ ही हमारे चारों ओर की सभी दुःख वेदनाओं को दूर करने की शक्ति ला दे । यदि अथवा का साक्षात्कार करना चाहते हो तो मनुष्य की सेवा करो ।

गुजरात भ्रमण कर स्वामी जी बड़ोदा होकर लखवा पहुँचे । यहीं उन्होंने सर्वप्रथम सिक्काओं की बर्ष-समा का समाचार सुना । उससे मोबयान करने के लिये उनकी प्रथम इच्छा हो उठी । हरियाण बाहु के प्रथम के उत्तर में उन्होंने कहा— 'यदि कोई जाने-जाने का लक्ष्य है ठा वहाँ जाने में मुझे कोई बाधित नहीं है । इस भ्रमण में स्वामी जी ने भारत की सुष्ठु आत्मा को स्पष्ट देखा उसकी समस्याओं पर धमता करे मन से विचार किया । देश-दशा का दर्शन कर उनका अंतःकरण इतित हो उठा । निद्रा के समय भी उनकी चित्तार्थ जागृत रहा करती थी ।

उत्थवा से स्वामी जी बम्बई एवं पूना पड़े और फिर वहाँ से मैसूर । उस समय मैसूर के अनेक उच्चपरमण्व एक निमित्त व्यक्ति उस उरब बती की ओर आकृष्ट हुये बिना न रहे । मैसूर के बाद कोचीन होकर स्वामी जी त्रिचेन्द्रम (केरल) पहुँचे यहाँ एक अथवाक का आतिथ्य स्वीकार किया । सात विद्

सनात्र अपने आप बिना जमा माना । त्रिबेपुर के श्री ए० के० रामर मिलते हैं कि 'स्वामी जी से जो नौ मिता वह उनकी बसौदिक धाना एवं शक्ति से प्रभावित हुए बिना न रह सका । एक साथ अनेक व्यक्तियों के विविध प्रश्नों का उत्तर देने की उनमें अपूर्व दामता थी । स्पेन्सर, ऐम्सपियर कापींगस हाबिन का विवरण यहुवी नाति का इतिहास बाप सम्मता की उत्पत्ति और विद्या-जन्म या ब-वेदान्त मुसलमान या ईसाई बर्मयाम्ब किसी भी विषय में उन्हें पीछे हटते नहीं देखा गया । उनके बेहरे पर सरसता एवं परिभा की माना स्पष्ट दिखाई पड़ती थी । निर्मल हृदय उपम्यापूर्ण जीवन उन्मुक्त जित विद्याम-दुष्टि-कोन प्राणिमायक प्रति सहानुभूति ही उनके चरित्र की विशेषता थी ।

### रूपये गरीबों को बांट दिये गये

स्वामी जी की पश्चिम जाने की इच्छा देखकर मद्रास के पुस्तकों में बन संघर्ष करने का संस्कार किया । बाप्य प्रनाम से ही ५००) इकट्ठा हो गये । परन्तु स्वामीजी इन रूपयों को देखकर प्रसन्न नहीं हुये । वे बोले— 'मेरे बच्चों' में काम करने के पूर्व ही भगवान की इच्छा जानना चाहता हूँ यदि मेरा पश्चिम गमन उनको अभिप्रेत हुआ तो बन अपने आप धा जायगा । तुम इन रूपयों को गरीबों में बाँट दो ।'

सब रूपये गरीबों में बाँट दिये गये । स्वामी जी ध्यानस्थ बैठे थे । टीक उसी समय एक रात उठते देखा—'थी रामदास देव समुद्र तीर से बन हुआ है हुए बाये बड़ते या रहे हैं और उन्हें पीछे जाने का संकेत दे रहे हैं । दूसरे ही पल यह बानी मुझी पड़ी— 'ब्राह्मो ।'

कैतड़ी के महाराज एवं मद्रास में स्वामी जी के प्रिय मित्र आसासिया देसनय के प्रनाम से पी० ए० जो० बम्पनी के पत्रिभूषा बहादुर में प्रथम धेगी का रिट खरीदा गया । स्वामी जी ३१ मई १८२३ ई० को उस पर सवार होकर चिन की और गए । बहादुर की डेक पर चढ़ होकर जब उन्होंने बरिच मातृभूमि का दर्शन किया तो मन भर आया । माता का बिछोड़ के महन म कर पाय । एवाएक के पीछे पड़े—'आह मेरा माखण ।

मन्हें से जापान में चीन को पराजित किया था

बहादुर सागर की छाती पीरते हुए बाये बड़ता रहा । स्वामी जी एक पर धई पश्चिम मातृ-भूमि का रा देखते रहे ! अनेक विचारों में डूबते हुए स्वामी

भी के मन में बार-बार यह भाव उठ रहे थे— कौंसी वैतण्यमयी तेजस्वरूपा ज्ञानदायिनी बलशालिनी है यैरी यह मातृभूमि, कौंसा सुन्दर, समीता है इसका महिमामय हिमामय ? कौंसे बीजम के धनी हैं यहां के निवासी ! पर हाथ रे भारत भूमि ! तू पददलित विरस्तृत एवं दुःखमय है ! मद्रास के मन्त्रियों को अपनी बेयना ध्यस्त करके हुए स्वामी जी ने सिखा— 'भारतमाता हजारों दुबकों की बलि चाहती है—मात्र रखो मनुष्य चाहिये, पशु नहीं भारत की जल-जीर्ण बरखा हो गई है । देख छोड़कर बाहर जाने में तुम्हारी आति नष्ट होती है— ऐसे तुम मूर्ख हो । यदि बेल को चाहते हो तो जमरि के सिये लच्छि बकाने के सिये पौ-जान से प्रयत्न करो ।

### पाषेयहीन परिव्राजक

१६ जुलाई १८२३ ई० को स्वामी जी का अहाज कलावा पहुंचा । वहां से ट्रेन द्वारा चिकागो के लिये प्रस्थान किया । इस विद्यालय मयरी में एक भी परिचित नहीं था । न स्वामी जी को ही कोई पूर्व जानकारी थी । १ १२ दिनों तक वैज्ञानिक उद्यति से जममपाटी इस मयरी को देखते रहे उससे जब भारत की बीनता की तुलना करते तो मांछों में जानू जा बाते । यहीं उन्हें पता चला कि धर्म-समा सितम्बर में होमी । इतने दिनों का खर्च चमाने के लिये बन भी उनके पास नहीं था । प्रतिनिधि समा की संरक्षता का भी समय भीत चुका था । किसी ओर से सहायता की आशा भी न थी । पर अचानक की आशा की इसमिये वे रुके रहे और एक दिन मद्रासी मुबकों को यह समाचार भेज दिया कि कुछ धन भेज दो । बन की बचत के लिये वे चिकागो से बोस्टन चले गये । उनकी यह यात्रा बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई । वहां के परिचय के आधार पर एक पत्र भेजकर स्वामी की चिकागो भेजे । वहां पहुंचते-पहुंचते रत हो गई । कमेटी के कार्यालय का पता बजाठ होने से कहां जायं क्या करें ? यह समस्या थी । अन्त में बाध्य होकर उक्त महापुरुष को स्टेशन पर ही एक आसी यक्ष के अन्दर बुझकर प्रणय शीत सहरी से अपनी रजा करनी पड़ी ।

प्रत्येक काम जब कार्यालय की खोज में निकले तो सर्वत्र विरस्तार एवं सिद्धिक्रिया भिन्नभी प्रारम्भ हो गई । 'कामा आवमी' कहकर सभी अपमान करने लगे । नहीं-कहीं तो लोगों ने दरवाजे बन्द कर दिये । काय ! उन्हें कौई यह बलाता कि एक दिन तुम इसी महापुरुष के दर्शन के लिये इतने व्याकुल होकर बीड़ोये कि यह दरवाजा बन्द करना ही भ्रम जाओये । परेज्ञान होकर स्वामी जी

सड़क के किनारे बैठ गया । टीक उसी समय सामने के मकान से एक महिला न बाहर पृष्ठ— 'महात्म ! क्या आप बर्म सभा के प्रतिनिधि हैं ? स्वामी जी बोले— 'जी हाँ ! पर कार्यालय का पता लो जाने से बड़ी किराति में पढ़ गया हूँ ।'

वह महिला उसी समय उम्हें बनने पर ल गई । मोरब-विश्राम कराकर धन-मुना के कार्यालय में ल गई । वहाँ स्वामी जी को सभा का प्रतिनिधित्व मित्र पाया एवं कार्यालय प्रमुख क द्वारा प्रतिनिधि के साथ खूने की व्यवस्था कर ली गई ।

### घह अमोघ घापी

२१ सितम्बर १८९३ बि-ब के इतिहास का वह स्वर्णिम पृष्ठ है जो कभी मुंभता नहीं हा सड़का । प्राप्य और पायबाप्य के मियन का वह पुन रिक्त इतिहास का बीरक है । इसी दिन स्वामी जी द्वारा प्रतिराशित भाख क बेशक्य बर्म न बिजयी होकर बिजय को बाज्जर्म में टाउ लिया । हुआयें दर्मकी से लषा लष भरे हाथ में सभा प्रारम्भ हुई । मंच पर बेग-बिदेन क सभी बनों के प्रति निधि बिद्यारम्भान प । सनारति की बाया से मनी प्रतिनिधि धनना-बनना बरिषय बेकर बनने बर्म का संनिष्ठ-भा परिषय दते और टिर बनना म्यान प्रह्य कर लये । मन्त्र में बापी आनी स्वामी जी की । बाप्याग्मिक ठम स जय मयाठा दिम्प बाज्ज बँस ही मंच के ऊपर उभय सना का म्यान बरखस उबर निष पया । पहिम बाप्य के ही 'अमरिका के बहिनी और भाइयो'—न जाने कैसा बाहू मय पा टि मुनस ही कलन ध्वनि से सनासदस पूज उठा । बार बार प्रनास करने पर ली वह बाज्ज की द्विपौर भाप्य होने का नाम ही न लगी । स्वामी जी का ली प्रनास जब बाप न दर सजा लो के ली बुर लड़ लो ल्ये । उन लणों में निमित्त विपुष ललि एवं भारतीय धारमा के म्वह स बाताभीं पा हूदय बाप्यबिभोर हा उठा । जैस-जैस स्वामी जी बोपये बाज धोत्रापय लड़ लोये जाने । बारों बार से बार-बार ऐसी कलन ध्वनि गुन बापी जो रूप्य का मान ही न लगी । पायबाप्य उदय क बापिक मानकों क बम्प-करण में लषा म के रिप प्रदम बार मानय जाति के यक्ष्म की बनुदुति उगाय हूँ । स्वामी जी की बापी में मानक की मानक क प्रति बेदना बाज ली ली भारतीय ध्वनिों की बापी अंशुत लो ली ली । रोमा रोमा ने लिखा है कि 'यह ली समझान देब का नि-गनाज पा जो समस्त बिज्ज-बाप्यों का बलिज्जयन कर

उनके महान् शिष्य के मुख से निकला । उनके मापक में शास्त्र प्रेम की बाणी गूँज रही थी ।

### हिन्दू धर्म की जय-जयकार

अपनी उन्नति एवं विकास के गर्वसे अमेरिकावासी पागलों की भाँति स्वामीजी के पीछे-पीछे घूम रहे थे । सारा अमेरिका उनके चरणों पर लोट गया । वहाँ के समाचारपत्रों ने लिखा— 'उनकी बसकृपा मुझे के बाद भारत की तरह ज्ञान-समृद्ध देश में धर्मप्रचारक भजना कौसी मूर्खता की बात है इसे हम विशेष रूप से अनुभव कर रहे हैं । भगिनी निवेदिता ने लिखा है— 'स्वामीजी ने जब सिक्कीम महासभा में भाषण देना प्रारम्भ किया तो हिन्दू संस्कृति का अतीत उनके माध्यम से दोताओं के समक्ष साक्षात् खड़ा हो गया । भारत के बोरबतासी भूतकाल की ज्योति देखकर वे हृत्प्रभ हो पये । पर जब उनका भाषण समाप्त हुआ तब आधुनिक हिन्दू धर्म की सृष्टि हुई । महासभा का उनका अन्तिम भाषण दिनांक २७ सितम्बर को हुआ । जिसने भारतीय संस्कृति को महत्त्व के सर्वोच्च शिखर पर अतिष्ठित कर दिया ।

### मातृभूमि की पूजा करो

धर्म-सभा के पश्चात् अमेरिका का भ्रमण प्रारम्भ हुआ । फरवरी १८९२ में उन्होंने न्यूयार्क में राजयोग एवं ज्ञानयोग पर अपना प्रभावी विचार व्यक्त करना प्रारम्भ किया । सोम सभा में ऐसे जमते कि उठने का नाम ही न लेते । स्वामी जी किन्नरी कीर की तरह उन पर अपना प्रभाव छोड़ते जा रहे थे । पर इस विम्बिजय के गर्व में वे भारत को नहीं भूले । अपनी मातृभूमि उसके पद-रहित पुत्रों की दीपता उनकी आँखों के सामने सदा खड़ी रहती । उन्होंने एक पत्र में लिखा— "बागामी ५ वर्षों के भियं जमी देवताओं को मन से निकाल देना होना । हमारा एक मात्र आकृष्ट देवता हमारी आदि है । इस विपद की पूजा ही हमारी मुख्य पूजा होगी । सबसे पहिले जिस देवता की पूजा करोगे— वह हैं हमारे देवतायी ।

### अप्रेतों के घर में

स्वामी जी की मसोसाया अमेरिका से इन्वीष्ट पाहुनी । वहाँ से निर्मलज आने लगे । पर एक शुक्लम देश के प्रतिनिधि का जो उन्हीं का बुक्काम था वे

स्थापित करे यह प्रश्न था ? पर कुछ दिनों बाद ही उनका प्रवाद वह गया । १८ नवम्बर १८६५ को अपने एक मन्त्री की शिष्य को स्वामीजी सिखते हैं—'ईर्ष्या में मेरा काम बहुत बढ़ा हुआ है । मुझे इस सम्बन्ध में स्वयं भावपूर्ण है । ईर्ष्या की इस यात्रा में उन्होंने भारत को पदचिह्नित करम वाली अंग्रेज जाति को भारतीय संस्कृति की महत्ता का विग्नर्जन करवाया । खासी बुनियाद पर साधन करने वाली अंग्रेज जाति एक दुसाम देन के इस कौपेय बदन भारी परमदूत की छात्र-परिभा के सम्मुख नष्ट मस्तक हो गई । अज्ञानिभूत होकर एक महिमामयी मनिनी स्वामीजी का शिष्यत्व ग्रहण कर भारत आयी और भारतीयता के नाम से पहचानता है ।

स्वामीजी अमेरिकी शिष्यों के साथ पर पुन अमेरिका लौट आये । कुछ दिन अमेरिका में धर्म प्रचार करने के पश्चात् उन्हें ईर्ष्या जना पडा । इस बार प्रसिद्ध विद्वान मैन्ट्रूमर स उनकी भेंट हुई । वहाँ से वे योरप भ्रमण पर निकले । जर्मनी पार्य एवं स्विट्जरलैण्ड आदि का भ्रमण कर व पुन ईर्ष्या कायम बने गये ।

### 'भारत मेरा सर्वस्व'

इस समी अक्षि ठरु भारत से दूर रहने का बुझ बढ़ता ही गया । भारत की चिन्ता पनीभूत होती गई । यहाँ साथ साथ उनके दर्शन के शिष्य ब्याहृत पा । उन्ही समय एक अंग्रेज शिष्य ने उनसे पूछा— 'स्वामी जी इन कई वर्षों ठरु पाश्चात्य देशों में रहने के बाद भारत आपको कैसा लगेगा ? भारत ही बाबेस के साथ उन्होंने उत्तर दिया—'पाश्चात्य देशों में आने के पूर्व मैं भारत को हृदय से प्यार करता था किन्तु अब मेरे शिष्य भारत की वायु यहाँ ठरु भारत का प्रत्येक भूमि-कण स्वर्ग से भी अधिक पवित्र है । भारतभूमि पवित्र भूमि है । भारत मय तीर्थ है ।

### स्वदेशागमन

१६ नवम्बर सन् १८६६ ई० को स्वामी जी सत्यन छोड़कर, रोबर, केन और माण्टेनेनिय के राज्ये इन्नी पहुँचे । ३० दिसम्बर को नेपल्स म उनका गमन छूय । सन् १८६७ ई० की १५ जनवरी को स्वामीजी कोपम्बो पहुँचे । यगरे बान से आर्बेट्टिड संन्यासी को देखते ही अस्मिन् जन-अनुराग हर्ष से



नाथ उठा । सहस्रों लोथ उनके चरणों पर मोट गये । सिंहल के विभिन्न स्थानों में स्वामीजी १० दिन तक बूमते रहे । फिर चल पड़े भारत की ओर वहाँ की जनता अपने इस धर्मदूत का स्वागत करने के लिए बातुर हो रही थी ।

## माँ की गोद में

कोलम्बो से पहला छूटा और स्वामीजी का अन्त-करण मातृभूमि के दर्शन के लिये व्यग्र हो उठा । जैसे ही दूर से भारत का समुद्रतट दिखाई पड़ा उनके मनों से आनन्दामुग्धों की बाध बह गयी । हाथ जोड़कर वे एकटक उस तट की ओर देखते रहे । मार्गो साक्षात् भारत माँ का दर्शन कर रहे हों । पहला दिनारे पर समते ही पागलों की तरह स्वामीजी डेक से नीचे उतरे और भारत की भूमि पर पैर रखते ही साष्टांग प्रणाम कर उस भूमि में इस प्रकार मोटने लगे मानो बरसों बाद कोई बच्चा अपनी माँ की गोद में पहुँचा हो । उनके मुख से अनायास ही ये शब्द फूट पड़े— बिदेसों में रहकर जो कुछ भी अपवित्रता मेरे शरीर या मन को छू गई हो भारत की इस पवित्र भूमि के स्पर्श से वह सब मल्ट हो गई । माँ की गोद में मेरे सब कर्मण्य बूम गये । बार-बार वे भूमि को नमन करते और उसकी जय-जयकार करते जाते । बेहमक्ति की उस आत्मीयता में अकबाह्य करने वाला उपस्थित जन-समुदाय यदि इस वृष्य को देखकर आत्मविभोर हो उठा हो तो आश्चर्य भी क्या ?

फिर स्वामी जी मद्रास पहुँचे । मद्रास में वे १ दिन तक रहे । कोलम्बो से मद्रास तक की यात्रा में स्वागत समारोहों के कारण स्वामीजी काफ़ी क्लान्त हो गये थे । विभिन्न स्थानों से निमंत्रण आ रहे थे । पर उन्होंने सब अस्वीकार कर दिने और २० फरवरी १८१७ को स्वामीजी कलकत्ते पधारे ।

कलकत्ते में स्वामीजी का बड़े उत्साहजन्य वातावरण में स्वागत हुआ । स्वागत समारोहों के इस क्रम में वे अपना काम नहीं भूले । उनके सभी मुख-बाई एवं शिष्य उनसे आ मिले । सबको विभिन्न प्रान्तों में भेजकर उन्हें उनका काम बताकर स्वयं संयत्न कार्य में लग गये । इसी समय स्वामी विवेकानन्द ने तर गाद्यय की सेवा के लिये रामकृष्ण मिशन की स्थापना की ।

## उत्तर भारत की यात्रा

मिशन की स्थापना के कुछ दिन बाद ही स्वामीजी उत्तर भारत की यात्रा पर निकल पड़े । बम्बोड़ा एवं पंजाब होते हुये वे कस्मीर पहुँचे । उसके अनन्तर

स्वातकोट साहौर, देहउपून भापि स्वानों पर भापय देते हुये राबस्वान गये । उनकी बापी ने सभी के अन्तर को उद्दीपित कर दिया । उन्होंने बेतबासियों को पुकार-पुकार कर कहा— 'तुम सभी में ब्रह्म की शक्ति है । पत्थों के भीतर सपना तुम्हारे सवा पाता पाहता है ।

## पुन विदेश यात्रा पर

स्वामीजी की प्रत्येक यात्रा कार्य रूप में परिणत होती जा रही थी फिर भी पश्चिम की अवस्था ब म भूसे । यद्यपि स्वास्थ्य बिपड़ रहा था फिर भी डाक्टरों की सलाह मकर के समुद्र यात्रा पर निकस पड़े । स्वामी सुरियानन्द एवं निवेदिता उनके साथ चली । २० जून १८९९ ई० को स्वामीजी का जहाज कलकत्ते से रवाना हुआ । ३१ जुलाई को विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए वे मन्दन पहुँचे । अपार भीड़ लग गई । वहाँ किसी भी समा में भापय न देते हुये वे न्यूपाक चले गये । इस बार के सपना १ वर्ष अमेरिका में रहे । इस पाश्चात्य भ्रमण में स्वामीजी का ध्यान अमेरिका और भारत के जीवन-मार्ग के बीच की हिंसक भोग-आलस्य स्वार्थ साम्राज्यवाद की मोभुप दृष्टि बापि की ओर बाह्य हुआ । पाश्चात्य सन्धता में श्याप्य बाह्य चमक पर उन्होंने भीषण प्रहार किया । वे निवेदिता से बोम— 'पाश्चात्यों की जीवन-यात्रा अट्टहास की तरह है परन्तु उसके नीचे दर्शन है । उसकी परिणामाप्ति भी स्वयं में ही हापी

९ दिसम्बर सन् १८९० ई० को वे पेरिस में बिपना हुंगरी सर्बिया इमानिया बुन्गेरिया बुस्तुनतुनिया होकर मिस्र का भ्रमण करते हुए बम्बई से बैसूर जा गए । स्वास्थ्य काफी बिपड़ हुआ था फिर भी डाका भापि का दौरा करने चले गए ।

## जन कल्याण के लिए

इसके बाद स्वामीजी इतने अस्वस्थ हो गए कि वहाँ भी जाना-जाना दुमर हो गया । रोग-सैन्या पर भी भारत के पुन जागरण की मानसा उम्हें स्पष्टि कर देती थी । उन्होंने सटे-सटे अपने एक मन्त्री मिष्य को लिखा— 'जब तक प्राण मेरे शरीर को छोड़ न देवें तब तक मैं काम करता चर्भुगा और मृत्यु के बाद भी हमार के कल्याण के लिए काम करता जाऊँगा ।

धीरे-धीरे स्वामीजी महाप्रस्थान की तैयारी कर रहे थे । फिर भी पास जाने बापों को कभी सीटाते नहीं थे । वे बहते— 'यदि स्वदेश-वासियों की

आत्माओं को प्रबुद्ध करने के लिए सैकड़ों बार मुझे मृत्यु-माठमाओं का कष्ट भोगना पड़े तो भी मैं पीछे न हटूँगा। क्रमशः सांसारिक बातों से वे उदासीन होते गए। पुरु-माइयों को चिन्ता होने लगी। उन्हें ठाकुर की बात याद आई—'अब वह अपना स्वरूप जान जायगा तब शरीर नहीं रहेगा। एक दिन एक गुब भाई ने पूछा ही तो मिया—'स्वामी' आप कौन हैं? क्या आपने यह जान लिया है? 'वे बोले—'हाँ जान गया हूँ। यी रामकृष्ण देव ने मेरी चामी मुझे बापत कर दी है।

५ जुलाई सन १९०२ ई० को प्रातःकाल से ही स्वामी जी अपनी सामान्य स्थिति में नहीं थे। आज वे बिहबल से इधर-उधर घूमते बैठते बातें करते पर उनकी व्याकुलता में कोई कमी न आती। उनका भावबोध बढ़ते हुए घूर्ण ही के साथ बढ़ता ही जा रहा था। काशी 'मा' के मन्दिर में गए तो पश्टी भाव समाधि में डूबे रहे। उन्हें देखकर ऐसा समझा जा कि जैसे उनका कुछ जो गया है। मानो वे किसी अमृत्यु निधि की खोज कर रहे हों किसी अज्ञान्य की प्राप्ति की कामना उन्हें सता रही हो। उनकी उद्विग्नता इस सीमा तक बढ़ गई कि टहलते-टहलते बीच-बीच में स्वयं से ही बोस उठते। 'है कोई जो समय की चुनौती स्वीकार कर इस श्रुति-सन्तानों को पतन की ओर जाने से बचा सके जो इस मीथिकवाद के अन्धवीच में यानत्र को उसका अज्ञानोद्देश्य बता सके, उसको यह दिखा सके? जायव ने उस विवेकानन्द की खोज में वे जो उनके अचूरे काम को पूरकर स्वामीजी द्वारा प्रकृतबलित श्रुति को उदासनाते रखता। इस बीचम की अन्तिम बेला में अन्ततः यह कमी ही उनकी अज्ञान्य का कारण थी। दिन भर अन्तर्गत मानसिक कष्ट किसी अज्ञान्य अन्तर्गत संभवा एवं विचारों के अज्ञान्य में वे इधर उधर घूमते रहे। कहीं भी विश्राम न मिलता। यहां तक कि 'मा' के मन्दिर में भी नहीं।

### अनन्त की ओर

'मा' काशी के मन्दिर में सामान्य पूजा की पश्टी बनी तो वे भी अपना बीचम पुण्य नैकर अर्चना के लिए जा पहुंचे। यह उनके बीचम के उस पाश्चि शरीर के माध्यम से अन्तिम पूजा थी। आरती के बीच बने तो उन्होंने उन दीपों में जैसे कुछ अज्ञान्य वस्तु देखा ही हो। मन्दिर से निकल आए। जायव के सबसे ऊपरी भाग में जा बड़े हुए। यहां से ठीक सामने या पूज्य मुन्देव का महासमाधि स्वतः। वे अन्ततः उरुकी ओर जाबकिनोर हो देखते रहे।

कब तक इसका ध्यान उन्हें भी नहीं रहा । उनकी आँखें खुलीं तो अपने को एक ठकिए के सहारे सेटा पाया । स्वामी जी की गीती आँखें किसी असह्य बेचना की स्पष्ट सूचना दे रही थीं । उस दिन सायब उन्हें रामकृष्ण देव द्वारा बताया गए उस रहस्य का पता चल गया था कि 'यदि मरेन्द्र जान वायवा कि वह कौन है ? तो फिर इस दुनियाँ में न रहेगा । और सम्भवतः इस ज्ञान का कपाट खोलने की वह चाबी जो मुखेश ने अपने पास रख ली थी आज उन्हें वापस कर दी थी । समस्त विश्व मानवता का सम्बल 'माँ' भारती का ऐबस्वी सपूत आज सबको अचहाय करके जाने को तैयार हो रहा था । भारती के उन दीपों में उसने अपने जीवन का प्रकाश देखा था । सब के देखते ही देखते एक सन्धी साँस खींचकर वे उस विष्य ज्योति में मिल गए जिसके अंत थे । सप्तपि मन्त्र का ज्ञापि अपने पूर्व स्थान पर चला गया । चिप्यों ने देखा स्वामी जी अब नहीं रहे । घेय रह गया आमा से प्रदीप्त उनका पश्चिम शरीर और छोड़ गए वे विश्व के लिए बेदान्त की बापी मानवारमा के अमरत्व एक एकरव का सन्देश स्वाधीनता एवं स्वदेश प्रेम की वह पकड़ती ज्वाला जो भारत माता के कोटि-कोटि सपूतों का कर्मप जमा कर उन्हें सदा बनाए रखेगी जो भूसे मरके मानवों को मार्ग दिखाती रहेगी ।\*\*





**भाग**

**एक**

**सदेश**



## सन्देश

ध्यान दो,

तमी और केवल तब ही तुम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो, जब इस नाम को मूल से ही तुम्हारी रगा में शक्ति की विद्युत-धरम बाँड़ जाय ।

तमी और केवल तब ही तुम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो जब इस नाम को धारण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति-वह पाहे जिस देश का ही वह पाहे तुम्हारी भाषा बोलता हो यथवा कोई अन्य-प्रथम मिसल में ही तुम्हारा सगे से सगा तथा प्रिय से प्रिय बन जाय ।

तमी और केवल तब ही तुम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो जब इस नाम को धारण करने वाले किसी भी व्यक्ति का दुःख-दर्द तुम्हारे हृदय को इस प्रकार व्याकुल कर दे मानो तुम्हारा अपना पुत्र संकट में हो ।

तमी और केवल तब ही तुम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो सकोगे, जब तुम उनके लिए सब कुछ सहने की तत्पर रहो। उन महान् गुरु गोविन्दसिंह के समान, जिन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना रक्त बहाया, रणक्षेत्र में अपने साइने बेटों को चलिगान होत देखा, पर जिनके लिए उन्होंने अपना तथा अपने सगे-सम्पत्तियों का रक्त बहाया, उनके ही द्वारा परित्यक्त होकर वह धामस सिंह कामधेनु से गुपचाप



हट गया और बक्षिण जाकर चिरनिद्रा में लौ गया । किन्तु, जिन्होंने क्लृप्ततापूर्वक उनका साथ छोड़ दिया था, उनके लिये अभिघाप का एक क्षण भी उस वीर के मुह से न फूटा । यह है आदर्श उस महान् गुह का !

स्मरण रहे

यदि तुम अपने देश का कल्याण करना चाहते हो तो तुम में से प्रत्येक को गुह गोविन्दसिंह बनना होगा । नव ही तुम्हें अपने देशवासियों में सहस्रों दोष दिखायी दें पर ध्यान रखना कि उनमें हिन्दू रक्त है । वे तुम्हें हानि पहुँचाने के लिए सब कुछ करते हो, तब भी वे प्रथम देवता हैं जिनका तुम्हें पूजन करना है । यदि उनमें से प्रत्येक तुम्हें मानी वे तब भी तुम्हें उनके लिए स्नेह की भाषा बोलनी है और यदि वे तुम्हें भक्का देकर बाहर कर दें, तब भी तुम कहीं दूर जाकर उस धर्मिणी वाली सिंह—गोविन्दसिंह के समान मृत्यु की गोद में बुध्वाप सो जाना । ऐसा ही व्यक्ति हिन्दू कहलाने का वास्तविक अर्थ कानी है यही आदर्श सदैव हमारे सामने रहना चाहिए ।

आओ हम अपने समस्त विवादों एवं आपसी कलह को समाप्त कर स्नेह की इस भव्य-धारा को सर्वत्र प्रवाहित कर दें ।

## हमारी पुण्य-भूमि और उसका गौरवमय अतीत

यदि इस पृथ्वीतल पर कोई ऐसा देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है; ऐसा देश जहाँ संसार के समस्त जीवों को अपना कर्मफल मोचने के लिए जाना ही है — ऐसा देश जहाँ ईश्वरोपमुख प्रत्येक आत्मा का अपना अन्तिम सत्य प्राप्त करने के लिए पहुंचना अनिवार्य है ऐसा देश जहाँ मानवता में श्रद्धा उदारता शुद्धता एवं शांति का चरम स्तर स्पर्श किया हो,—तथा इन सबसे आगे बढ़कर भी जो देश अस्तर्हित एवं आप्यारिभक्ता का घर हो—तो वह देश भारत ही है।

अतीत गाथा

भारत का प्राचीन इतिहास अमौकिक उद्यम एवं उनका बहुविध प्रदर्शन असीम उत्साह विभिन्न शक्तिशा की अप्रतिहत क्रिया और प्रतिक्रिया के समन्वय तथा इन सबमें परे एक देवगुह्य जाति का गम्भीर चिन्तन की अपूर्व गाथा है। यदि 'इतिहास' शब्द का अर्थ केवल राज राजवाहों की कथाओं में ही लिया जाय यदि केवल समाज-जीवन के उस चित्रण को ही इतिहास माना जाय त्रिसंम समय-समय पर होने वाले घासकों की कमुपित वासनाओं उरुण्डता और सोमशुक्ति का मज सागुव देव पड़ता हो अपना उन नामकों के अष्टे-बुरे श्रवणों तथा उनके तत्कालीन समाज पर परिणाम के निवेदन को ही 'इतिहास' की संज्ञा दी जाय—तो शायद भारत में एसा कोई इतिहास-रस नहीं मिलेगा। किन्तु भारत के विनाश घामिह साहित्य काष्प-सिन्धु दर्जन संघों एवं विभिन्न शासकों की प्रत्येक पंक्ति हमारे समस्त चिन्तित राजाओं की

संज्ञावसियों एवं जीवन चरित्रों की अपेक्षा एहल मुना अधिक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती है प्रगति के उस महाभूमिमान के प्रत्येक चरण का जब सम्पत्ता के बिह्वान के बहुत पूर्व एक विज्ञान मानव समूह ने कुछ प्यास से परिचासित सोम मोह से प्रेरित क्षीम्यव्युष्णा से आर्कषित होकर अनेक मार्गों से मुबर कर अपनी महान् और अपराजेय बुद्धिबल के सहारे अनेक मार्गों और उपायों का आधिष्कार कर पूर्णता की परमावस्था को प्राप्त कर लिया था । यद्यपि विपरीत परिस्थितियों के भीषण संभाषाओं ने प्रकृति के बिह्व उतक दुप-मुपों तक संघर्ष के परिणामस्वरूप एकत्र हुई असम्भ्य जय पताकाओं को जीर्ण-जीर्ण कर डाला और काम के अपेक्षों ने उन्हें अर्जर कर डाला तथापि वे आज भी भारत के अतीठ गौरव की गणायें या रही हैं ।

## आर्य जाति

आज यह जानने का हमारे पास कोई उपयुक्त साधन नहीं है कि यह जाति मध्य एशिया उत्तरी योरप या उत्तरी म्युन प्रदेस से धीरे-धीरे धामे बढ़ी और अन्त आने बढ़ते हुए अन्त म इसने भारतवर्ष में बस कर उस पवित्र बनाया अथवा भारत की यह पुष्य भूमि ही उसका मूल स्थान रही है ।

आज हमारे पास कोई भी ठोस आधार यह सब प्रमाणित करने के लिए नहीं है कि भारत के अन्तर अथवा बाहर बसी हुई इस विज्ञान जाति ने ही प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने मूल स्थान से निष्क्रमण कर कालांतर में योरप एवं अन्य स्वामों पर अपने उपनिवेश बसाये—अथवा इन लोगों का वर्ध स्वैत या या कृष्ण उनकी आँखें नीली थी या काली उनके केस सुनहरे थे या काले । केवल संस्कृत भाषा की कतिपय योरोपीय भाषाओं से अनिच्छता का अकेला लघ्य आज हमारे पास है ।

इसी प्रकार इस अन्तिम निष्कर्ष पर पहुचना भी सरल नहीं है कि हम सभी वर्तमान भारतीय उस जाति के कुछ अंशक हैं अथवा हमारी रक्तों में उनका फिटना रक्त बह रहा है अथवा हममें फिटनी ऐसी जातियाँ हैं जिनमें उस रक्त का लक्षण भी है । कुछ भी हो इन प्रश्नों का अन्तिम हल नहीं निकलता है तो हमारी कोई विवेक हानि नहीं है ।

परन्तु एक बात ध्यान में रखनी होगी कि जिस प्राचीन भारतीय जाति में सम्पत्ता की किरणें सर्वप्रथम उदित हुईं जिसमें बहुत विद्वान्धीमता ने स्वयं को अपनी पूर्व आभा के साथ सर्वप्रथम प्रकाशित किया उस जाति क

हजारों सारों पुत्र उसी मेघा के बंशभूत—आज भी उन समस्त भावों एवं चिन्तन के उत्तराधिकारी के रूप में विद्यमान हैं ।

मदी पर्वत एवं समुद्रों को सांभकर, देश-कास की बाधाओं को मानों नगम्य कर, भारतीय चिन्तन का रक्त भूमण्डल पर रहने वाली अम्य जातियों की लड़ों में बलक बाने-अनजाने स्पष्ट अनिर्बचनीय मामों से अब तक प्रवाहित हुआ है और आज भी हो रहा है । सम्भवतः विश्व की पुरातन ज्ञानराशि का बहुतांश हमारी देन है ।

### विश्लेषणात्मक मेघा

‘गासठ छत बापते! निरस्तित्व में से अस्तित्व का जन्म नहीं हो सकता है । — जिसका अस्तित्व है उसका आधार निरस्तित्व नहीं हो सकता । शून्य में से ‘कुछ’ सम्भव नहीं । यह ‘काम-कारण-सिद्धान्त’ सर्वशक्तिमान् है और देवताप्राणी है । इस सिद्धान्त का ज्ञान उठना ही पुराना है जितनी आर्य जाति । सर्वप्रथम आर्यजाति के पुरातन ऋषि-कवियों में इसका मान किया उसके दार्शनिकों ने इसका प्रतिपादन किया और उस आधार सिद्धा का रूप दिया जिसके ऊपर आज भी सम्पूर्ण हिन्दू-जीवन का प्रासाद खड़ा होता है ।

एक अपूर्व विज्ञासा लेकर इस जाति में अपनी यात्रा आरम्भ की । किन्तु सीमा ही वह एक निर्भीक विश्रमण में परिणत हो गई । यद्यपि उसकी प्रारम्भिक कृतियों को देखकर समता है भावों से किसी भावी श्रेष्ठ क्रमाकार में कोपते हावों बनायी हों तथापि सीमा ही उसने आश्चर्यजनक परिणाम दिलाया उसकी कृतियों में अपूर्व मृगशंका आ गयी और उसने एक अति भीमानिक शास्त्र को जन्म दिया ।

इस साहसी जाति ने अपनी यज्ञवेदियों की प्रत्येक ईंट को छान डाला अपने शास्त्रों के प्रत्येक स्वर-अक्षर को छाना-बीना परला और जोड़ा अपने सम्पूर्ण कर्मकाण्ड को खंडा अस्वीकृति एवं समाधान की मंत्रियों से पार कर कई बार स्वबस्वित रूप प्रदान किया ।

इस जाति ने कभी अपने देवताओं को उलट-मुलट कर परला तो कभी अपने उस प्रजापति का जिस से अब तक मष्टि का सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक सर्वश्रेष्ठा पन्मशाठा मानते आये हैं केवल पीछे स्पान दिया तो कभी उस विस्तृत अनुपयोगी कहकर द्विजारे केंद्र दिया और उसके बिना ही एक विश्व धर्म (बीद धर्म) का भीगवेस किया जिसके आज भी ससार में किसी अम्य धर्म से अधिक अनुयायी हैं ।

इस जाति ने विविध प्रकार की वेदियों की रचना में हूंटों की व्यवस्था से रेखा गणित शास्त्र का विकास किया और अपनी उपासना तथा यज्ञों को निश्चित समय पर करने के प्रयास में ज्योतिष शास्त्र को जन्म दे संसार को बहिष्कृत कर दिया।

इस जाति ने भविष्य शास्त्र को संसार की किसी भी सर्वाधीन अथवा प्राचीन जाति से कहीं अधिक योगदान किया। रसायन-शास्त्र वैद्यक-शास्त्र एवं संबंधित-शास्त्र के अपने ज्ञान तथा वाच-यज्ञा के आविष्कार के द्वारा वायुनिक योरोपीय सभ्यता के निर्माण में भारी सहायता पहुंचायी।

इस जाति ने ही कार्पक कथानों के माध्यम से सिधु-मस्तिष्क को संस्कारित करने के शास्त्र का आविष्कार किया। आज भी प्रत्येक सभ्य दश के सिधु-विद्यालयों में प्रत्येक सिधु को उसी पद्धति से पढ़ाया जाता है और बहु जीवन-मर्यादा इन संस्कारों को लेकर चलता है।

इस विशेषणारमक जिज्ञासा के आगे और पीछे, उसके आगे और एक मसमसी आवरण के रूप में विद्यमान उस जाति की एक अन्य महान् बौद्धिक विशेषता है—और यह है उसकी कबित्वमय अन्तर्दृष्टि। उसका धर्म उसका दर्शन उसका इतिहास उसका नीतिशास्त्र उसका राज्य-शास्त्र सब काव्यमयी कल्पना के पुष्प-कुंड में सजा दिये गये हैं—और यह सब कर्मकार है उस संस्कारित भाषा का जिसे हम 'संस्कृत' कहते हैं जिसके अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में उन्हें इससे अधिक अच्छी प्रकार व्यक्त करना न सम्भव था न है। यहाँ तक कि पश्चित-शास्त्र के कठोर तथ्यों की अभिव्यक्ति के लिये भी उस भाषा ने हमें संवीतमय शब्द प्रदान किये।

यह विशेषणारमक शक्ति तथा साहसी कबित्व-दृष्टि ही हिन्दू-जाति की मनोरचना में है जो महात्मा है जिन्होंने उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। वे दोनों मिलकर हमारे राष्ट्रीय चरित्र का केन्द्र बिन्दु बन गये। इनके समन्वय में ही जाति को सर्वत्र इन्द्रियों के परे बढ़ने की शक्ति दी। यही हमारी उन असीमी कल्पनाओं का मूल रहस्य है जो किसी किसी द्वारा निमित्त उन सौहृद्यों के समान है जो यद्यपि एक कठोर सौहृद-स्तम्भ में से काटकर निकाले गये हैं तथापि इतने सहीसे हैं कि उन्हें सरलतापूर्वक बूताकार किया जा सकता है।

जम्होंने कबिता की छोटे और चौड़ी में रत्नों की जड़ावट में सुवमरमर के बहुभुव फलों में अनेक स्वयं के संवीत में तथा आत्स्वजनक बसों में जो वस्तु-जगत की अपेक्षा स्वप्न-जगत के प्रतीत होते हैं। उन सभी के पीछे इस राष्ट्रीय वैतिष्ठ्य का सहस्रों वर्ष सत्वा इतिहास विद्यमान है।

सम्पूर्ण कलाओं और शास्त्रों यहाँ तक कि पारिवारिक जीवन की कठोर वास्तविकताओं का भी इन कर्मित्वमयी भारणों के आवरण से ढक दिया गया है। ये भारणार्थे तब तक धाये बढ़ायी गयी हैं जब तक इंद्रियगम्य का संयोग अतीन्द्रिय से नहीं हो जाता और दृश्य में अदृश्य की सुगन्ध नहीं आ जाती।

इस जाति की प्राचीनतम शक्तियों में भी हम उसे इस बंशिष्ठम में सम्पन्न और उसका प्रयोग में कुशल पाते हैं। निरिच्छ ही वेदों में इस जाति का जो बिन्न हमें मिलता है उसके निर्माण के पूर्व उसने जर्म और समाज के अनेक रूपों एवं अवस्थाओं को पार कर पीछे छोड़ दिया होया।

वेदों में एक सुमूर्ति देवतात्म बिसृष्ट कर्मकांड विविध व्यवसायों की आत्म्यवता की पूर्ति के हेतु अत्यन्त-बर्गों पर आधारित समाज-रचना एवं जीवन की अनेक आत्म्यवताओं तथा अनेक विकासिताओं का वर्णन उपलब्ध है।

### आध्यात्मिकता का आविष्कार

यही वह पुण्यल भूमि है जहाँ ज्ञान ने अम्य वेदों में ज्ञान के पुत्र अपनी आवास भूमि बनाई थी—यही वह भाण्डवर्ष है जिसके आध्यात्मिक प्रवाह के मौखिक स्त्रीक से समुद्राकार नग है और चिरञ्जिव हिमालय एक तह पर दूसरी तह बढ़ा कर अपने हिममण्डित किन्नरों द्वारा मानो स्वर्ग के रहस्यों में ही शक्ति रहा है। यह वही भाण्डवर्ष है जिसकी परत की महानतम शक्तियों की परणतज पवित्र कर चुकी है।

यहीं सर्वप्रथम मानव प्रकृति एवं अन्तर्जगत् के रहस्यों की जिज्ञासाओं के धंशुर उये थे। यही आत्मा की अमरता एक परमात्मा परमेश्वर की मुक्ता महति और मनुष्य के भीतर ओत प्रोत एक परमात्मा के सिद्धांत सर्वप्रथम उठे और यहीं पर्य तथा वर्जन के उच्चतम सिद्धांतों ने अपने, चरम मिलर स्वयं किये। इसी भूमि से अध्यात्म एवं वर्जन की सहर पर सहर बार-बार उमड़ी और अमन्त भुंसार पर छा गयी।

### देवत्व प्राप्ति के लिए संघष

जना अरभुन देन है यह ! हम पुष्प भूमि पर जाइ जो लड़ा हो—बह इसी भूमि का पुत्र हो अथवा बिहेगी—यदि उसकी आत्मा दुर्दोष्ट समुद्रों के स्तर तक नहीं गिर चुकी है तो—बह स्वयं को पृथ्वी के दन भेष्टतम एवं घुडतम पुत्रों के तेरोमय विचारों से गिरा हुआ अनुभव करेगा जो अज्ञानियों तक पशु की देवत्व

के बिनार तक उठाने के लिए कार्य करते रहे हैं और जिसका मारम्भ बीजने में इतिहास भी असफल रहा है। यहाँ का वायुमण्डल ही बाध्यात्मिकता की तरफों से मोत मोत है।

यह देश धर्मन आप्पात्मिकता भीतितास्व एवं उम सबका पुष्प नाम है जो मनुष्य को पशुत्व के विच्छेद उसके सतत संघर्ष में विधामम्बक प्रदान करते हैं। यह देश ही वह साधना भूमि है जिसके द्वारा मनुष्य अपने 'कर्म' के बाध रख को खँककर बजर-ममर आधि-अन्त रहित आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है। यही देश है जहाँ सुखों का प्यासा भरा रहा और उससे भी अधिक मय रहा दुःखों का प्यासा-विन्दु उमी तक जब मानव को सर्वप्रथम यह पता मचना कि यह सब मिथ्या है माया है। यहीं सबसे पहले जीवन के पूर्व विधास में पर भोग बिलासों की पोष में अकि और मय के चरम बिहार पर माधीन मनुष्य ने माया की खँजीरों को तोड़ बासा।

यही मानवता के समुद्र में आनन्द और पीडा सामर्थ्य और बीर्य्य क्षय और परिहृष मुख और दुःख हास्य और दरन जीवन और मृत्यु की अकि-बासी लहरों के बात प्रतिपाठ के आनीकन के बीच दिव्य आति और शास्वत निस्तम्बता की तीव्र आकांक्षा में से बीर्य्य का सिंहासन ब्रकट हुआ।

यहाँ इसी देश में सर्वप्रथम 'जन्म-मरण की कठिन समस्या है जीवन की तुष्या और उसे बनाय रखने के लिए कृपा और संघर्ष जिसका परिणाम केवल दुःखों के संघम में हुआ इन सब समस्याओं का समाधान किया गया और उन्हें हल किया गया। उनको हल तरह हल कर दिया गया मारों ने कभी पहले की ही नहीं और आगे कभी पहुँची भी नहीं। यहाँ और केवल यहाँ ही यह खोज हुई कि जीवन स्वयं ही एक अविद्याप है और किसी ऐसी सत्ता की प्रतिच्छया मात्र है जो एकमेव सत्य है।

यही वह देश है जहाँ धर्म को व्यावहारिक एवं सच्चात्म प्राप्त हुआ और केवल यहीं स्त्री तथा पुरुष धर्म के अन्तिम लक्ष्य का साक्षात्कार करने के लिए साहसपूर्वक कूद पड़े। विन्दुल सती ब्रकार जिस ब्रकार अन्व देशों में लोग जीवन के सुखों को मूढने के लिए पापल डोकर कूद सकते हैं और अपने कर्म और बन्धुओं को मूढ लेते हैं।

यहाँ और केवल यही मानव अन्त-करण का विस्तार इतना अधिक हुआ कि उसने न केवल सम्पूर्ण मानव-जाति सत्ता यही मपितु पशु-पत्नी और पेड़-पौधों को भी स्वयं मिल-तमा। उन्वतम देवताओं से लेकर पृथ के कर्मों तक महात्मम

मे निम्नतम तक सब कोई उस विनाम अनन्त मानव अन्त-करण में स्थान पा गये और केवल यही मानव-आत्मा ने सकल ब्रह्माण्ड को एक अविच्छिन्न अखण्ड दृष्टि के रूप में देखा और उसकी प्रत्येक बड़कन को अपनी बड़कन जाना ।

## सौम्य हिन्दू

सम्पूर्ण विश्व पर हमारी मानृभूमि का महान् ऋण है । एक-एक देश को सें तो भी हम पृथ्वी पर दूसरी कोई जाति नहीं है जिसका विश्व पर इतना ऋण है जितना कि हम सहिष्णु एवं सौम्य हिन्दू का । "निरीह हिन्दू"—कभी-कभी य शब्द तिरस्कार-व्यक्त्य प्रयुक्त होते हैं किन्तु यदि कभी किसी तिरस्कार-मुक्त शब्द प्रयोग में भी कुछ सत्यांश रहता सम्भव हो तो वह इसी अर्थ-प्रयोग में है । यह "निरीह हिन्दू" मनुष्य ही अमलिया की प्रिय सन्तान रहा है ।

प्राचीन एवं अर्वाचीन कालों में शक्तिशाली एवं महान् जातियों से महान् विचारों का प्रादुर्भाव हुआ है । समय-समय पर आश्चर्यजनक विचार एक जाति से दूसरी के पास पहुँचे हैं । राष्ट्रीय जीवन के उमड़ते हुए प्यारों ने अतीत में और वर्तमानकाल में महामन्य और शक्ति के बीजों को दूर-दूर तक बिखेर है । किन्तु मित्रो ! मेरे मर्दों पर ध्यान दो । सर्वत्र यह विचार-संक्रमण एजिप्टी के घोष के नाम सुदूरत मनाओं के माध्यम से ही हुआ है । प्रत्येक विचार को पहले एक ही बाड़ में डूबता पड़ा । प्रत्येक विचार को सार्वभौमिक मानवों की रक्त-पाश में डीरना पड़ा । शक्ति के प्रत्येक शब्द के पीछे अनेक लोभों का हाहाकार, अनाथों की चीन्कार एवं विधवाओं का अन्नम अशुपात्र मईव विद्यमान रहा । मुम्बय इसी मार्ग में अल्प जातियों के विचार संसार में पहुँचे ।

जब प्रिय का अस्तित्व नहीं था राम अविष्य के अचकार मर्म में क्षिप्त हुआ था जब आधुनिक योद्धाजानियों के पुत्रों अणुओं में रहने से और अपने शरीरों को शीते रंग से रंगा करने से उस समय भी भारत में कर्मपेठना का साम्राज्य था । उसमें भी पूर्व जिनका इतिहास के पास कोई संज्ञा नहीं जिस सुदूर अतीत के गहन अंधकार में मानने का माहस परम्परागत किम्बदन्ती भी नहीं कर पाती उस सुदूर अतीत में अब तक मागतवर्ष न म जान चितनी विचार-तरंगें निरनी हैं किन्तु उनका प्रत्येक शब्द अपने आगे जाति और पीछे आजीर्वाद लेकर गया है । संसार की सभी जातियों में केवल हम ही हैं जिन्होंने कभी दूसरों पर शैक्ति-विजय प्राप्त का पप नहीं अपनाया और इसी कारण हम आजीर्वाद के पात्र हैं ।



एक समय था जब ग्रीक सेनाओं के सैनिक लम्बसम के पराधात के बरती कांपा करती थी । किन्तु पुष्पीतल पर स उसका मस्तिल मित गया । जब तुनाने के लिए उसकी एक माया भी रोप नहीं है ; ग्रीकों का बहु पीरव-सूर्य यथा-सर्वथा के लिए मस्त हो गया । एक समय था जब संसार की प्रत्येक उपभोग्य वस्तु पर रोम का ध्येनांकित ध्वज उड़ा करता था । सर्वत्र रोम की प्रभुता का दबदबा था और बहु मानवता के घर पर सभार थी । पूष्पी रोम का नाम भेते ही कांप जाती थी परन्तु आज उसी रोम का कैपिटोलिम पर्वत सभ्यदुर्गों का डेर बना हुआ है जहाँ पहले सीसर राज्य करते थे वहीं आज मकदियां जाता बुनती हैं ।

इनके अतिरिक्त कई अन्य गौरवशाली जातियां घायी और जली नहीं कुछ समय उगड़ीं बड़ी चमक-दमक के साथ बर्ब से छाती मृत्नाकर अपना प्रभुत्व फैलाया अपने कमुवित जातीम जीवन से दुसरो का आघात किया पर भीय ही पानी के बुलबुलों के समान मित बरीं । मानव-जीवन पर ये जातियां केवल इतनी ही छाप डाल सकीं ।

किन्तु हम आज भी बीवित हैं और यदि आज भी हमारे पुराण ऋषि-मनु बापस मोट आवें तो उन्हें आश्चर्य न होया उन्हें ऐसा नहीं समेया कि वे किन्ती नए देश में गए । वे देखेंगे कि सहुनों-सहुनों बरों के अनुभव एवं चिंतन से विपद्य कही प्राचीन विधान आज भी वहां विद्यमान है अनन्य कताभियों के अनुभव एवं सुगों की अतिव्रता का परिपाक—बहु सनातन आचार-विचार आज भी वर्तमान है और इतना ही नहीं जैसे-जैसे समय बीतता जाता है एक के बाध दुसरे दुर्नाम्य के फेड़े उन पर आघात करते जाते हैं । पर उन सब आघातों का एक ही परिणाम हुआ है कि बहु आचार दुर्दुर्गर और स्वावी ही होते जाते हैं । किन्तु इन सब विधानों एवं आचारों का केन्द्र कहाँ है ? किस हृदय में रक्त सञ्चालित होकर उन्हें पुष्ट बना रहा है ? हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूल स्रोत कहाँ है ? इन प्रश्नों के उत्तर में सम्पूर्ण संसार का पर्यटन एवं अनुभव के पश्चात् मैं विस्वातपूर्वक कह सकता हूँ कि उसका केन्द्र हमारा बर्म है ।

यही बहु भारतवर्ष है जो अनेक कताभियों तक सत-सत विदेवी आक्रमणों के आघातों को झेस चुका है । यही बहु देश है जो संसार की म्ति भी कट्टयम से अधिक दुर्दुता से अपने अजब पीरव एवं अमर जीवन शक्ति के साथ लड़ा हुआ है । इसकी जीवन-शक्ति भी आरमा के समान ही अघायि अदम्य एवं अवर है और हमें ऐसे देश की सम्मान होने का पीत्य प्रत्य है ।

## अतीत से वर्तमान की ओर

भारत के सामाजिक नियम सर्वत्र पुमानुसार परिचलित नहीं हैं। उनका प्रारम्भिक उद्भव एक विद्यालय योजना के प्रतीकस्वरूप हुआ था और इन योजनाओं को धर्म-दान के साथ उद्घाटित किया था। प्राचीन भारत के महर्षियों की दृष्टि भाषी के यत्न में इतनी दूर तक प्रयोग कर चुकी थी कि विश्व को उनके ज्ञान का उचित मूल्यांकन करने के लिए सभी राजाधियों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। उनके कर्मों में उस आदर्शजनक योजना को पूरा सीमाओं की समझने की योग्यता का अभाव ही भारत के पतन का एकमेव कारण है। भारत का पतन इसलिए नहीं हुआ कि अतीत के नियम एवं आचार सराबोर थे, बल्कि इसलिए हुआ क्योंकि उन नियमों एवं आचारों को अपनी स्वभावनिष्ठ विद्याओं में अग्रसर नहीं होने दिया गया।

### वर्तमान भारत का चित्र

विद्यालय और गृह उमड़ती हुई और अधीर नदियाँ उन तथा शत्रुओं पर स्वयंसेवक नन्दन को लक्ष्मी नाम मनोरम उद्यान उन उद्यानों के मध्य अद्भुत शरीरों में पुनः कृपा-कृतिभूत नन्दनरत्न के दमनचुम्बी प्राणद और उनके आने-नीचे अल्प-अल्प शोचिष्ठों के मूढ उनकी मिट्टी की बढ़ती हुई दीवारों उनकी उमर उन्हें खिलना भागों का अथा मंगल हा चुका है। इतर-उपर चूमते हुए कल्पों और कुत्तों की छे-मुग्धे विद्वानों में डूबी कदाचित्त आहृतिपूर्ण शिव के चेहरों पर मकड़ों बसों की लगी थी और निरुत्तम की गृही गेनायें अंकित है। हा उमर दाद रैन और भेसों के दर्शन और आह। उनकी भागों में नीची उदासी की छाया और उनके नीचे रैन ही दूर जगिर गृह्ये में उदा-उदा कृते और रैन के हेर-दरी है हृदाय भाव का माग्य।

एक समय वा जब पीक सेनाओं के सैनिक सम्भवतः के पराजित से बरती कांपा करती थी । किन्तु पृथ्वीतल पर से उसका अस्तित्व मिट गया । जब मुनाते के लिए उसकी एक गाथा भी रोप नहीं है । चीकों का बहु गौरव-सूर्य सदा-सर्वदा के लिए अस्त हो गया । एक समय का जब संसार की प्रत्येक उपभोग्य वस्तु पर रोम का स्वैरकियत ध्वज उड़ा करता था । सर्वत्र रोम की प्रभुता का दबदबा था और बहु मरतबता के घर पर सभार थी । पृथ्वी रोम का नाम सेते ही कांप जाती थी परन्तु आज उसी रोम का कैपिटोलिन पर्वत खण्डहरों का डेर बना हुआ है । वहाँ बहने सीजर राज्य करते थे वहीं आज बकड़ियां आना शुरूती हैं ।

इसके अतिरिक्त कई अन्य पीरबसाबी बातियां बापी और बसी गयीं कुछ समय उम्हने बड़ी अमक-दमक के साथ बर्ब से छाती फुलाकर अपना प्रभुत्व फँसामा अपने कमुपित आर्यमि जीवन से दूसरों को बाधात किया पर जीव ही पानी के बुलबुलों के समान मिट गयीं । मातृ-जीवन पर से बातियां केवल इतनी ही छाप बाल सगीं ।

किन्तु हम आज भी जीवित हैं और यदि आज भी हमारे पुराण-आदि-मनु बापस मोट बायें तो उन्हें आश्चर्य न होना उन्हें ऐसा नहीं लगेगा कि वे किसी नए देश में गए । वे बेबोपे कि छहलों-सहनों बर्बों के अनुभव एवं चिंतन से निष्पन्न बड़ी प्राचीन विधान आज भी यहाँ विद्यमान है । अत्यन्त सताम्बियों के अनुभव एवं सुनों की अमिजता का परिपाक—बहु सनातन आचार-विचार आज भी वर्तमान है और इतना ही नहीं जैसे-जैसे समय बीतता जाता है एक के बाद दूसरे दुर्भाग्य के लपेटे उन पर आघात करते आठ हैं । पर उन सब आघातों का एक ही परिणाम हुआ है कि बहु आचार दुर्भर और स्थायी ही होते जाते हैं । किन्तु इन सब विधानों एवं आचारों का केन्द्र कहाँ है ? किस हृदय में रक्त सञ्चालित होकर उन्हें पुष्ट बना रहा है ? हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूल मोल कहाँ है ? इन प्रश्नों के उत्तर में सम्पूर्ण संसार के सर्वेक्षण एवं अनुभव के परभाव में विश्वातपूर्वक यह सफ़ता है कि उसका केन्द्र इमारत पर्य है ।

यही बहु कारणपर्य है जो अनेक सताम्बियों तक तल-बल विदेशी आक्रमणों के आघातों को लेन चुका है । यही बहु देस है जो संसार की कित्ती भी बहूतान से अधिक दुष्टता से अपने अद्यम पीरुप एवं अजर जीवन मल्लि के साथ सड़ा हुआ है । इसकी जीवन-मल्लि भी आरमा के समान ही मबावि अनन्त एवं अजर है और हमें ऐसे देस की सम्मान होने का औरत प्राप्त है ।

## अतीत से वर्तमान की ओर

भारत के सामाजिक जीवन सर्वत्र सुसाधारण परिवर्तनशील रहे हैं। उनका प्राथमिक उद्देश्य एक विद्याम योद्धा के प्रतीकस्वरूप हुआ था और इस योद्धा को सर्वोच्च समय के साथ उद्घाटित होता था। प्राचीन भारत के मूर्तियों की वृष्टि पानी के घर्ष में इतनी दूर तक प्रयोग कर चुकी थी कि विश्व को उनके ज्ञान का उचित मूल्यांकन करते क लिए सभी साम्राज्यों तक प्रतीक्षा करनी होती। उनके संघर्षों में इस आदर्शमय योद्धा की पुर सीमाओं को समझने की योद्धा का अभाव ही भारत के पत्रन का एतदेव कारण है। भारत का पत्रन इसलिए नहीं हुआ कि वर्तमान के विद्वान एव आचार्य केरत के दृष्टि इमलिए हुआ क्योंकि उन विद्वानों एवं आचार्यों को उनकी स्वभावप्रिय विद्याओं में अग्रसर नहीं होने दिया गया।

### वर्तमान भारत का चित्र

विद्वान और दूरदर्शन उनकनी हुई और कीर जिनकी उन मनुष्यों पर सर्वोच्च अत्यन्तव्य को अभाव होने मनाग्य उद्योग उन उद्योगों के नाम अर्द्धवर्षीयरी के कुछ कला-कर्मिण संघमामर के पदमनुष्यों प्रयास और उनक आदर्श-उच्च अत्यन्तव्य सं-विज्ञों के मूक उनकी निन्दों की बड़ी हुई संघर्ष, उनकी अग्रर शक्ति, विद्वान बालों का संघर्ष संघर्ष ही हुआ है। एतद-उपर अत्यन्त ही अत्यन्त और कुतों को अत्यन्त विद्वानों से ही ही संघर्षमय आदर्शनी विद्वान के अत्यन्त पर अत्यन्त अत्यन्त की अत्यन्त और विद्वान को दूरदर्शन अत्यन्त अत्यन्त है। एतद-उपर अत्यन्त ही अत्यन्त के अत्यन्त और आह ! उनकी अत्यन्तों में ही अत्यन्त अत्यन्त की अत्यन्त और अत्यन्त ही अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त में अत्यन्त-अत्यन्त अत्यन्त और अत्यन्त के अत्यन्त ही अत्यन्त अत्यन्त और आह !

बृहत्तिकाओं से सटी हुई बीच-बीच सोपकिया मन्दिरों के द्वारों पर कूड़े के ढेर, रैतमी बरतबारी के बयल में बसता हुआ कोपीलचारी संन्यासी प्रचुर ब्रह्म से वृष्ट व्यक्तियों की ओर दृष्टि यथाए क्षुधाकान्त व्यक्ति की आनाहीन आंतर दृष्टि—यही है हमारी जन्मभूमि ।

### विदेशी की दृष्टि में वर्तमान भारत

महामारी धीरे धीरे का भीषण विनाश-मर्तम जाति के मर्मस्वसों को ब्रूयता हुआ मरोरिया मुकमरी और आधा पेट मोहन मानों हुएए स्वभाव बीच-बीच में यमकपी अकाल का टाण्डव-नृत्य रोय-शोक का कुम्भोप काण क्रयमित आशा-उद्यम-आत्म्य एवं साह्य की मृत हृदयों से छया हुआ एक विनाश महाभयान और इन सबके बीच अपूर्व शक्ति में निमग्न महाशक्ति के साक्षात्कार म लीन पोषी जिनके जीवन में मोक्ष के अतिरिक्त दूसरा लक्ष्य नहीं यही विश्व है जो भारत म बोरोपीय पर्वटक की आँसो का बेल पड़ता है ।

तीस कोऽ धारमाओं का यह बमपण जो केवल बाहरी आकृति म मनुष्य रह गए हैं जो स्वदेशी-विदेशी जातियों स्वबन्धी-विषमों लोगों के बमन चक्र में पिचकर मयमग चेतनमूल्य हो गए हैं जो बासों के समान स्वय प्ररणा से रहित कष्ट और धम के प्रति बड़बट् बन गए हैं जिनके जीवन में कोई आशा शेष नहीं जिनका न कोई बटीत है न कोई मविष्य जो केवल अपने वर्तमान जीवन को चाहे जितने कष्टों के बीच बनाये रखने के इच्छुक हैं स्वबन्धुओं की उम्रति के प्रति असहिष्णु बासों के गुस्म ईर्ष्या से भरे समस्त आशायें मर जाने के कारण अनाहीन आन्वाहीन श्रुयामबट् बालाकी विस्वाशवात और पूर्णता ही जिनके स्वार्थरक्षण का एकमेव लक्ष्य बन गया है स्वार्थपटा के मूर्तिमन्त्र प्रतीक अन्तिमार्तों के चरणों की भूमि चाटने वाले किन्तु अपने से दुर्बलों के लिये यमस्वरूप दुर्बल एवं मविष्य के प्रति निरलस होने के कारण अनेक बीभत्स एवं झूठ अन्धविश्वासा के बाध्यस्वत बन हुये नैतिकता के क्रिशी स्थिर मापदण्ड से रहित—ऐसी हैं यतीस कोटि आत्मायें जो भारत माता के बदास्वस पर रँग रही हैं—एक सङ्घि-गमी दुर्गम्यपुल नाम पर बिसबिलाले भगमित कीर्तों के समान—यही है हमारा विश्व जो मात्र एक अंधेज अधिकारी के सामने बरबस आकर बड़ा हो जाता है ।

## भारतीय दृष्टि में पश्चिम

नवागित दृष्टियों की सुरा के मर में बुर, पाप-मुष्य के बोध से रहित, हिंस पशुओं के समान विकरान गारी का गुसाम, कामुक सुरा में डूबा सुखतारहित आचारहीन केवल अड़बगत् में आस्था से युक्त जड़तत्व और उसके विभिन्न प्रयोगों पर आश्रित सभ्यता से सम्पन्न जर्मियों के देश एवं सम्पत्ति का बस आमाकी एवं विश्वासघातपूर्वक लोपन कर अपनी 'अहता' को प्रदर्शित करने के लिये सामाजिक मरणोत्तर जीवन में आस्पारहित शरीर से परे जिस के लिये कुछ नहीं विषयोपयोग एवं शरीरसुख में ही जिसका सम्पूर्ण जीवन है—यह है पश्चिमवासी जो एक भारतीय की दृष्टि में राक्षस मान है।

### केवल बाह्य दृष्टि पर आधारित चित्र

वे हैं दोनों पक्षों के द्वारा प्रस्तुत एक दूसरे के चित्र जो विवेक बुद्धि से रहित उभरी जानकारी अथवा बखाल पर आधारित है। जो विदेशी या योरोपीय भारत आते हैं वे हमारे नगरो के विसकुल स्वच्छ एवं स्वास्थ्यकारक क्षेत्रों में लाली भवनों में रहते हैं और हमारे बेहाली मुहस्नों की तुलना अपने देश के स्वच्छ एवं सुन्दर नयनों से करते हैं। जिन भारतीयों के साथ उनका सम्बन्ध जाता है वे एक वर्ग-विशेष के होते हैं जो उनकी आधीनता में कोई न कोई लौकरी करते हैं और सचमुच कहीं अस्मत् इतना बुद्ध-शक्ति नहीं है जितना भारत में। इसमें भी कोई झूठ नहीं है कि कूड़ा-करकट हर जगह पड़ा ही रहता है। यह योरोपीय भस्तिष्क की समझ के बाहर है कि इस गन्दगी गुलामी और इतने पतन के बीच भी किसी श्रेष्ठ वस्तु का अस्तित्व सम्भव है।

दूसरी ओर, हम देखते हैं कि योरोपवासी मर्यादाका का विवेक किये बिना जो मिला जाता है आ लेते हैं उनमें हमारे समान सुखता का विचार नहीं है वे आठि-मेर को नहीं मानते स्थियों से निर्मज्जजापूर्वक मिसते हैं और कराम पीकर बीरतों को बगस में सेकर माचते हैं। तब हम आश्चर्य में पड़ कर स्वयं से पूछते हैं 'हे भयवान् ! क्या ऐसी आठि में भी कोई अच्छाई होना सम्भव है ?

वे दोनों मर बाह्य दृष्टि पर आधारित है। उन्होंने सतह के अन्दर झाँका ही नहीं है। हम विदेशियों को अपने समाज में बुलाने-मिलाने नहीं देते उन्हें 'मोच्छ' करते हैं। वे भी हमें गुलाम मानकर हमसे बुरा करते हैं और

हमें 'कामा आरमो' कहकर पुकारते हैं। इन दोनों मर्तों में कुछ सखान्त अरुभ्य है किन्तु दोनों में ही एक दूसरे के अन्तर्जगत् की वास्तविकता का दर्शन नहीं किया है।

### प्रत्येक जीवित राष्ट्र—किसी भाव का आश्रयस्थल

प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर एक भाव विद्यमान रहता है। बाह्य मनुष्य उसकी केवल अभिव्यक्ति मात्र है, उस आन्तरिक भाव की जापामात्र है। इसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र का भी एक राष्ट्रीय-भाव होता है। यह भाव विश्व के सिधे कार्य करता है और उसकी धारणा के सिधे आश्रयक है। जिस दिन विश्व की धारणा के सिधे उस भाव की उत्तरूप में आश्रयकता समाप्त हो जाती है उस दिन उस भाव के आश्रय—वाहे वह व्यक्ति हो या राष्ट्र—का विनाश हो जायेगा। हम भारतवासी इतनी आपत्तियों दुःखवाच्य एवं अन्तर्बाह्य मरवाणारों को भकर भी अब तक जीवित हैं यही प्रमाण है कि हमारा कोई राष्ट्रीय भाव है जिसकी विश्व की धारणा के सिधे आश्रयकता है।

इसे अच्छी प्रकार समझ लो कि भारत अब भी जीवित है क्योंकि विश्व-सम्पत्ता के अन्तर्गत में उसका योगदान अभी पूर्ण नहीं हुआ है।

पहले हम यह भी समझ लें कि ऐसा कोई अच्छा गुण नहीं है कि जिस पर किसी एक जाति का एकाधिकार हो। निस्सन्देह व्यक्तियों के समान राष्ट्रों में भी किसी एक राष्ट्र में अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा कुछ गुणों का प्राधान्य हो सकता है।

### धर्म और मोक्ष

हमारा मुख्य भाव मुक्ति की कामना है। पारलौक्यों का मुख्य भाव धर्म है। हम मुक्ति चाहते हैं वे धर्म चाहते हैं। यहाँ 'धर्म शब्द का व्यवहार भीमांशकों के (पुरुषार्थ वाचक—'धर्म धर्म काम और मोक्ष') अर्थ में हुआ है। धर्म क्या है? धर्म यही है जो इहलोक और परलोक में सुख भोग की प्रवृत्ति है। धर्म क्रियाशूलक होता है। वह मनुष्य को सुख के पीछे बीड़ाता है और कार्य करने की प्रेरणा देता है।

मुक्ति क्या है? मोक्ष यह है जो यह सिखाता है कि इहलोक और परलोक दोनों का सुख मुलामी है क्योंकि इस प्रकृति के नियमों से परे न इहलोक है और न परलोक। इहलोक की वासता का परलोक की वासता से केवल इतना अन्तर

है जितना छोटे की जंजीर का सोने की जंजीर से । दूसरी बात यह है कि मुक्त बाह्य जित्त लोक में ही प्रकृति के नियमों से बंधा होने के कारण मासवान है, वह बन्ध तक स्थिर नहीं रहेगा । अतः मनुष्य को मुक्त होने की आकांक्षा रखनी चाहिए, उसे शरीर के बन्धनों के परे जाना चाहिये । वास्तव में रहने से काम नहीं चलेगा । वह मोक्षमार्ग केवल भारतवर्ष में है अन्यत्र नहीं ।

भारतवर्ष में एक समय ऐसा भी था जब यहाँ बर्म और मोक्ष का सामन्वय था उस समय यहाँ मोक्ष की आकांक्षा रखनेवाले व्यास ऋषिदेव एवं बनक जादि के साथ-साथ मुनिष्ठिर, अर्जुन पुष्योचन बीष्म एवं कर्म जादि बर्म के उपासक भी विद्यमान थे । बौद्धमत के उदय के पश्चात् बर्म की पूर्ण उपेक्षा की गयी और मोक्ष मार्ग ही प्रथम बन गया ।

### हिन्दू शास्त्र एवं बौद्ध मत

बौद्धों ने बोधया की 'संसार में मोक्ष के समान और है ही क्या ? अतः तुम जो भी हो सब इसे पाने का प्रयत्न करो । मैं प्रकृता हूँ 'क्या यह कमी सम्भव है ? हिन्दू शास्त्रों का स्पष्ट निर्देश है 'तुम गृहस्थ हो, तुम्हारे सिधे के सब दर्से बालकत्व नहीं हैं । तुम अपने 'स्वधर्म' का पालन करो । यही बात ठीक है । जो एक पय नहीं कर सकता उससे एक ही क्षण में समुद्र पार कर संरा पहुँच जाने की आकांक्षा कहां तक उचित है ? क्या यह मुक्ति-संभव है ? तुम अपने परिवार का तो भेट भर नहीं सकते जो स्व-बन्धुओं की भोजन देने की तुममें क्षमता नहीं, अन्य लोगों के साथ मिलकर तुम सोकरकस्थान का एक छोटा-सा कार्य भी नहीं कर पाते—और तब भी तुम मुक्ति के पीछे दौड़ रहे हो । हिन्दू शास्त्रों का कथन है 'निस्संदिह मुक्ति बर्म से कहीं अधिक वेष्ट है हिन्दू पहले बर्म का पूर्ण पालन कर लो । बौद्धों ने इसी स्वप्न पर भ्रम में पड़कर अनेक उपाय खड़े कर दिये ।

अहिंसा ठीक है 'बुराई का प्रतिरोध मत करो' यह भी बड़ी बात है । ये सब मनुष्य के लिये सिद्धान्त हैं । हिन्दू शास्त्रों का आदेश है 'तुम गृहस्थ हो । यदि कोई तुम्हारे पाल पर एक पण्ड मारि और तुम उसका जवाब दस कणकों में न दो तो तुम पार करते हो ।' मनु की व्यवस्था है—

गुरु वा बालबुद्धौ वा ब्रह्मचर्यं वा ब्रह्मपुत्रम् ।

आततायिनभाषाम्बं हुन्पादेवादिचारयन् ॥

(मनुस्मृति ब० ५, श्लोक ३१०)



‘यदि कोई तुम्हें मारने के लिये जाता है तो उसकी हत्या करने में तनिक भी पाप नहीं है चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो यह एक महा-सत्य है और इसे कभी नहीं झुलना चाहिये ।

### स्वधर्म पासन ही परम सत्य

‘धीर भीत्या वसुधरा । अथ शौर्यं को प्रकट करो । अपने मनु को जीतने और संसार का सुख भोगने के लिये साम दाम दंड और भेद की अतुल्य राजनीति को परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार अपनाओ । सभी तुम धार्मिक होना । यदि तुम अपकारों को अपचाप सहकर किसी की भी ठोकरें लाकर और अत्याचारों को पीकर मज्जाजलक जीवन बिताओगे तो तुम्हारा ब्रह्मलोक का जीवन गरुड़ तुल्य होगा ही परलोक में भी तुम्हें नहीं मिलेगा । शास्त्रों का यही मत है । अथ स्वधर्म पासन करो यही केवल सत्य है । यही परम सत्य है । मेरे प्रिय स्वधर्मियो ! यही तुम्हारे लिये मेरा उपदेश है । निस्संदेह अग्याय मत करो पर-नीड़न मत करो बलाबलति परोपकार भी करो । किन्तु गृहस्थ के लिये ब्रह्मर्षों के अग्यायों को अपचाप सह भेदा और पाप है । ‘जठे जाठ्यं समाचरेत्’ ही उक्तका स्वधर्म है । गृहस्थ को परिग्रह एवं उत्साह पूर्वक धर्मोपार्जन करना चाहिये । उसके द्वारा अपने परिवार एवं अग्यों का सुख-सुर्वक पोषण करना चाहिये अपात्तति लोककल्याणार्थं सुत्र कर्म भी करना चाहिये । यदि तुम यह सब नहीं कर सके तो तुम मनुष्य कहलाने का दावा ही कैसे कर सकते हो ? तब तुम्हारे लिये मोक्ष की बात करना तो दूर, तुम अपने गृहस्थ भी नहीं रह सकते ।

### मिथ्य स्वमाय मिथ्य पथ

अब प्रश्न यह उठता है कि हम जब किस धुम पथ का अनुसरण करें ? मुक्ति की अमिताया करने वालों का ‘धुम’ एक है तो ‘धर्म’ के आशक्तियों का धुम ब्रह्मण यही परम सत्य है कि जिसको गीता के उपरोच्य समवात् धीहृत्न ने बर्हा स्पष्ट करने का यत्न किया है । इसी सत्य पर शिष्ट धर्म का ‘स्वधर्म पासन’ का मिथ्या एवं अर्थायम व्यवस्था अभिष्टित है ।

इत्थं मे बर्हा

अप्रेष्टा सर्वभूतानां मैत्रं कथय एव च ।

निर्ममो निरहंकारः समनुजः सुख-शान्ति ॥ (गीता, १९ १३)

“अत्रिन्द्रा कोड़े धनु नहीं जो सबके प्रति मीठी एवं करनामाय से परिपूर्ण है ‘वी और मेरा’ की भावना से जो मुक्त है दुःख और मुक्त दोनों में समभाव से मुक्त समाधान है।”

वह और ऐसे ही अनेक वाक्य वस्तुतः मुमुक्षुओं के लिये बड़े गमे हैं ।  
किन्तु अन्वय उन्हेनि ब्रह्म

ब्रह्मेयं ब्राह्मणं सः पार्थ नैतत्त्वम्युपपद्यते ।

ब्रह्म ब्रह्मपदोर्ब्रह्मं त्वज्जबोतिष्ठ परंतप ॥ (गीता २,३)

‘हे पार्थ ! कभीकाल को प्राप्त मत हो, यह तेरे लिए योग्य नहीं है धनु साधक ! ब्रह्म की इस धृष्ट बुद्धिमता को त्याग कर उठ जाके हो ।

तस्मात्सब्रह्मिष्ठं यद्रोसन्नस्य

क्रिया यद्रूपस्यैव सार्धं समृद्धम् ।

सर्ववैते निहता पूर्वमेव

निवृत्तपार्थं मम सव्यवहृदिन् ॥ (गीता, ११ ३३)

‘अब उठ जाके हो और यज्ञ त्याग कर । अपने धनुओं को बीच कर समृद्ध राज्य का उपयोग कर । हे सध्यसाधी मनुज ! ये सब मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं नू निमित्त मान बन जा ।

### सात्त्विक शान्ति एवं सामसिक निष्क्रियता में अन्तर

अब मुझे बताओ, बाहर से देखकर हम यह कैसे जानें कि जिस अवस्था में तुम हो उसमें सयोग की प्रधानता है अथवा तमोभूम की ? क्या हम समस्त मुक्त-दुःख से परे, विषयातीत सात्त्विक शान्ति की स्थिति में पहुँच सके हैं अथवा मृतक के समान निस्पन्द प्राणहीन जड़बन्धु तथा कर्मशक्ति के अभाव में निष्क्रियता की महाशक्तियोगे स्थिति में मग्न रहे हैं तथा बीरे-बीरे गुपचाप अन्ध-अन्ध सुड़ते जा रहे हैं ?” — ये अस्त्रीगतापूर्वक तुमसे यह प्रश्न पूछता हूँ । मुझे इसका उत्तर चाहिए । अब अपने मन से धुँयो या तुम्हें तप का पता बन जायगा ।

### सात्त्विक शान्ति में महाशक्ति का भण्डार

किन्तु, इसका उत्तर पाने के लिए प्रतीक्षा ही क्यों करें ? एक से बूल की पहचान हो जाती है । तप की प्रधानता के समय मनुष्य विच्छिन्न एवं शान्त तो सीखता है किन्तु वह निष्क्रियता महान् शक्तियों के पुंजीकृत होने का परिणाम होती है यह शान्ति, प्रपञ्च पीडन की बनती है । उक्त परम सात्त्विक बुद्ध को,

उस महारथा को हारों समान हाथ-पैरों से कर्म करने की जानस्यकता नहीं रह जाती उसकी तो इच्छा मात्र ही ही सब काम बखिलम्ब पूर्ण हो जाते हैं । वह सत्त्वगुण प्रधान पुत्र ही ब्राह्मण है सबका पूज्य है । 'मेरी पूजा करो' ऐसा कहते हुये उसे द्वार-द्वार पर घूमना नहीं पड़ता । जयदम्बा स्वर्ग अपने हाथों उसके ललाट पर स्वर्वाकारों में लिख देती है । "इस महापुत्र की मेरे पुत्र की सब कोई बन्धना करो । लंघार इने पड़ता है मुक्तता है और भद्रा से अपना मस्तक उसके सामने गठ कर देता है । ऐसा पुत्र ही वास्तव में—

महोष्ठा सर्वभूतानां मैत्रं कश्चन एव च ।

निर्ममो निरहंकारः सामुच्च-सुख-शमी ॥ (गीता १२ १३)

"जिसका कोई अन्त नहीं जो सबके प्रति मैत्री एवं करुणा से परिपूर्ण है 'मै और मैत्र' की भावना से जो मुक्त है सुख-सुख दोनों में 'मममात्र से मुक्त है तथा समाधान है'—ऐसा कहताता है ।

सामसिक अकर्मण्यता—मृत्यु का सन्तान

और क्या हो ये सन्तान जो मुझे अन्न हृदय एवं तपुंसक लोगों में शीघ्र पकते हैं जो नाक से विनिर्वाकर एक-एक बन्ध को बचाते हुए बीमते हैं जिसकी आवाज इतनी निर्भीक है मानो छात्र विद के बूके हों जो छे-मुछने बिचड़ों की शक्ति है जो दुष्टों की ठोकरें खाकर भी विरोध नहीं करने अपना कर्मजीत नहीं छोड़ते—ये ललक निम्नतम तमोगुण के हैं । ये मृत्यु के राजा हैं छात्र दुष्ट के नहीं । वह भ्रष्टता है दुर्गम्य है ।

अर्जुन भी इसी अवस्था को प्राप्त हो रहे थे तभी तो भगवान् ने उन्हें हतके विरतात्पूर्वक मीठा का उपदेश दिया । क्या यह सत्य नहीं है ? मुनो भगवान् के धीमुख से प्रपन्न कथ्य क्या निकसे—

"कर्त्तव्यं मास्म वना पार्थ मैत्रत्वान्पुत्रपद्यते"

'कारणता को प्राप्त मत हो । हे पार्थ ! वह तेरे गिये योग्य नहीं है । और तब बाद में उन्होंने कहा— 'तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ पयो जगन्नाथ "अत गु उठ और यज्ञ का सर्वज्ञ कर ।

पिछले सप्तर वर्षों से सम्पूर्ण वेद ने बामुबदल में कृष्ण का नाम गूज रहा है और तब और उनकी पूजा-आर्चना हो रही है किन्तु भगवान् हमारी प्रार्थना की ओर मानो ध्यान ही नहीं देता । और यह है भी क्यों ? अब मनुष्य भी पुत्रों

की पुकार कभी नहीं सुनना चाहता तब क्या भसा भगवान् सुनेगा ? अब एक ही मार्ग खोप है कि हम भगवान् के पीठोक्त बचनों को सुनें—

“बर्तमान्यं मास्म यम- पार्थ”

‘हे पार्थ ! कायरता को प्राप्त मत हो’ एवं

“धत्मास्वमुत्पिठ यशो जमस्व”

अत उठ और यज्ञ साम कर ।

### विधि की विहम्बना

विधि की विहम्बना देखो । योरोपवासियों के देवता ईशामसीह ने दिखाया—  
 किरी से बीर मत करो जो तुम्हें गासी दे उसे भी आधीर्वाय को यदि कोई  
 तुम्हारे बायें पास पर बप्पड़ मारे तो तुम उसकी और दाहिना पास भी कर दो  
 सब काम-काजों को त्याग कर परसोक की तैयारी करो क्योंकि संसार का जन्म  
 निकट है । इसके बिपरीत हमारे भगवान् कृष्ण पीठा से कहते हैं ‘सर्वत्र महान्  
 उत्साह से कर्म करो अपने शत्रुओं का विनाश कर संसार का भोग करो । किन्तु  
 जन्म में जो कृत्त कृष्ण या ईशामसीह चाहते थे उसका बिस्तृप्त उन्हा हो पया ।  
 योरोपवासियों ने कभी ईशामसीह के शब्दों को यन्नीरतापूर्वक नहीं लिया ।  
 सर्वत्र कार्यशील स्वभाव अपनाकर अत्यन्त प्रबन्ध रबोयुष से सम्पन्न होकर वे  
 बड़े उत्साह और मुबकोचित उत्सुकता के साथ विश्व के विभिन्न देशों के सुख  
 और विनाशों को बटोर रहे हैं और मन भर कर उन्हें भोग रहे हैं ।  
 और हम ! हम एक कोने में बैठे अपने सब साम-सामान के साथ विन एत  
 मृत्यु का ही आवाहन कर रहे हैं और गा रहे हैं—

मलिनोदसवतवतमतिरारलं तद्वज्जीवतमतिरयवपतम् ।

अर्थात् कमसपत्र पर पड़ी हुई जल की बूँदें जितनी बंधस और अस्थिर हैं उतना  
 ही यह मानव-जीवन दीग और अतायमान है । इस सबका परिणाम हुआ है  
 कि मृत्युराज यम के यम से हमारी जमनियों का रक्त ठंडा पड़ जाता है तथा  
 संतुर्ब खरीर कापने सयता है । और शोफ ! यम ने भी हमारे शब्दों को सच  
 मान लिया है और आत्यय इतीलिए महामारी आदि ससार भर के रोग हमारे  
 देश में येज दिय हैं ।

अब कहो ! पीठा के उपदेश को किसने सुना ? योरोपियनों ने । और ईसा  
 की इच्छानुसार कौन आचरण कर रहे हैं ? भगवान् कृष्ण के बचन ! इते अच्छी  
 प्रकार सम्म सो ।

बौद्धमत और वैदिक धर्म का उद्देश्य एक ही है किन्तु बौद्धों द्वारा अपनाये गये साधन सही नहीं हैं। यदि बौद्ध साधन ठीक होते तो हमारा इतनी बुरी तरह खर्बताश ही क्यों हो पाता ? यह कहने से काम नहीं चलेगा कि कास के प्रवाह के स्वाभाविक घपेड़ों से यह सब हो गया। क्या कास कार्य-कारण नियम का भी उल्लंघन कर सकता है ?

### यूरोप से ईसा से मुक्ति पायी

केवल वैदिक धर्म में मनुष्य के धर्म धर्म काम और मोक्ष यदि चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के उपायों और साधनों का सम्यक विचार एवं व्यवस्था की गयी है। बौद्धों ने हमें कमजोर बनाया उसी प्रकार ईसा ने घीस और रोम को भीपट किया। किन्तु, सौभाग्य से कुछ ही समय पश्चात् यूरोपवासी प्रोटेस्टेन्ट हो गये। उन्होंने ईसा के उन उपदेशों का जिनका प्रतिनिधित्व पोप की सत्ता द्वारा होता या परिष्कार कर दिया और संतोप की संघ स्त्री। भारत में कुमारिल ने फिर धर्म-मार्ग को चलाया। संकर और रामानुज ने धर्म धर्म काम और मोक्ष का सामन्वय एवं समन्वय करते हुये सनातन वैदिक धर्म का पुनः बुद्धता के साथ प्रवर्तन किया। इस प्रकार राष्ट्र के जीवन में पुनर्संस्कार का प्रयास हुआ। किन्तु भारत में तीस कोटि आत्माओं को अपनाया या अतः कैर लगी। क्या तीस करोड़ लोगों का पुनर्जागरण एक दिन में संभव था ?



## भारत की आत्मा—धर्म

प्रत्येक राष्ट्र का लक्ष्य विघाता से द्वारा पूर्ण निर्धारित है। प्रत्येक राष्ट्र के पास संसार को देने के लिए कोई न कोई संविदा है। प्रत्येक राष्ट्र को किसी विशेष संकल्प की पूर्ति करनी है। अतः प्रारम्भ में ही हमें अपनी जाति के जीवन-संघ को समझ लेना होगा। उसे कौन-सा ईश्वरी लक्ष्य पूर्ण करना है, विभिन्न राष्ट्रों के अभिमान में उसे कहीं और कौन सा स्थान ग्रहण करना है, जातिपों के सम्बन्धित संघों में उसे कौन सा स्वर मिलना है ?

### हम हिन्दू हैं

हम लोग हिन्दू हैं। मैं 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूँ और न मैं उन लोगों से सहमत हूँ जो समझते हैं कि इस शब्द के कोई बुरे अर्थ हैं। प्राचीन काल में इस शब्द का अर्थ केवल इतना था— सिन्धु तट के इस ओर बसने वाले लोग। आज जैसे ही हमसे पूछा रखने वाले अनेक लोग इस शब्द पर कुतूहल अर्थ आरोपित करना चाहते हैं पर केवल नाम न क्या क्या है ? यह तो हम पर निर्भर करता है कि 'हिन्दू' नाम ऐसी प्रत्येक वस्तु का घोटक हो जो महिमाय है आध्यात्मिक है अथवा वह केवल कर्मकृत, पदकृत निकम्मी और धर्म-भ्रष्ट जाति का प्रतीक है। यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ मनाया जाता है तो उसकी परवाह मत करो। जाओ ! हम सब अपने आचरण से संसार को यह दिखा दें कि संसार की कोई भी भाषा इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर पायी है।

मेरे जीवन का यह सिद्धांत रहा है कि मुझे अपने पूर्वजों को अपमाने में कभी लगना नहीं आयी। मैं सबसे यकीन मनुष्यों में से एक हूँ। किन्तु मैं तुम्हें स्पष्ट रूप में बता दूँ यह धर्म मुझे अपने कारण नहीं अपितु अपने पूर्वजों के

कारण है। अतीत का मैंने जितना ही अभ्ययम किया है, जितनी ही मैंने कुछ काल पर दृष्टि डाली है, यह गर्व मुझमें उठता ही बढ़ता गया है। उठने मुझे छाहृष्ट-मूर्ध्न निष्ठा और शक्ति प्रदान की है। उसने मुझे बरखी की धूस से उद्यम कर ऊपर लड़ा कर दिया और अपने महान् पूर्वजों के द्वारा निर्धारित उस महायोगना को पूर्ण करने में बुटा दिया। उन प्राचीन ज्ञानों की संतानों ! जनबल्लुपा से तुम भी उस गर्व से परिपूर्ण हो जाओ। तुम्हारे रक्त में भी अपने पूर्वजों के लिये उसी धबा का संचार हो जाय ! यह तुम्हारे रग-रप में व्याप्त हो जाये और तुम संसार के उद्यार के लिये सचेष्ट हो जाओ।

### प्रत्येक राष्ट्र का एक बैबी लक्ष्य

बिना प्रकार प्रत्येक मनुष्य का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। उसी प्रकार राष्ट्रीय व्यक्तित्व भी होता है। जैसे एक व्यक्ति कुछ निश्चित बातों में कुछ निश्चित सत्यों में ज्ञान्य व्यक्तियों से निम्न होता है, उसी प्रकार एक जाति अपनी कुछ निश्चितताओं के कारण अन्य जातियों से निम्न होती है और जिस प्रकार प्रकृति की योजना में किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करना ही प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य होता है, जिस प्रकार उसके अपने पिछले कर्मों द्वारा उसकी जायी विला निर्धारित हो जाती है, ठीक ऐसा ही राष्ट्रों के साथ होता है। प्रत्येक राष्ट्र को एक पूर्व निर्धारित लक्ष्य को पूर्ण करना है। प्रत्येक राष्ट्र को एक विषय उचित देना है। प्रत्येक राष्ट्र को किसी कठ-विषय का उद्योग करना है। कठ शारम्भ से ही हमें अपनी जाति के कठ को उसके पूर्व निर्धारित लक्ष्य को समझ लेना होगा। उसे राष्ट्रों की पंक्ति में कौन सा स्थान ग्रहण करना है ? विभिन्न जातियों के सम्मिश्रित संघों में कौन सा स्वर मित्राणा है।

### राष्ट्रीय भास्मा

अपने देश में बचपन में हम किसी मुना बरखे थे कि कुछ लोगों के मन में मणि होती है। और जब तक वह मणि नहीं है उसे किसी भी उपाय से नहीं मारना या लक्ष्य। हमने कहानियों में ऐसे दैत्यों-बाज्रों के बारे में भी सुना है, जिनके प्राण किन्हीं छोटी-छोटी चिड़ियों में बसे होते हैं। और जब तक वे चिड़ियाँ मृत्युवत हैं, संसार की कोई भी शक्ति उन दैत्यों का संहार नहीं कर सकती—बाह् तुम इनके टुकड़े-टुकड़े ही क्यों न कर दोसो या कुछ भी करो वे दैत्य नहीं मर सकते। यही बात राष्ट्रों के बारे में भी सत्य है। प्रत्येक राष्ट्र के

मात्र भी किसी विन्दु विशेष में केन्द्रित रहते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्म-स्थान पर आघात नहीं होता तब तक वह राष्ट्र नहीं मर सकता।

इसके अतिरिक्त एक अन्य बात भी आप देखेंगे कि यदि किसी राष्ट्र के केवल ऐसे अधिकारों का अपहरण किया जाए जिनका उसके राष्ट्रीय-उद्देश्य से महत्त्व सम्बन्ध नहीं है यदि ऐसे सब अधिकार भी छीन लिये जाय तो भी उस राष्ट्र को बहुत अधिक असह्योग न होना। किन्तु जब उस मूलमूल उद्देश्य पर, जिस पर राष्ट्रीय जीवन का सम्पूर्ण महत्त्व टिका है छोटा आघात भी होगा तो वह राष्ट्र प्रबन्ध शक्ति से उसका प्रतिरोध करेगा।

### फ्रांसीसी और अंग्रेज चारित्र्य

उदाहरणार्थ उन तीन वर्तमान जातियों की तुलना कीजिए, जिनका बोझ बहुत इतिहास जानते हैं। वे राष्ट्र हैं फ्रांसीसी अंग्रेज एवं हिन्दू। फ्रांस के राष्ट्रीय चरित्र का मेरुबन्ध राजनीतिक-अधिकार-स्वातन्त्र्य है। वहाँ की प्रजा सभी बलाघातों को धातु भाग से सहन करती है। उसे करों के भार से पीस डालिए, तो भी वह बूँ तक नहीं करेगी। सम्पूर्ण राष्ट्र को सेना में मरती होने के लिए तैयार कर डीजिये तो भी वे शिकायत नहीं करेंगे। किन्तु जिस क्षण कोई उसके राजनीतिक अधिकार-स्वातन्त्र्य के ऊपर हाथ डालेगा तब सम्पूर्ण राष्ट्र एक होकर खड़ा हो जायेगा और पावलों की भाँति उसका प्रतिरोध करेगा। फ्रांसीसी चारित्र्य का मूल-सिद्धान्त है 'कोई व्यक्ति हमारे ऊपर कम पूर्णक शासन नहीं कर सकता—गरीब-अमीर विद्वान-अपढ़ उच्च कुल अथवा निम्न वर्ग—सभी का हमारे देश की सरकार तथा हमारे समाज के स्वतन्त्र नियन्त्रण में समान अधिकार है। जो हमारे इस अधिकार-स्वातन्त्र्य में हस्तक्षेप करना चाहेगा उसे उसका दण्ड भोगना होगा।

अंग्रेजों के चारित्र्य में आपान-प्रदान पर आधारित व्यवसाय बुद्धि की प्रधानता है। अंग्रेजों के लिये सबसे आवश्यक वस्तु है—समान भाव एवं नृबि पात्रों तथा अधिकारों का समान वितरण। अंग्रेज लोग राजा की महत्ता तथा सामन्त-वर्ग के विशेषाधिकारों को महत्त्वपूर्ण हीकर स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु यदि उसे अपनी नाँठ से एक छोटा चिक्का भी देना पड़े जाय तो वह पहले उसका विरोध करता है। राजा है तो अच्छी बात उसका वे लोग आबर करने और उसकी आज्ञाओं का पालन करने को भी तत्पर रहेंगे किन्तु यदि राजा भी पैसा



माने तो अंग्रेज बनेगा "ठीक है किन्तु पहले यह समझाओ कि वैसे क्यों चाहिए, इससे क्या मत्ता होने वाला है ? फिर, मुझे 'उसको कैसे खर्च किया जाय' इस बारे में मत व्यक्त करने का अधिकार ही तब कहीं भी वैसे दूंगा ।" एक बार एक अंग्रेज राजा ने अंग्रेज जाति से बलपूर्वक पतन बमूमने के प्रयास में ही अपने बिरुद्ध महान् क्षमति को सामन्वित कर लिया था । उन्होंने उस राजा को मार डाला ।

### हिन्दू चारिष्य

हिन्दू कहते हैं कि राजनैतिक और सामाजिक अधिकार-स्वातन्त्र्य बहुत बन्धी बस्तु है परन्तु वास्तविक बस्तु है व्यक्ति को मुक्तिप्राप्त्य पर बढ़ने के लिये पूर्ण आध्यात्मिक स्वतन्त्रता । यही है हमारा राष्ट्रीय उद्देश्य—तुम चाहे वैदिक जैन या बौद्ध चाहे अद्वैत त्रिक्रिष्णार्थ अथवा ईत—किसी भी मत को टटो लो ये सभी इस उद्देश्य पर एक हैं । इसको न तुमो और चाहे जो करो हिं तक भी ध्यान नहीं देना और चुप खेया । किन्तु यदि कहीं तुमने इस मर्मस्वम को छेड़ दिया तो माबयान । तुम सर्वनाम को निमग्नय है बोये । उसका सर्वस्व छीन लो उसे छोकर मारो उसे चाहे काला बाबमी कसो चाहे और कोई पन्वा नाम से वह तक भी परबाह नहीं करेगा पर केवल उसके धर्म के द्वार को खुला और बसुष्म खोद बा । यही देखो आधुनिक काल में कितने पठान बल माये और बसे गये किन्तु वे भारत में अपने साम्राज्य की जड़ें नहीं जमा सके क्योंकि वे लगातार हिन्दुओं के धर्म पर आघात करते रहे । किन्तु उसके विपरीत मुगल साम्राज्य कितना सुदृढ़ और प्रबल सामर्थ्यसम्पन्न बन सका । क्यों ? क्योंकि मुयसों ने उस मर्मस्वम को नहीं छिड़ा । वास्तव में हिन्दू ही मुयस साम्राज्य के मुख्य स्तम्भ बन गये ।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज हमारे बस इतना ही नहीं तो हमारे राष्ट्रीय-जीवन का भी मूलधार है । इस समय में इस तर्क-वितर्क में नहीं पड़ना चाहता कि धर्म में यह केन्द्रीयकरण उचित है या नहीं सही है वा ममत अथवा कामान्तर में मानप्रब है या नहीं । किन्तु अच्छा हो या कुछ यही बस्तु स्थिति है । अब तुम इससे पीछ नहीं छुड़ा सकते । सचा-सर्ववा के लिये तुम इससे बंध चुके हो और तुम्हें इसके सहारे ही बढ़ा रहना होगा मने ही धर्म में तुम्हारी भेरे जितनी मिट्टा न हो । तुम इसी धर्म से बंधे हुए हो और यदि तुम इसे छोड़ दोये तो तुम चूर चूर हो जाओगे । वही हमारी जाति का प्राण है और तुम्हें उसे ही पुष्ट करना होगा ।

## सोमनाथ से शिक्षा लो

तुम जो युगों तक धरके सहकर भी बलाय हो इसका कारण केवल यही है कि धर्म के नियम तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था उससे नियम अन्य सब कुछ निष्कारण कर दिया था। तुम्हारे पूर्वजों ने धर्म-रक्षा के लिये सब कुछ माहम पूर्वक सहन किया था यहाँ तक कि मृत्यु को भी गम मगामा था। विदेशी विजेताओं ने मन्दिर के बाहर मन्दिर छोड़े किन्तु जैसे ही वह आभी कुबरी मन्दिर का शिकार पुनः बाड़ा हो गया। बर्षभ्य भारत के देने कुछ प्राचीन मन्दिर विशेष कर गुजरात का सोमनाथ मन्दिर तुम्हें अजय ज्ञान प्रदान करेंगे। आदि क इतिहास के प्रति जिस पहरी पृष्ठ को वे प्रदान करते हैं वह डेरों पुस्तकों से नहीं मिल सकती। ध्यान से देखो—उन मन्दिरों पर सैकड़ों आशमणों एवं सैकड़ों पुनस्तम्भों के चिह्न किस तरह अंकित हैं? वे बार-बार नष्ट हुए और अङ्कुरों में से पुनः पुनः उठ खड़े हुए—यहमे की ही भाँति सज्जत एवं पञ्चवीकनपुक्त। यही है हमारा राष्ट्रीय मानस यही है हमारा राष्ट्रीय जीवनप्रवाह। इसका अनुसरण करो और यौख प्राप्त करो। इस त्याग योगे ही मृत्यु निश्चित है। जिस क्षण तुम इस जीवन-प्रवाह से बाहर करम उत्रओगे मृत्यु एवं पुनः जितारा ही अक्षम्यभावी परिणाम होगा। मेरे कहन का यह अन्तिमार्थ यही कि अक्षय बाने पूर्वतया अनावश्यक हैं। मेरा यह भी कहना नहीं है कि राजनीतिक अथवा सामाजिक मुद्दों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। मेरा तात्पर्य केवल इतना है—और मैं इसे तुम्हारे मस्तिष्क पर स्थायी रूप से अंकित कर देना चाहता हूँ कि यहाँ धर्म ही मुख्य आवश्यकता है अन्य सब चीजें मौल्य हैं।

## सहस्रों शताब्दियों में विकसित चारिष्य

जब तुम स्पष्टतया समझ पने होगे कि इस राष्ट्र का प्राण कहाँ है। वह धर्म में है। कोई उसको गल्ट नहीं कर पाया इसलिए हिन्दू आदि इतनी आरति-विपत्तियों को सह कर भी भाव जीवित है। एक भारतीय विज्ञान न पुष्प—राष्ट्र के प्राणों को धम में बनाए रखन की ही क्या आवश्यकता है? क्यों न अन्य राष्ट्रों के समान अपने राष्ट्र के प्राणों को भी राजनीतिक या सामाजिक स्वाधीनता में रखा जाय? यह बात कहने में सरल है।

यदि केवल तर्क के लिये ही यह मान लें कि धर्म और आध्यात्मिक स्वाधीनता आत्मा परमात्मा और मुक्ति भावि सब मिथ्या बातें हैं या क्या होना

मि तो अंग्रेज कहेया 'ठीक है किन्तु पहले यह समझाओ कि वैया क्यों चाहिए,  
उसे क्या भसा होने जाता है ? फिर, मुझे 'उसको कैसे खर्च किया जाय' इस  
बारे में मत व्यक्त करने का अधिकार ही तब कहीं भी वैया हुआ। एक बार एक  
अंग्रेज राजा ने अंग्रेज जाति से बलपूर्वक पन बमुमने के प्रयास में ही अपने बिकड़  
महान् जालि को आमंत्रित कर लिया था। उन्होंने उस राजा को मार डाला।

### हिन्दू चारिष्य

हिन्दू कहते हैं कि राजनैतिक और सामाजिक अधिकार-स्वातन्त्र्य बहुत  
अच्छी वस्तु है परन्तु वास्तविक वस्तु है व्यक्ति को मुक्तिमार्ग पर बढ़ने के लिये  
पूर्ण आध्यात्मिक स्वतन्त्रता। वही है हमारा राष्ट्रीय उद्देश्य—तुम चाहे वैदिक  
श्रीम या बौद्ध चाहे बौद्ध किन्तिप्याडैत धरषबा ईत—किसी भी 'मत' को टटोल  
सो ये सभी इस उद्देश्य पर एक हैं। इसको त सुनो और चाहे जो करो हिन्दू  
तनिक भी ध्याम नहीं देगा और चुप रहेगा। किन्तु यदि कहीं तुमने इस मर्मस्वत  
को छेड़ दिया तो साबधान ! तुम सर्वनाम को निमन्त्रण दे बोने। उसका सर्वस्व  
धीन सो उसे टोकर मारो उसे चाहे काला जायमी कहो चाहे और कोई गन्दा  
नाम सो वह तनिक भी परबाह नहीं करेगा पर केवल उसके धर्म के द्वार को  
पुला और असुख्य छोड़ दो। यही देखो आधुनिक काल में फिटने पठान बंश  
भावे और जैसे गने किन्तु वे भारत में अपने साम्राज्य की बड़ें नहीं बना सके  
क्योंकि वे लगातार हिन्दुओं के धर्म पर आबात करते रहे। किन्तु उसके विपरीत  
मुसल साम्राज्य फिटना मुहूद और प्रचण्ड सामर्थ्यपन्न बन गया। क्यों ?  
क्योंकि मुसलानों ने उस मर्मस्वत को नहीं छेड़ा। भारतव म हिन्दू ही मुगल  
साम्राज्य के मुख्य स्तम्भ बन गये।

इसने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज हमारे बस इतना ही नहीं तो  
हमारे राष्ट्रीय-जीवन का भी मूलधार है। इस समय में इस लक्ष-वितर्क म नहीं  
पड़ना चाहता कि धर्म में यह केन्द्रीयकरण उचित है या नहीं सही है या गलत  
अथवा कामान्तर में कामप्रव है या नहीं। किन्तु अच्छा हो या बुरा यही वस्तु  
निश्चित है। जब तुम इससे पीछा नहीं छोड़ा सकते। सदा-सर्वदा के लिये तुम  
इससे बंध चुने हो और तुम्हें इसके सहारे ही बढ़ा रहना होया मने ही धर्म में  
तुम्हारी मेरे जितनी निष्ठा न हो। तुम इती धर्म से बंधे हुए हो और यदि तुम  
इसे छोड़ दोगे तो तुम बुर बुर हो जाओगे। यही हमारी जाति का प्राण है और  
तुम्हें उसे ही पुष्ट करना होगा।

## सोमनाथ से शिला लो

तुम जा तुमों तक बन्दे सहकर भी अक्षय हो इसका कारण केवल यही है कि बर्ष के बिये तुमने बहुत कुछ प्रबल किया था उसने भिय अन्ध सब वृद्ध निष्कार कर दिया था। तुम्हारे पूर्वजों ने बर्ष रखा के बिये सब कुछ साहस-पूर्वक सह्य किया था यही तक कि मृत्यु को भी नसे लवाया था। बिनैत्री विजेताओं ने मन्दिर के बाह मन्दिर छोड़े किन्तु जैसे ही वह बांधी पुत्रपी मन्दिर का लिखार पुन जड़ा हो गया। इतिहास भारत के ऐसे कुछ प्राचीन मन्दिर विशेष कर मुजराठ का सोमनाथ मन्दिर तुम्हें बराय ज्ञान प्रदान करेंगे। जाति के इतिहास के प्रति जिस बहुरी दृष्टि को वे प्रदान करते हैं वह केरें पुस्तकों से नहीं भिन्न सकती। ध्यान से देखो—इन मन्दिरों पर सैकड़ों आजमनों एवं सैकड़ों पुनरुजाओं के लिख किस् तरह अङ्कित हैं ? वे बार-बार नष्ट हुये और संहरों में से पुन पुन उठ उठे हुये—पहले की ही जाति सबल एवं नवजीवनयुक्त। यही है हमारा राष्ट्रीय मानस यही है हमारा राष्ट्रीय जीवनप्रवाह। इसका अनुकरण करो और मीरज प्राप्त करो। इस त्याग योगे तो मृत्यु निश्चित है। जिस क्षण तुम इस जीवन-प्रवाह से बाहर कबल उठाओगे मृत्यु एवं पूर्व विनाश ही अवस्थाभाषी बरिनाम होया। मेरे कहने का यह अधिप्राय नहीं कि अन्य बातें पूर्वोक्त बनावश्यक है। मेरा यह भी कहना नहीं है कि राजनीतिक अथवा सामाजिक मुबारों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। मेरा तात्पर्य केवल इतना है—और मैं इसे तुम्हारे अतिरिक्त पर स्थायी रूप से अङ्कित कर देना चाहता हूँ कि यही बर्ष ही मुख्य आवश्यकता है अन्ध सब चीजें पौन हैं।

## सहस्रों शताब्दियों में विकसित सारिभ्य

जब तुम स्पष्टतया समझ पये होगे कि इत राष्ट्र का प्राय कहाँ है। यह बर्ष में है। कोई उसको नष्ट नहीं कर पाया इसलिए किन्तु जाति एतनी आपति-विपत्तियों की सह कर भी बाह बीधित है। एक भारतीय विद्वान ने पूछा—'राष्ट्र के प्राणों को बर्ष में बनाए रखने की ही क्या आवश्यकता है ? क्यों न अन्य राष्ट्रों के समान अपने राष्ट्र के प्राणों को भी राजनीतिक वा सामाजिक स्थायीकता में रखा जाय ? यह बात कहने में सरय है।

बदि केवल एक के सिने ही यह मान लें कि बर्ष और साम्प्रतिक स्थायीकता वाता परबलमा और मुक्ति जाति सब भिन्ना बातें हैं तो क्या होपा

इस पर विचार कीजिए । जिस प्रकार एक अग्नि स्वयं को अनेक रूपों में प्रकाशित करती है उसी प्रकार एक महाशक्ति पर्येसियों में राजनीतिक अधिकार-स्वातन्त्र्य का रूप लेकर, अंग्रेजों में वादिन्य बुद्धि एवं समभाव के विस्तार के रूप में तथा हिन्दुओं में आध्यात्मिक स्वाधीनता अथवा मुक्ति का रूप लेकर स्वयं को प्रकाशित कर रही है । और ध्यान दो उस महाशक्ति की प्रेरणा से ही कई सताधियों में अनेक प्रकार के सुख-दुःखों से मुक्त कर पर्येसी और अंग्रेज जाति का चरित्र गठन हुआ है और उसी की प्रेरणा से सहायों सताधियों के आचरन में हिन्दुओं के जातीय चरित्र का विकास हुआ है । मैं सम्भारतापूर्वक पूछता हूँ— 'कौन सा मार्ग सरल है ? लाखों वर्षों में विकसित राष्ट्रीय चरित्र का परिवर्तन अथवा सौ-गपास वर्षों में अपनाई हुई विदेशी खासतों को त्याग देना ? क्यों नहीं अंग्रेज अपने मुझसोगुण स्वभाव को त्याग कर मार-काट बन्द कर देते और धर्म को अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य बनाने में सम्पूर्ण शक्तियाँ सपाकर ध्यानावस्थित हो जाते ?

सब बात यह है कि जो नदी पर्वतों में अपने उद्गम स्थान से उतर कर सहस्रों कोस दूरी चली जाती हो क्या वह फिर अपने मूल स्रोत पर वापस जा सकेगी अथवा जा सकती है ? यदि वह अपना प्रवाह उमटने का प्रयास करे तो परिणाम यही होगा कि उसका जल इधर-उधर बिखर कर सूख जायगा । चाहे जैसे हो नदी का बैर-सबेर समुद्र में फिरता अनिवार्य है चाहे उसे कुत्ते और रमणीय मीदानों से गुजरना पड़े चाहे गन्धी और कठोर भूमि में से मार्ग निकालने के लिए संघर्ष करना पड़े । यदि हम इस ह्जार वर्षों का हमारा राष्ट्रीय जीवन एक धूम है तो भी कोई बात नहीं । यदि हम अब कोई नया चरित्र अपनाने का प्रयास करेंगे तो उसका अपरिहार्य परिणाम होगा हमारी मृत्यु ।

### हमारी राष्ट्रीय चेतना के छिपे अग्निक्षण

मेरे मतानुसार हमारा यह सोचना कि 'हमारा राष्ट्रीय आदर्श एक युग रही है' निरी मूर्खता और विवेक का अभाव मान है । पहले अल्प देनों में जाइए और अपनी आँखों से—भूखों की आँखों से नहीं—बहाँ की अवस्था तथा आचार-विचार का सुदम अध्ययन कीजिए । फिर पिचारहीन मस्तिष्क से—यदि आपके पास है तो—उन पर चिन्तन-मनन कीजिए । फिर अपने हासनों के प्राचीन बाक मय को ट्योसिए, सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कीजिए और कुली

बाँधों तथा सूर्य एवं मर्मभेदी दृष्टि से उसके विभिन्न भागों के निवासियों के आचार-विचार तथा भावों का निरीक्षण कीजिए। तब आपको मध्याह्न कासीन सूर्य के समान स्पष्ट हो जायगा कि इस राष्ट्र का जीवन कसी अद्युग्ण है, उसकी नाकियों में प्राणों का स्पन्दन निश्चित रूप से विद्यमान है। तब आपको पता चलेगा कि इस आर्य मूर्च्छा की रात के नीच राष्ट्रीय चतना की ज्वाला अभी भी सुखग रही है। राष्ट्र का प्राण धर्म है, उसकी भाषा धर्म है तथा इसका भाव धर्म है। धर्मकी राजनीति समाजनीति मरुतों की सपनाई जेग-निवारण-कार्य अकाल-नीहित-सहायता-कार्य आदि सब चीजें आज तक जिस रूप से चला होती आयी है उसी मार्ग से अब भी होंगी। मर्दान कबल धर्म के माध्यम से होंगी अन्यथा गुम्हारी चीख-मुकार का कोई परिणाम नहीं निकलेगा।

### राष्ट्रीय जीवन-संगीत के विभिन्न स्वर

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी असग कार्यप्रणामी हाती है। कुछ राजनीति के माध्यम से कार्य करत हैं तो कुछ सामाजिक सुधारों के माध्यम से और अन्य इससे भी भिन्न भागों से। हमारे लिए धर्म का ही एकमेव मार्ग लसा है। अंधेज धर्म को राजनीति के माध्यम से ही समझ सकता है। सम्भवत अमरिक्न को धर्म सामाजिक सुधारों के माध्यम से ही समझ में आ सकता है। किन्तु हिन्दू धर्म को राजनीति भी धर्म की भाषा में समझनी होगी। उसके लिए प्रत्येक चीज धर्म के माध्यम से आनी चाहिये। यही हमारे राष्ट्रीय जीवन-संगीत का स्थायी स्वर है अन्य सब स्वर परिवर्तनशील हैं।

त्रिस राष्ट्र का जीवन-सक्य राजनीतिक प्रमुता है, उसके लिए धर्म आवि अन्य सब चीजें उस एक महान् जीवन-सक्य के आधीन हो जाती हैं किन्तु यहाँ एक दूसरा राष्ट्र है त्रिसके जीवन का मुख्य सक्य आध्यात्मिकता और त्याग है त्रिसका एक ही मूल मन्त्र है कि संसार भाषा है और तीन दिनों का राजमंगुर खेस है। अन्य सब कुछ—बाहे विज्ञान हो या ज्ञान सुसोपमोग हा या प्रमुता पन-बैभव हो या नाम और यत्—उस एक सक्य के अन्तर्गत माने चाहिये। सके हिन्दू के चारिष्य का रहस्य इसी में है कि वह पाठशात्य-विज्ञान एवं विद्याओं के अगने समस्त ज्ञान को अपनी सम्पत्ति ब बन-बैभव को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा तथा यत् को इस एक मुख्य सक्य के आधीन कर दे जो जन्म से ही प्रत्येक हिन्दू त्रिगु को प्राप्त होता है—अर्थात् आध्यात्मिकता एवं आधीय गुजडा।

## आध्यात्मिकता का आधार न छोड़ो

स्मरण रखो यदि तुम पारबाल्य सौखिकवादी सम्मता के बन्धन में पड़कर आध्यात्मिकता का आधार खाने लो तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जायगा क्योंकि राष्ट्र का मेरुस्थल टूट जायगा राष्ट्रीय भवन की नींव ही खिसक जायेगी । इस सबका परिणाम होगा सर्वतो मुष्ठी सरयानास ।

अब मित्रो ! एक ही मार्ग ध्य है कि हम अपने प्राचीन पूर्वजों से जन्मी जायी इस अमूल्य विरासत आध्यात्मिकता की पकड़ को कदापि ढीला न होने दें । क्या तुमने सत्कार में कोई ऐसा बेल सुना है जहाँ के महामठम राजाओं ने अपनी बलपरम्परा का श्रेष्ठ राजाओं से नहीं निरीह यात्रियों को झूठने वाले पुराने किमों में रहने वाले कुटेरों सरदारों से नहीं तो बर्ना में रहने वाले अर्धनग्न संन्यासियों से जोड़ा हो । क्या तुमने कभी ऐसा बेल नहीं सुना है ? तो सुनो ! यही है वह बेल । अन्य देशों के बड़े पादरी पुरोहित भी अपनी बलपरम्परा को किसी राजा से जोड़ने का प्रयास करते हैं किन्तु वहाँ बड़े से बड़ा सन्नाट भी अपने को किसी प्राचीन ऋषि का वंशज कहने में कौरव मानता है ।

इसीलिये जाहे तुम्हारी आध्यात्मिकता में आस्था ही मा न हो राष्ट्रीय जीवन की रक्षा हेतु तुम्हें आध्यात्मिकता के आधार पर टिके रहना होगा । फिर दूसरा हाथ बढ़ा कर अन्य जातियों से जो कुछ लेना चाहो लो किन्तु जो भी उनसे ग्रहण करो उसे अपने जीवन-आदर्श के अर्धीन कर दो । तब एक जमत्कारी गौरववासी भावी भारत का उदय होगा । मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह होकर रहेगा । पहले से कहीं अधिक महान् भारत का उदय अवश्यम्भावी है ।



## पुनरुत्थान का कार्य - आधार और दिशा

हे भारत !

केवल दूबतों को 'हाँ' में 'हाँ' बिना कर, दूबतों की इस भुज नकल के द्वारा दूबतों का ही मुँह ताकते रह कर—बस तू इसी पत्थर के सहारे, सम्मता और महानता के चरम सिद्धर पर बढ़ सकेगा ?

बस तू अपनी इस मरणास्पद कायरता के द्वारा उत स्वाधीनता की प्राप्ति का संकेप बिसे पाने के अधिकारी कबल साहसी और वीर हैं ?

हे भारत !

मत्त भूल, तेरा भारतीय का आर्षां लीला, साधिनी और रणधन्वी है ।

मत्त भूल कि तेरे अयात्परीक देवाधिदेव सर्वस्वरायी, उभापति संकर हैं ।

मत्त भूल कि तेरा विषय, तेरी बल-बन्धन, तेरा मोहन केवल विषय-भुज के हेतु नहीं है, केवल तेरे अतिथित मुञ्जोपमोष के लिये नहीं है ।

मत्त भूल कि तू मत्त के चरणों में बलि चढ़ने के लिये ही पैदा हुआ है ।

मत्त भूल कि तेरी ललाज-अवस्था उत अन्त अयत्ननी महामाया की आयागात्र है ।

मत्त भूल कि नीच, अज्ञानी बलि, अयत्न, अमार, मेहुतर सब तेरे रत्नमाल के हैं, वे सब तेरे भाई हैं ।

ओ वीर पुरुष !

साहस बलीर, निर्मोह बन और बर्ष कर कि तू भारतवासी है । पर्व से घोषणा कर कि, "मैं भारतवासी हूँ प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है ।"

मुझ से बोल, "अज्ञानी भारतवासी बलि और पीड़ित भारतवासी, अज्ञान भारतवासी आन्तल भारतवासी सभी मेरे भाई हैं ।" तू भी एक चियत्रे से अपने लज की अज्ञान की हक से और पर्यपूर्ण अन्त-स्वर से अज्ञोप कर,



“प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत से देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं । भारतवर्ष का समाज मेरे बचपन का गुला मेरे जीवन की कुलबारी और बुझाये की क्यारी है ।”

कहू : ‘भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है । भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है ।’ महोदय बया कर, ‘हे यौरीनाथ ! हे जगदम्बे ! मुझे मनुष्यत्व दो । हे कल्किमयी माँ मेरी दुर्बलता को हर लो मेरी कष्टपुरुषता को दूर बना दो और मुझे मनुष्य बना दो माँ ।’

### पश्चिम का सब कुछ खेच

वर्तमान (१९वीं) शताब्दी के आरम्भ में जब पाश्चात्य प्रभाव भारत पर पड़ना शुरू हुआ जब पाश्चात्य विजेता हाथ में कृपाय भारत कर अधियों के बर्तनों को समझाने चाये कि तुम्हारे पूर्वज असम्य थे मिरे स्वयं-श्रष्टा व उनका धर्म केवल पीराधिक पपोजबाजी या आत्मा परमारमा आदि चीजें जिनके सासाकार के लिये वे ब्रूम रहे थे केवल जर्बहीन शक्य है उनका सहस्रों वर्षों का संघर्ष उनका सहस्रों वर्षों का असीम त्याग यह सब ध्वंस हुआ । तब विश्वविद्यालयों के पढ़े-लिखे बुदकों के मस्तिष्क को इन प्रश्नों में जाग्योसित कर जाना कि क्या जब तक का हमारा सम्पूर्ण राष्ट्रीय अस्तित्व ध्वंस रहा ? क्या जब हमे अपने पुराने शास्त्रों की फाड़ डालना चाहिये अपने बर्तनों की हतोत्तरी बना डालना चाहिये अपने बर्तनोपदेशकों को दूर फेंक देना चाहिये इन मस्तिष्कों को बहा डालना चाहिये और पाश्चात्य जीवन-प्रणाली के अनुसार अपनी राष्ट्रीय जीवन-भाषा का नया धीगवेष करना चाहिये ? क्या पाश्चात्य विजेता ने जितने अपने धर्म की श्रेष्ठता का परिचय तलवार और बन्दूक के माध्यम से दिया हमें यह नहीं बताया कि सभी पुण्डने वाचार-विचार मिरे अन्धविश्वास और मूर्ति पूजा पर आधारित हैं ?

इन नये स्कूलों में जिनमें एवं विकसित बर्तनों में जो बचपन से इन विचारों की मुटापी रहे थे पाश्चात्य ढंग पर जीवन-भाषा आरम्भ की । जत-उनके मस्तिष्कों में वे प्रश्न उठे हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । किन्तु अन्धविश्वास से ऊपर उठकर सत्य की वास्तविक खोज करने के बजाय उनके लिये सत्य की एकमेव कच्चीटी हो गयी ‘पश्चिम क्या कहता है ?’ बूकि पश्चिम में कहा है जत-पुरोहितों को जगा दो देवों को जगा दो ।

## सबसे शक्ति की उपासना

मैंने पश्चिम में भी देखा कि दुर्बल राष्ट्रों के बच्चे, यदि इंग्लैंड में जन्म सके हैं तो अपनी मजबूती राष्ट्रीयता—ग्रीक पोर्चुगीज स्पेनिश आदि के स्थान पर स्वयं को इम्पियरियल कहना पसन्द करते हैं। सब शक्तिवादी की ओर मुक्तते हैं। दुर्बलों की एक ही सामसा रहती है कि किसी प्रकार महिमावान में प्रमादित महिमा की आशा इन पर पड़ जाय और उनके शरीरों में भी प्रतिमादित होने लगे अर्थात् वे दुर्बल अपने पीछे से महान् बनने वालों से प्रकाश उधार लेकर चमकना चाहते हैं।

### भारत मोहनजोदड़ो से जग रहा है

भारतवर्ष की वर्तमान शासन-प्रणाली में कई दोष हैं परन्तु साथ ही कई बड़े गुण भी हैं। सबसे बड़ा गुण तो यह है कि पार्लियामन्ट-साम्राज्य के पतन के पश्चात् से अब तक आसेतु विभाजन संपूर्ण भारतवर्ष पर ब्रिटिश शासन तन्त्र के समान केन्द्रीय एवं शक्तिवादी शासन तन्त्र की सन्तुष्टि का कमी नहीं रही।

इस वैश्य प्रभुता के अन्तर्गत कर्मठ वैश्य कृषि के अनुकूल जिस प्रकार व्यापारिक वस्तुओं का निर्यात के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आदान-प्रदान चल रहा है उसी प्रकार उसके सामाजिक परिणाम-स्वरूप विभिन्न देशों के विचार एवं भाव भी भारत की गर्भों में समपूर्वक घुसते जा रहे हैं। इन विचारों और भावों में यदि कुछ सचमुच भारत के लिये मानवार्थक है तो कुछ हानिकारक भी है और कुछ स भारतवासियों के वास्तविक हितों के बारे में विवेचनों की अज्ञता एवं असमर्थता ही प्रकट होती है।

किन्तु इन समस्त गुण-दोषों को देखकर भारत की माषी समृद्धि का सूर्योदय अबस्यम्भाषी है। एक ओर अपने प्राचीन राष्ट्रीय-आदर्शों एवं दूसरी ओर विदेशी राष्ट्रों के सब-अविष्ट विभिन्न आदर्शों के पारस्परिक घाट-अतिघाट के फलस्वरूप भारत धीरे-धीरे अपनी सुधीर्ष प्रयाङ्ग तन्त्रा से जग रहा है।

इस अस्म आधुनिक के फलस्वरूप आधुनिक भारत में मुक्त और मौलिक चिन्तन का भी बीड़ा-बहुत उबल होने लगा है। एक ओर आधुनिक पार्लियामन्ट विज्ञान है जो संसदों सूर्यो के प्रकाश की भाँति हमारे नेत्रों को चकाचौंध कर रहा है, जो पञ्चार्थिणी नीतिक बलियों के विनियोग द्वारा सगृहीत कठोर और सुनिश्चित तर्कों के रूप पर बैठ कर जाये बड़ रहा है, जो दूसरी ओर है वे

भाषाभाषी एवं सशक्त परम्परायें जिन्हें उसके पूर्व-युगों ने उन दिनों बनायी थीं अब वह अपने गौरव के चरम शिखर पर आसीन या जिन परम्पराओं को इतिहास के पृष्ठों से बाहर उसके महात्माओं ने आगे बढ़ाया वो परम्परायें असंख्य वर्षों और शताब्दियों से भारत की प्रत्येक रग में विश्व-बन्धुत्व से अनु-प्राणित कर्म-वैतन्य का संचार कर रही हैं। वो परम्परायें उन अद्वितीय शौर्य-वलिमानव प्रतिमा और चरम आध्यात्मिकता से परिपूर्ण हैं जिनसे वैभवा भी ईर्ष्या करते हैं। ये दोनों ही भारत की भाषी भाषाओं का बस प्रदान करते हैं।

एक ओर विदेशी साहित्य के माध्यम से चरम नीतिक्रम प्रचुर जन-संपत्ति प्रभूत बल-संपन्न और उत्कृष्ट इन्द्रिय मुख की कामता ने जीवन में अपूर्व कोसाहस मचा रखा है दूसरी ओर बेसुरे-संगीत के कर्म भेदी कोसाहस को विदीर्ण कर उसके कानों से अपने पुरातन देवताओं की मर्मभेदी पुकार मन्त्र किन्तु अपूर्व स्वर में आ रही है और उसे नई विद्या में एकदम आगे बढ़ने से रोक रही है।

उसके सामने परिचय से आयी विविध प्रकार की विविध-विधिसि विज्ञान सामग्रियाँ बिलरी पड़ी हैं—ये इन्द्रिया ये ये सुन्दर स्वादिष्ट भोजन ये तद्वत्-मङ्गलार वस्त्र यानवार अट्टाभिकार्ये नये युग के बाहुन नये शिष्टाचार, और ये नये-नये फैशन जिससे सब-बनकर मुबिदित मङ्गलियाँ अल्पत निर्लेग्यतापूर्वक पूर्ण स्वच्छता से झूमती फिरती हैं। ये सब सामग्रियाँ न जाने कितनी नई-नई इच्छाओं तथा वासनाओं को मङ्गका रही हैं।

किन्तु फिर बुद्ध्य बबसता है और जन की बगहू आ जाती है सीता और सावित्री प्रत और उपवास तपोवन और बटाबूटघारी कापाय बस्त्रघारी मई नम्र संस्थापी समाधि और आत्म-साक्षात्कार की ठोस साधना। एक ओर निजी स्वार्थ पर आधारित पाश्चात्य समाजों का अविचार स्वातन्त्र्य है दूसरी ओर आर्य जाति का चरम आत्मोत्सर्ग है। इस विषय संघर्ष में यदि भारतीय समाज की नैया बोझी बहुत डगमगा गई तो उसमें आश्चर्य क्या ?

पाश्चात्य बगवत् का साध्य है व्यक्तित्व अधिकार स्वातन्त्र्य उसकी साधना है धनोपार्थक विद्या उसका साधन है राजनीति जबकि भारत का मन्त्र है 'मुक्ति' उसकी साधना है वैश्यायन और उसका साधन है निवृत्ति।

वर्तमान भारतवर्ष में मार्गों एक बार सोचन सगता है कि कहीं मैं परभोक्त के अनिश्चित आध्यात्मिक कस्याव की मिरर्भक जागा में पड़कर इस लोक का लपानाक तो नहीं कर रहा हूँ ? किन्तु दूसरे ही क्षण वह स्वयं हो मुनता है

“इति संसारे स्फुटतर दीप कश्चिद् मानव एव संशोप अर्थात् ‘अनेक दीपों में परिपूर्ण इस संसार में ऐ मानव ! तेरा मुख नहीं है ?

एक ओर, तथा भारत कहता है, ‘पारश्चात्य भाव पारश्चात्य भाषा पारश्चात्य ज्ञान-दान और पारश्चात्य आचार को अपनाकर ही हम पारश्चात्य राष्ट्रों के समान शक्तिशाली हो सकेंगे” दूसरी ओर पुण्या भारत कहता है—“हे सूर्य ! नहीं नरस करने से भी तुम्हें का भाव अपना हुआ है ? बिना स्वयं कमाये कोई कस्तु अपनी नहीं होती । क्या सिद्ध की साम भोजकर तथा भी मित्र बन सकता है ?”

एक ओर नवीन भारत कहता है, ‘पारश्चात्य राष्ट्र जो कुछ कर रहे हैं वही अपना है । अथवा वे शीघ्र इतन शक्तिशाली होने ही रूचें ? दूसरी ओर प्राचीन भारत कहता है, ‘बिजली की बमक बहुत तेज होती है किन्तु शक्ति होती है । कस्तु ! आँसू धोना तुम्हारी आँसू उतन शक्तिवादी नहीं है । किन्तु शासकाल ।

सीसो किन्तु अन्धानुकरण न करो

तो क्या हमें पारश्चात्य कस्तु में कुछ भी सीखने की नहीं है ? क्या हमें लक्ष्मी कीर्तियों के विषे प्रयास और परिश्रम करने की आवश्यकता ही नहीं है ? क्या हम स्वयं पूर्ण हैं क्या हमारा समाज विमकुल छिद्र-युग्म है क्या उग्रम कोई मुक्ति नहीं है ? नहीं सीखने की बहुत कुछ है । तथा और श्रेष्ठतर चीर्तियों की उपमण्डि के विषे हमें मृग्युत्सव संस्पर्ष करते रहना चाहिये ।

भी उपमण्डि देव कहा करने से—“यै जब तक जीर्ण सीखना ही रहें । जिस व्यक्ति या समाज को कुछ सीखना नहीं रह गया है, वह काम के गान में प्रसिद्ध हो चुका है । अथवा ही हमें पश्चिम से अनेक बार्ने सीखनी चाहिये किन्तु इसका साथ ही कई भय भी हैं ।

एक अल्पशुद्धिवादा भासक भी उपमण्डि-देव के सम्मुख सर्वत्र भासनों की निन्दा करता था । एक निज उसने मयवर्द्धीना की प्रशंसा की तो थी उपमण्डि देव न कहा “मेरा अनुमान है कि किसी योरोपीय पश्चिम ने गीता की प्रशंसा की हापी इमीविषे यह भी उदका अनुकरण कर रहा है ।

हे भारत ! यहाँ तुम्हारे विषे सबसे भयंकर खतरा है । पश्चिम के अन्धा-नुकरण का नाह तुम्हारे ऊपर इतनी बुरी तरह सवार होगा जा रहा है कि ‘क्या अपना है और क्या कुछ’ इसका निर्णय अब तर्क-बुद्धि ग्याम हिताहित मात्र

अथवा शास्त्रों के आचार पर नहीं किया जा रहा है। जिन विचारों, जिन आचारों को बोरे साहब पसन्द करें अथवा जिनकी वे प्रशंसा करें, वही बातें अच्छी हैं। जिन बातों की वे निन्दा करें अथवा नापसन्द करें वही बुरी। सोच, इससे बड़कर मूर्खता का परिचय और कोई क्या देना ?

**उनका अमृत हमारे लिये विष हो सकता है**

हमें अपनी प्रकृति के अनुकूल विकास करना होना। विदेशी समाजों द्वारा हम पर असाह्य आरोपित कार्य-प्रणालियों का अनुगमन करना हमारे लिये निरर्थक है। यह अराज्य भी है। ईश्वर को सम्यक् है कि यह नहीं हुआ और हमें दूसरे राष्ट्रों के साथ में छोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता। मैं अन्य जातियों की सामाजिक संस्थाओं की निन्दा नहीं करता उनके लिये अच्छी हैं किन्तु हमारे लिये नहीं। जो उनके लिये अमृत है वही हमारे लिये विषतुल्य हो सकता है। यह पहला पाठ है जिसे हमें स्मरण रखना है। उनकी वर्तमान जीवन प्रणाली के पीछे दूसरी विधायें हैं दूसरी संस्कार्यें हैं और दूसरी परम्परायें हैं। हम अपनी परम्पराओं के कारण अपने पीछे सहस्रों वर्ष के कर्म-संचय के कारण अपनी ही प्रकृति के अनुसार आगे बढ़ सकते हैं अपने जीवन प्रवाह के अनुकूल रहकर ही प्रगति कर सकते हैं।

**दो प्रकार की सम्यक्ताएँ**

संसार में समाज-रचना के दो प्रकार प्रयास किये गये हैं। एक का अधिकार्यकर्म रहा है तो दूसरे का आधार कैवल सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति। एक आध्यात्मिकता की नींव पर खड़ा हुआ तो दूसरा जड़वाद की। एक अतीन्द्रिय ज्ञान पर आधारित है तो दूसरा बौर वर्णव्यवस्था पर। यदि एक इस छोटे से भौतिक जगत के अस्तित्व के परे हैस रहा है और इस लोक की उपेक्षा करके भी वहाँ से जीवन का जीवन करने का साहस रखता है तो दूसरा इसी लोक की नींवों में मुक्त मान रहा है और वही जीवन का अद्वय आधार सोच रहा है।

स्वामाजिक ही लोगों की अपनी-अपनी जिन रचना-विधि है। भारत आत्मिक या अन्तर्मुखी है तो पश्चिम इन्द्रिय-मय वैज्ञानिक अथवा यतिर्मुखी है। पश्चिम आध्यात्मिकता का प्रत्येक एक समाज सुधार के माध्यम से प्राप्त करना चाहता है। पूर्व आध्यात्मिकता के माध्यम से सामाजिक उत्थान के प्रयत्न

सोपान पर बढ़ने की आकांक्षा रखता है। यही कारण है कि आधुनिक भारतीय सुधारकों को सुधार का और कोई मार्ग सूझा ही नहीं सिवाय इसके कि सर्व प्रथम यहाँ के धर्म को कृपसा जाय। उन्होंने प्रयत्न किया किन्तु वे असफल रहे। क्यों? क्योंकि उनमें से बहुत कम ने अपने धर्म का अध्ययन किया था और एक ने भी वह कठोर साधना नहीं की जिसके द्वारा ही सब धर्मों की इस जगती का समता आ सकता था।

मरा दुःख विनाश है कि हिन्दू समाज के सुधार के लिए धर्म का विनाश आवश्यक नहीं है। और, हमारे समाज की इस दुरवस्था का कारण धर्म नहीं है बल्कि धर्म का समाज-जीवन में पबोचित पावन न होना है।

**समन्वय आवश्यक, किन्तु भारत योरोप नहीं बन सकता**

किन्तु साथ ही भारत में नयी परिस्थितियों समाज-मण्डल में नये सुधारों की सपाटार माँप कर रही है। विषय १०-२२ वर्षों से भारत में सुधारकों एवं सुधारकारी सम्प्रदायों की बाढ़ सी आ गयी है। किन्तु ओह! उनमें से प्रत्येक को असफलता मिली है। उन्हें मुझ उल्हस का पता ही नहीं था। उन्हें जिस महापाठ का सीखना चाहिए था उस उन्होंने सीखा ही नहीं। उदाहरणतः मैं उन्होंने समाज के समस्त शेषों का पाप 'धर्म' के लिये मड़ दिया उन्होंने एक प्रबलित लोककथा के अनुसार मित्र के पाप पर बैठे हुए मच्छर को मारने के प्रयास में मच्छर और मित्र दोनों को एक साथ मारने का प्रयास किया। किन्तु हमारे यहाँ सीमात्मक से उन्होंने केवल बचल बट्टानों के विरुद्ध अपना सिर टकराना और परिवामस्वरूप उनका अपना ही अस्तित्व मिट गया।

जब उबार एवं निस्कार्य धारणाओं का नशा हो किन्हीं अध्यात्मिक समर्पण किया किन्तु जिसके प्रयास पबल्लष्ट होने के कारण विफल रहे। इस सोप हुए कुम्भकर्षण की अयाग के लिये उनकी सुधारकारी सुम्पा से उत्पन्न इन प्रबल आबाधों का सपना आवश्यक था। किन्तु रणजालमक न होकर, वे पूर्वतमा विघ्नोत्सारमक से। अतः उनका विफल होना अधभयमाधी का और ब काल के पास में समा भी गये।

हम उन सुधारकों के लिए शुभ कामनायें रखें और उनके अनुभवों से शिक्षा लें। क्योंकि यह महत्वपूर्ण पाठ नहीं पढ़ा जा कि विकास मन्दर से बाहर को होता है, और सम्पूर्ण बाह्य विनाश पहले से विद्यमान मस्त्रियों की अभि-व्यक्ति मात्र है। उन्हें यह भी पता नहीं था कि बीज अपने चारों ओर के तलों

अबका शास्त्रों के आधार पर नहीं किया जा रहा है। जिन विचारों जिन भाषारों की ओर साहज प्रसन्न करें अबका जिनकी वे प्रसंसा करें वही बातें अच्छी हैं जिन बातों की वे निन्दा करें अबका नापसन्द करें वही बुरी। बोह इससे बढ़कर मूर्खता का परिणय और कोई क्या होगा ?

**उनका अमृत हमारे लिये विष हो सकता है**

हमें अपनी प्रकृति के अनुकूल विकास करना होगा। विदेशी समाजों द्वारा हम पर बनाए आरोपित कार्य-अभ्यासियों का अनुबन्धन करना हमारे लिये निरर्थक है। यह असम्भव भी है। ईश्वर को धन्यवाद है कि यह नहीं हुआ और हमें दूसरे राष्ट्रों के साथ में ठोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता। मैं अन्य जातियों की सामाजिक संस्थाओं की निन्दा नहीं करता उनके लिये अच्छी हैं किन्तु हमारे लिये नहीं। जो उनके लिये अमृत है वही हमारे लिये विषमूल्य हो सकता है। यह पहला पाठ है जिसे हमें स्मरण रखना है। उनकी वर्तमान जीवन प्रणाली के पीछे दूसरी विचार्यें हैं दूसरी संस्कार्यें हैं और दूसरी परम्परायें हैं। हम अपनी परम्पराओं के कारण अपने पीछे सहस्रों वर्ष के कर्म-संभव के कारण अपनी ही प्रकृति के अनुसार जाने बढ़ सकते हैं अपने जीवन प्रवाह के अनुकूल रहकर ही प्रवृत्ति कर सकते हैं।

**दो प्रकार की सम्यक्ताएँ**

संसार में समाज रचना के दो मुख्य प्रयास लिये गये हैं। एक का अतिष्ठान पर्यं रहा है तो दूसरे का आधार केवल सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति। एक आध्यात्मिकता की नींव पर खड़ा हुआ तो दूसरा जड़वाद की। एक अतीन्द्रिय ज्ञान पर आधारित है तो दूसरा भोर मयार्थवाद पर। यदि एक इस छोटे से भौतिक जगत के क्लिष्ट के परे देख रहा है और इस सोफ की उपेक्षा करके भी वहाँ से जीवन का भीगनेस करने का साहम रखता है तो दूसरा इसी सोफ की नींवों में सुस मान रहा है और यही जीवन का अन्त आधार खोज रहा है।

रसाभाविक ही दोनों की अपनी-अपनी भिन्न रचना-विधि है। भारत धार्मिक या अन्तर्मुखी है तो पश्चिम इन्द्रिय-गम्य वैज्ञानिक अबका वहिर्मुखी है। पश्चिम आध्यात्मिकता का प्रत्येक एक समाज मुबार के माध्यम से प्राप्त करना चाहता है। पूर्व आध्यात्मिकता के माध्यम से सामाजिक उत्थान के प्रत्येक

सोपान पर बल की आकांक्षा गूढा है। यही कारण है कि आधुनिक भारतीय मुबारकों को मुबार का और कोई पाम मूला ही नहीं सिवान इसक कि सब प्रथम यही क धर्म को कृषता जाय। उन्होंने प्रथम विद्या विन्तु व असफल रह। क्यों? क्योंकि उनमें स बहुत कम ने अपने धर्म का अध्ययन विद्या या भीर एक न ही बहु बटोर साधना नहीं की जिसक हाठ ही सब यमों की इस बमरी की समता ना सफटा था।

महा बुद्ध विस्वास है कि हिन्दू समाज के मुबार के लिए धर्म का विनाश आवश्यक नहीं है। और, हमारे समाज की इस दुखबन्धा का कारण धर्म नहीं है बरिक्त धर्म का समाज-जीवन में अपोचित पामन न होना है।

समन्वय आवश्यक, किन्तु नारत योरोप महीं बन सकता

किन्तु साथ ही भारत में नयी परिस्थितियों समाज-मण्डल में नये मुबारों की स्यातार मान कर रही है। विगत १०-१२ बरों स भारत में मुबारकों एवं मुबारबारी संस्थाओं की बाढ़ सी आ यमी है। किन्तु मोह! उनमें से प्रत्यक को असफलता मिली है। उन्हें मूल रूप्य का पता ही नहीं था। उन्हें जिस महापाठ को सीखना चाहिए था उसे उन्होंने सीखा ही नहीं। उदाहरण में उन्होंने समाज के समस्त दोषों का पाप धर्म के मध्य मड़ विद्या उन्होंने एक प्रचलित मोककपा के अनुसार विश्व के माये पर बैठे हुए मण्डर की मारत के प्रसाध में मण्डर और विश्व दोनों को एक साथ मारने का प्रयास किया। किन्तु हमने नहीं सोचाय स उन्होंने कबल अज्ञत बट्टनों के विरुद्ध अपना विर उठाना और परिपामस्वरुप उनका मरना ही अन्तिम मिट गया।

उन उदार एवं निस्वार्थ आत्माओं का मया ही किन्हीं मन्त्राक्षि सवर्ष किया किन्तु उनके प्रयास सफल होन के कारण विफल रहे। इस सोय हुए कुम्भकर्ष को जगान के निये जननी मुबारबारी तुण्या से उदभन इन प्रथम आचार्यों का सपना आवश्यक था। किन्तु रचनात्मक न हाट्ट, वे पूर्णतया विष्वसामक थे। अतः उनका विफल होना अवश्यमानी था और वे काम के माल में समा भी बय।

हम इन मुबारकों के लिए शुभ कामनायें रते और उनके अनुभवों से शिक्षा ले। उन्होंने यह महत्वपूर्ण पाठ नहीं पढ़ा था कि विकास मण्डर से बाहर को हाठा है और सम्पूर्ण बाह्य विद्याम पहले से विद्यमान शक्तियों की सधि सक्ति मात्र है। उन्हें यह भी पता नहीं था कि बीर अपने चारों ओर के तत्वों



को केवल आरमत्वात् कर लेता है किन्तु वह अपनी प्रकृति के अनुकूल वृत्त को ही जन्म देता है । जब तक हिन्दू जाति का नामोल्लेख नहीं मिट जाता और कोई नई जाति इस भूमि पर अपना पूर्ण अधिकार नहीं जमा लेती तब तक यह कभी नहीं हो सकेगा—चाहे पूर्व प्रयास करे या पश्चिम । भारत योरोप जमी नहीं बनेगा ।

मैं भी मानता हूँ कि हमें अन्य राष्ट्रों से बहुत सी अच्छी बातें लेनी हैं । हम विदेशों से बहुत कुछ सीखना है । किन्तु मुझे खेद क' साक कहना पड़ता है कि हमारे अधिकृत वर्तमान मुबार-आन्दोलन पश्चिमी साधनों एक कार्य प्रणाली की जन्मी नकल है और यह निश्चित ही भारत के लिए हितकर नहीं है । यही कारण है कि हमारे सब आधुनिक मुबार-आन्दोलनों का कोई फल नहीं निकला । हम परम्परा और इतिहास से प्राप्त अपने जातीय चरित्र को अधुष्ण रखने का प्रयास करना चाहिए ।

### अटस केन्द्र के परिवर्तनशील वृत्त

सर्वप्रथम हमें प्रत्येक वस्तु में तिस्य और अनित्य तत्व का विवेचन करना चाहिए । तिस्य सनातन होता है और अनित्य की केवल सामयिक उपयोगिता रहती है । उदाहरणार्थ जातियाँ निरन्तर बदल रही हैं । धार्मिक कर्मकांड भी उतल बदलते रहे हैं । ऐसा ही अन्य समस्त बाह्य वृत्तों का भी होता है । किन्तु उनका मूलधार, मूल-सिद्धान्त कभी नहीं बदलता । हमें अपनी धर्म के मूलस्वरूप का अध्ययन वेदों में ही करना होगा । वेदों के अतिरिक्त प्रत्येक पुस्तक परिवर्तनशील है ।

वेद सनातन हैं और सब कामों में एक ही रहेंगे । किन्तु स्मृतियों का जन्म भी होता । ज्यों-ज्यों समय बीठता जायेगा तबिन स्मृतियाँ बनती रहेंगी नवे ष्टयि आर्येण और वे कुम की आवश्यकतानुसार समाज को बदलेंगे और अच्छे मामों से अच्छे कर्मों पर चलायेंगे क्योंकि इसके बिना समाज का भीति रहना असम्भव है ।

अतीत से इस वेद में अनेक महान् कार्य हुए हैं और उससे भी महान् कार्य करने का पर्याप्त समय और क्षेत्र अभी सेप है । तुम यह जानते ही हो कि हम एक जगह अडकत् नहीं रह सकते । यदि हम अडकत् पड़े रहें तो हम मर जायेंगे । हमें आगे जाना होगा या पीछे हटना पड़ेगा । हमें उत्पत्ति की ओर अग्रसर होना होगा अन्यथा हमारी अवनति अपने आप होती जायगी । हमारे

पूर्व पुरुषों ने प्राचीनकाल में बहुत बड़े-बड़े काम किये हैं पर हमें उनसे भी अधिक पूर्व जीवन का विकास करना होना और उनकी महान् उपलब्धियों को नाश कर देने बढ़ना होना। जब हम पीछे कैसे हट सकते हैं और अपनी अवस्था को निम्नत्रय कैसे दे सकते हैं? ऐसा कभी नहीं हो सकता। पीछे हटने का अर्थ है राष्ट्रीय पतन और मृत्यु। अतएव "अग्रसर होकर महत्तर कर्मों का अनुष्ठान करें" यही मुझे तुमसे कहना है।

### भारत की प्राचीन समाज-संस्थाएँ

यद्यपि हमारी जाति-श्रवा एवं धर्म संस्थायें बाहर से देखने पर कम से जुड़ी हुई लगती हैं तथापि बस्तुस्थिति यह नहीं है। ये संस्थायें हमारे राष्ट्रीय बलित्व के संरक्षण के लिये आवश्यक रही हैं किन्तु जब साम्यसंरक्षण की यह आवश्यकता समाप्त हो जायगी व सभी संस्थाएँ अपनी स्वाभाविक मृत्यु से मर जायेंगी।

मेरी बानु बीसे-बीसे बढ़ती जाती है, बीसे-बीसे मुझे भारत की इन प्राचीन संस्थाओं की ओर ध्यान स्पष्ट होती जा रही है। एक समय या जब मैं इनमें से कनेक को निकम्मा और निरपयोगी समझता था, किन्तु बीसे-बीसे मेरी बानु बढ़ती जाती है उनमें से किसी की भी निन्दा करने का मेरा साहस कम होता जाता है क्योंकि उनमें अनेक अतामियों के अनुभवों का परिपाक है।

एक दिन का बच्चा जो अपने दिन ही मर जाने वाला है मेरे पास जाता और कहता है कि 'तुम अपनी समस्त योग्यताओं बर्बाद हो' यदि मैं उस बच्चे की समझ मान कर अपने समस्त वातावरण को उसके विचारों के अनुसार बदल दूँ तो मेरे समान भूख और कौन होगा ?

अनेक दिनों से हमें जो परामर्श मिल रहा है वह इसी श्रेणी में आता है। इन बुद्धि के ठेकेदारों को बता दो 'मैं तुम्हारी बात ठक तुम्हारा जब तुम पहले अपने यहाँ एक स्वामी समाज की रचना करके दिखा दोगे। तुम दो दिन तो एक विचार पर टिक नहीं सकते तभी तुम आपस में झगड़ने लगत हो और बलपक्ष हो जाते हो। तुम बरसाती फुसफुसों की तरह हो बढ़ी कमरठे हो और शिरोहित हो जाते हो। तुम मृतकर्म की तरह चलते हो और तुम्हें किसी भी हो जात हो। पहले हमारे पैसा स्वामी समाज बढ़ा करो। पहले ऐसे नियम और संस्थाएँ बनाओ जिसकी अन्तर्बल अतामियों तक टिकी रहे। जब तुम इस विषय पर बात करने के योग्य बन सकोगे। किन्तु जब तक मेरे मित्र तुम केवल एक बर्बोस बिभु ही रहोगे।'।

## मानव प्रगति की हमारी योजना

मैं किसी सामयिक जीवन-सुधार का प्रचारक नहीं हूँ। मैं केवल कुछ शोषों को दूर करने का प्रयास भी नहीं कर रहा हूँ। मैं तुम से कहता हूँ कि आगे बढ़ो और हमारे पूर्व पुरुष समग्र मानव जाति की उन्नति के लिए जो सर्वाङ्ग सुन्दर परिकल्पना से गये हैं उसी का अवलम्बन कर उनके उद्देश्य को सत्य-सृष्टि में परिणत कर दो। मेरा तुम से एक ही अनुरोध है कि मनुष्य जाति के एतत्त्व और ईश्वरत्व के वैदिक आदर्श के अधिकाधिक समीप पहुँचने के लिए कार्य करो।

हमारे प्राचीन स्मृतिधार भी जाति-भेद का सोप करने वाले थे। किन्तु वे हमारे सामयिक सुधारकों के समान नहीं थे। जातिप्रथा तोड़ने पर उनका मतलब कदापि यह नहीं था कि बहुर भर के सब लोग एक साथ बैठकर लजब-कबाब उड़ावें न यह था कि देश भर के सब मूर्ख और पागल लोग जाड़े जब जहाँ जितके साथ ब्याह रचा सें और सम्पूर्ण देश को पागसलाने में परिणत कर दें और न उनका यही विश्वास था कि देश की समृद्धि का मापदण्ड उनकी विधवाओं के पुनर्विवाहों की संख्या पर निर्भर है। इस प्रकार से किसी जाति को उन्नत होते देने तो अब तक देखा नहीं।

## हिन्दू समाज का आदर्श—ब्राह्मणत्व

ब्राह्मण ही हमारे पूर्व पुरुषों के आदर्श थे। हमारे सभी शास्त्रों में ब्राह्मणों का शास्त्रिक चरित्र उच्च आदर्श माना गया है। पौरव के बड़े-बड़े बर्माचार्य हैं कि वे अपने पूर्वजों की श्रेष्ठता प्रमाहित करने के लिये जी-शोक कोटिच करते हैं और सहजों बपये भी लक्ष करते हैं। उन्हें जब तक सन्तोष नहीं होता जब तक वे अपनी बल परम्परा का सम्बन्ध किसी ऐसे भयानक बत्याचाटी से जोड़ न सें जो किसी पहाड़ी पर रहता हो वहाँ से पहाड़ीयों को लाका कट्टा हो और मौका पाते ही उन पर भपट कर उनका सब कुछ मूट लेता हो। यह था इन श्रेष्ठ कुलीनता के प्रधाता पूर्वजों का चरित्र। बर्माचार्य जब तक संतुष्ट नहीं होते जब तक इनमें से किसी एक से अपना बँजानुक्रम न डूब सें। किन्तु ठीक इसके विपरीत भारत के बड़े-बड़े राजा भी इस बात का पता लगाने की श्रेष्ठ करते हैं कि हम अमुक क्रीपीनचाटी सर्वस्व-नयापी बनवासी कन्व मुलाहाटी और

बेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। इस वेद में तुम सभी ऊँची जाति के माने जाओगे जब तुम अपनी बंध-परम्परा किसी पूर्व ऋषि से जोड़ सको अन्यथा नहीं।  
 अतएव उक्त जन्म का हमारा आदर्श अन्य देशों से भिन्न है। आध्यात्मिक सामना-सम्पन्न महात्माजी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या अभिप्राय है? आदर्श ब्राह्मणत्व नहीं है जिसमें सांसारिकता नाममात्र को न हो तथा सच्चा ज्ञान पूज्यमात्रा में हो। हिन्दू-समाज का यही आदर्श है। क्या आपने नहीं सुना कि शास्त्रों में लिखा है 'ब्राह्मण के लिये कोई नियम बन्धन नहीं वे राजा के श्राव्य शासित नहीं होते और उनके शरीर को छिनक नी चोट नहीं पहुँचाई जा सकती?' यह बात बिलकुल सच है। स्वार्थी एवं बल लोगों ने इसके जो अर्थ निकाले हैं, उन्हें मत अपनाओ। इसको सच्चे और मूल वैदिक भाव के प्रकाश में ही समझने का यत्न करो।

### राज्यसत्ता का तिरोहण कैसे ?

यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे व्यक्ति का बोध होता हो जिसने स्वार्थपरता का एतद्वय भाव कर डाला है जो ज्ञान तथा प्रेम के प्रसार प्रचार के लिए ही जीवन बाराण करता है—और यदि कोई समाज ऐसे ही ब्राह्मण से जो आध्यात्मिक एवं सत्यभाव से युक्त है भय हुआ है, तो क्या उस समाज का समस्त कानूनो से परे एवं ऊपर होना कोई आश्चर्य की बात है? ऐसे लोगों पर शासन करने के लिये पुनिस अथवा सेना की आवश्यकता ही क्या है? आश्रित, ऐसे आयुधियों पर शासन करने का प्रयोजन भी क्या है? ऐसे लोग किसी आसम-उन्न के अधीन ही क्यों रहें? वे लोग साजु-स्वभाव एवं महात्मा हैं। वे ईश्वर के सच्चे प्रतिनिधि हैं। वे ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं। और हम शास्त्रों में पढ़ते हैं कि सत्ययुग में केवल एक ही जाति की और वह भी ब्राह्मण।

### सत्ययुग में सब ब्राह्मण

महाभारत में बताया गया है कि पुरुकाल में सारी पृथ्वी पर केवल ब्राह्मणों का ही निवास था। जमना क्यों-क्यों उनका पठन हुआ वे विभिन्न वर्णों में विभक्त हो गये

न विज्ञेयोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्मणित्वं जगत् ।  
 ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्मविर्चितां पतम् ॥

(महाभारत सा० पर्व)

फिर जब युग एक नूमता-नूमता सत्ययुग तक मा पहुँचेगा तब फिर से सब आह्वान ही हो जायेंगे । वर्तमान युग एक बहिष्प्य में सत्ययुग के जाने की सूचना दे रहा है । इसी बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ । अतएव हमारी जाति-समस्या का हल ढूँधी जातियों को नीचे जाने मन चाहा आहार-बिहार करने और जातिक सुख भोग के लिए अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा तोड़ने से नहीं निकसेगा । इसका अन्तिम हल तभी निकसेगा जब हम में से प्रत्येक व्यक्ति वैधान्तिक धर्म के आदर्शों का पालन करेगा जब हर कोई आध्यात्मिकता को प्राप्त करेगा और हममें से प्रत्येक आदर्श आह्वान बन जायेगा ।

### आदर्श आह्वान धनना है

तुम आर्य हो या अनार्य अधि-सन्तान व आह्वान हो अपना व्यस्त नीच जाति के भारत भूमि के प्रत्येक पुत्र के लिये उसके पूर्वजों का यही एक आदेश है । तुम सबके प्रति उनका एक ही आदेश है 'चरैवेति चरैवेति' । इस देश के उच्चतम व्यक्ति से लेकर निम्नतम जातिवाला को भी आदर्श आह्वान बनने की चेष्टा करना है । वैधान्त का यह आदर्श केवल भारतवर्ष के लिये ही उपयुक्त हो गो बात नहीं बरन् सम्पूर्ण संसार को इस आदर्श के अनुसार चलना होगा ।

हमारी धर्म-व्यवस्था का यही आदर्श है । उसका उद्देश्य है कि सम्पूर्ण मानवता को धर्म तर्क उस आध्यात्मिक पुरुष की ओर बढ़ाया जाए जो अपरिच्छिनी ज्ञान और ध्यान सुख एवं अन्तर्मुखी है । इसी आदर्श में नाटयगत्य की स्थिति है ।

### पश्चिमी साँधे में उसा सुधारक वर्ग

मानकम हमारे बीच कुछ ऐसे भी सुधारक हैं जो हिन्दू राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिये हमारे धर्म में सुधार करना चाहते हैं अपना उसे विभक्त उभट बनना चाहते हैं । निस्संदेह उनमें कुछ सोग बड़े चिन्तनशील भी हैं किन्तु अधिकांश अनुयायी हैं और मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं । उन्हें यह भी पता नहीं कि वे चाहते क्या हैं ? सुधारकों का यह धर्म हमारे धर्म में विदेशी विचारों को प्रभावित करने में बड़ा उसाह संता है । उन्होंने एक शब्द 'मूर्तिपूजा' को पकड़ लिया है और वह यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि मूर्तिपूजा होने के कारण हिन्दू धर्म सच्चा नहीं है । उन्होंने यह पता सयाने का कभी प्रयास नहीं किया कि यह

'मूर्तिपूजा' है क्या वस्तु ? यह अच्छी है या बुरी । केवल बूझों की बुद्धि का अनुकरण कर के बिस्मा रहे हैं कि हिन्दू धर्म झूठा है ।

मूर्ति पूजा को बराब बतान की प्रथा सी बस पड़ी है और आजकल हर कोई उसे बिना किसी तनुतब स्वीकार भी कर लेता है । मैंने भी एक समय ऐसा ही सोचा था । किन्तु उसके प्रायश्चित्त स्वल्प मुझे एक ऐसे व्यक्ति के बरण कमलों में बैठकर मित्रा प्रह्ला करली पड़ी जिसने मूर्तियों के द्वारा ही भारत साक्षात्कार किया था । मेरा अभिप्राय थी रामहृष्य परमहंस से है । यदि मूर्ति पूजा के द्वारा ही रामहृष्य परमहंस जैसे साधु उत्पन्न हो सकते हैं तब आप क्या सेना पसन्द करेंगे-इस मुषारकों क घोषे तर्क बचका अधिक से अधिक मूर्तियाँ ? मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ । यदि तुम मूर्तिपूजा के द्वारा ही रामहृष्य परमहंस उत्पन्न कर सकते हो तो और भी सहस्रों मूर्तियों की पूजा करो । ईश्वर तुम्हें हमने विधि है । चाहे तिन साधनों में हो ऐसी महान् आत्माओं की सृष्टि करो । फिर भी मूर्ति-पूजा की निन्द्य की जाती है । क्यों ? यह कोई नहीं जानता । क्योंकि कुछ ही वर्ष पूर्व किसी यहूदी रक्त के व्यक्ति ने इसकी निन्दा की थी ? क्योंकि हमने अपनी मूर्ति को छोड़कर और सब मूर्तियों की निन्द्य की थी । उस यहूदी ने कहा 'यदि ईश्वर को किसी सुन्दररूप बचका प्रतीकारमय रूप में प्रकामित किया जाय तो वह बहुत बुरी बात है । यह पाप है किन्तु यदि वह एक विश्वास के रूप में ही जिसके दोनों ओर हो देबदूत बैठे हों और ऊपर एक बाबन छाया हो तो यह उसका पवित्रतम प्रतीक है । यदि वह एक वैकुण्ठी का रूप लेकर आवे तो वह पवित्र है किन्तु यदि वह पाप के रूप में जाय तो यह विचमियों का अन्वविस्वास है और निन्दनीय है । इस दुनिया की ऐसी ही विचित्र मूर्ति है ।

### मतीत के सच्चे सुधारक

क्या भारतवर्ष में कनी सुधारकों का अभाव रहा है ? क्या तुमने भारत का इतिहास पढ़ा है ? रामानुज कौन थे ? शंकर कौन थे ? नानक कौन थे ? वैश्वानर कौन थे ? कबीर कौन थे ? शूद्र कौन थे ? ये बड़े-बड़े धर्मोन्देशक जो भारत के साम्राज्य में बलि उगम्यन मन्त्रों के समान एक-एक कर उचित हुए, कौन थे ? क्या रामानुज के अंतःकरण में भीष जातियों के लिए प्रेम नहीं था ? क्या उन्होंने जीवन भर चाण्ण्य तक को अपने सम्प्रदाय में माने का प्रयत्न नहीं किया ? क्या उन्होंने अपने सम्प्रदाय में सुगमनात लठ को मिया

सेने का प्रयत्न नहीं किया ? क्या गानक ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को निकट साकर समाज में नयी स्थिति उत्पन्न करने का प्रयास नहीं किया ? उन सबने यह यत्न किया और आज भी उनका कार्य जारी है । अन्तर केवल इतना है कि वे बाबकस के समाज सुधारकों की भाँति शक्तिशाली नहीं थे । वे सामुदायिक सुधारकों के समान लिम्बा नहीं करते फिरते वे अपितु उनके मुख से सदा वालीबाँव ही निकलता था ।

### असीम करुणा और धर्म से युक्त सुधारक

एक सत्य तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि संसार के समस्त धर्म प्रवर्तकों का एक ही श्रेय वाक्य रहा है कि वे विघ्न के लिए नहीं निर्माण के लिए आये हैं । कई बार उनकी इस घोषणा को सही बर्षों में नहीं समझा गया और उनकी सहिष्णुता को प्रशंसित पारनामों के साथ अनुचित समझौता माना गया । अभी भी कभी-कभी यह पुनः को मिल जाता है कि मानव जाति के भविष्यद्व्याप्त एवं महान् आचारों कायर वे और उनमें वह कुम्हार कहने का साहस नहीं था जिसे वे ठीक समझते थे किन्तु ऐसी बात नहीं है ।

ये सामुदायिक कट्टरपन्थी समस्त संसारवासियों को पुनर्बत मानने वाली इन महान् आरामों के अन्त-करण में विद्यमान प्रेम की असीम बलि को बाँक ही नहीं सकते । वे अपने पिता के वास्तविक देवता थे । उनका अन्त-करण प्रत्येक के लिए असीम सहानुभूति और करुणा से भरा था । वे सब कुछ सहने को और धमा करने को तैयार थे । वे जानते थे कि मानव समाज को कैसे विकसित होना चाहिए और धर्म-पूर्वक जाने-जाने किन्तु निश्चयपूर्वक वे अपने सुधारों को लागू करते । उन्होंने सौभाग्य की भर्त्सना नहीं की उन्हें भयभीत नहीं किया अपितु उन्हें कुम्हार-सुधारक कर एक-एक पग ऊँचा उठने का प्रयास किया ।

उपनिषदों के रचयिता ऐसे ही थे । वे अभी प्रकार जानते थे कि उनके पुन की विकसित नैतिक साम्यताओं के साथ ईश्वर की प्राचीन कल्पनाओं की संघर्ष नहीं बैठ पा रही है । वे यह भी अभी प्रकार समझते थे कि नास्तिकों के प्रचार में बहुत कुछ सत्यता है । किन्तु आज ही वे यह भी समझते थे कि जो मोक्षियों को गुनने वाले मानव के सून को ही ठोड़ जानना चाहते हैं जो केवल दुःख में एक नये समाज की रचना का स्वप्न देख रहे हैं वे पूर्णतः असफल रहेंगे ।

हम कभी बिलकुल नया निर्माण नहीं करते केवल स्वरूप परिवर्तन कर देते हैं । हम कोई बिलकुल नई चीज नहीं पा सकते केवल वस्तुओं अपनी जगह

छोड़ जाती हैं। नीचे ही नीचे-नीचे बुपचाप वृक्ष का रूप धारण कर जाता है। हमें केवल अपनी शक्तियों को सत्योन्मुखी करना चाहिए और पहले से विद्यमान सत्य को पूर्ण बनाना चाहिए न कि नये सत्यों को बढ़ाने की चेष्टा। अतः ईश्वर सम्बन्धी प्राचीन विचारों को अपने काल के लिए व्यर्थ बठाकर उनकी भर्त्सना न करते हुए प्राचीन भारतीय मनीषियों ने उनमें विद्यमान सत्य को उद्घाटित किया। इसी का परिणाम निकला—बैदान्त दर्शन के रूप में। जहाँने कमजोर पुराने बनेक देवताओं के भीतर से, सम्पूर्ण सृष्टि के शासनकर्ता एक ईश्वर के भीतर से अन्त में एक निराकार परब्रह्म के रूप में उच्चतम विचार को खोज निकाला। जहाँने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक ही तन्त्र को व्याप्त देखा।

### सुधार का अर्थ है पुनरुज्जीवन न कि विध्वंस

जो सुधारक मूर्ति-पूजा का विरोध करते हैं उनसे मत कहना है "बन्धुबो! यदि तुम निर्दुर्ग ब्रह्म की किसी बाह्य सहायता के बिना ही उपासना करने में सक्षम हो तो क्यों परम्यु जो ऐसा नहीं कर सकते उनकी निम्ना क्यों करते हो ?

शक्ति प्राचीन का नश्य, सुन्दर एवं विज्ञान भवन उपेक्षा भवना अप्रयोग के कारण एक पिछे-गढ़ी अवस्था में बड़ा है उसके अन्दर-बाह्य सब धोर मर्य बनी हुई है। यह भी हो सकता है कि उसके कुछ भाग बिलकुल बरखायी हो गए हों। तुम ऐसे बदन का क्या करोगे ? क्या तुम आवश्यक साइ-मॉड एवं मरम्मत द्वारा उसका पुनर्निर्माण परम्यु करोगे बबना उसे पूरे भवन की ही मरती पर निराकर उसकी जगह एक नए नमूने का बिलकुल नया भवन बनवाना परम्यु करोगे जबकि अभी इस नमूने के स्थायित्व की परीक्षा होनी योग्य है ? हमें उसका उच्चार करना है इसका संस्था नर्ब इतना ही है कि पूरी नीचे का बिनाश न करके आवश्यक साइ-मॉड एवं मरम्मत द्वारा उसे प्रबाम के योग्य बनाना। सुधारक का कार्य यही समाप्त हो जाता है।

कोई भी सुधारकारी पन्थ—यदि केवल सुधार ही उसका नश्य है तो—सदा सर्वदा जीवित नहीं रहे सकता। केवल उसकी भूम प्रेरणा—रचनात्मक तन्त्र या विज्ञान ही सदा जीवित रहते हैं। सुधार करते समय उनके भावार्थक पक्ष पर ही बाध करना चाहिये और जब भवन निर्माण पूर्ण हो जाय तब निर्माण-कार्य में सहायक बस्थायी हाथों की हटा देना चाहिये।



## हम साथ जियेंगे, साथ मरेंगे

किन्तु इसके विपरीत हमारे देश के सुधारक एक जमा ही पन्थ लड़ा करता चाहते हैं। उन्होंने कुछ बन्धु कार्य भी किया है इसके लिये परमारमा उनका कल्याण करे। किन्तु तुम हिन्दू होकर भी अपनी को पूर्ण समाज सं पूषक करना चाहते हो ? तुम 'हिन्दू' नाम मन में क्यों समझे हो जबकि यह तुम्हें अपने महान् एवं गौरवपूर्ण धरोहर मिली है।

हे मेरे देशवासिन्ना ! हे बभ्रुव-पुत्रो ! तुम्हारा यह राष्ट्रीय बन्धुप्रेम तुम्हीं से सम्पन्न हो रहा है और अपने अनुसूच्य रखों से सम्पूर्ण विश्व का कोष भरता जा रहा है। ईश्वरों आनन्द-अतास्त्रियों से हमारा यह राष्ट्रीय बन्धुप्रेम जीवन-सागर के आर-पार पारकर लगाता रहा है और अशुभित भारतीयों को सांसारिक दुर्घों से दूर, उस पार ले जा चुका है। किन्तु आज चाहे तुम्हारी अपनी हूँ तो चाहे किसी अन्य कारणों से यह बड़ा अतिप्रसन्न हो गया होकर जबकि उसमें एकाक्ष सेर हो गया होकर। वह तुम को इसमें बैठे हुए हो क्या करोगे ? क्या तुम अब अकेले इसे कोसते फिरोगे और आपस में झगड़ोगे ? क्या तुम सब एकता के सूत्र में जुड़कर इसके धर्मों को बन्द करने का यत्न करोगे ? बायो यह करने के लिए हम सब अपना हृदय दे अपना रक्त दें। और यदि हम अपने प्रयत्नों में असफल रहें तो धाम-नाम दुःख नाम और मर नाम—किन्तु अपने जोड़ों पर निम्ना के नहीं आशीर्वाचनों के साथ।

## पुराई का समूल नाश असम्भव

हमारे समाज में अनेकों दोष होंगे किन्तु प्रत्येक बन्धु समाज में भी तो दोष हैं। वहाँ यदि कभी परती निम्नजातों के आनुवंशों से नीम नवी होती तो परिश्रम में वायुमण्डल अविवाहित कन्याओं की आर्षों से भय रहता है। यदि वहाँ पटीवी जीवन का अविनाश है तो वहाँ विनाशिता और सम्वाद ही उनके राष्ट्रीय जीवन को सा रहा है। यहाँ लोग इसलिये आत्महत्या करना चाहते हैं क्योंकि उन्हें जाने की कुछ नहीं मिलता और वहाँ लोग इसलिये अमरब्रह्मा करते हैं क्योंकि उन्हें चाहे-चाहे अजीर्ण हो जाता है।

हाथ सब पनह है ये पुराने पापटोम की तरह हैं। इसे पैर से भगानो तो धर में पहुँच पायेगा वहाँ से भगानो तो कहीं और चला जायेगा। इसको भगाने का अर्थ है एक जगह से दूसरी जगह इसका पीछा करते रहना इसके

बिक्रम कुल नहीं। अठ-बन्धो! दोष स पूर्ण मुक्ति पाने का विचार करना सही  
 स्था नहीं है। हमारा दर्शन महदा है पाप और पुण्य का समाधान साथ है। ब  
 क ही सिक्के के दो पक्ष हैं। यदि तुम एक को सागे ठा दूसरे को भी लना  
 होगा। समु म एक सहर उल्ल का खर्च नहीं दूसरी जगह यज्जा होगा है।  
 ही बीजन के साथ दोष कुड़ा हो है। एक सांस नहीं भी वा सफ़्ती बिना  
 ही की हिवा किये भाजन का एक दास नहीं साथी वा सफ़्ता बिना किसी  
 ने इसस संबंधित किये। यही समाधान नियम है यही दार्शनिक सार्य है।

अतएव हम केवल इतना ही कर सफ़्ठ है कि यह मनी प्रकार समस्त से कि  
 र्छाई के विकट हमारे संघर्ष का वास्तविक स्वरूप वस्तुनिष्ठ की अपधा आत्म  
 गठ अविद्य है। हम चाहे जितनी बड़ी बातें करें, किन्तु कुर्छाई के विकट किये  
 ये प्रत्यक्ष कार्य का लक्ष बाहर नहीं अपितु हमारे भीतर ही है। अठ बहु  
 सैधवात्मक है। यही कुर्छाई का हटाने का वास्तविक अर्थ है। यह विकेक हमारी  
 यथाति को दूर कर देगा और हमारे दुःखग्रह का भी समाप्त कर देगा।

### दुराग्रहपूर्ण सुधारों का परिणाम—सकय-हानि

संसार का इतिहास बताता है कि जहाँ जहाँ ऐसे दुराग्रहपूर्ण सुधारों का  
 प्रयास हुआ उनके एकमेव परिणाम उनके अपने अर्थ की हानि में हुआ।  
 अमेरिका में दास प्रथा को समाप्त करने के लिये जो आन्दोलन हुआ म्याप और  
 स्वतन्त्रता की स्थापना के हेतु उसके भावी आन्दोलन की कल्पना नहीं की जा  
 सकती। आप सब इस बारे में जानते हैं किन्तु उसके परिणाम क्या निकल ?  
 दास-प्रथा उन्मूलन के पूर्व दासों की जो दमा की आज उसके सौमुना लराव है।

दास-प्रथा-उन्मूलन के पूर्व ये बेचारे भीषी शोच किसी न किसी निश्चित  
 व्यक्ति की सम्पत्ति होते थे। उनकी काफी बिन्दा की जाती थी ताकि इस  
 सम्पत्ति की कोई हानि न पहुँचे। किन्तु आज वे किसी की भी सम्पत्ति नहीं हैं।  
 उनके प्राणों का कोई मूल्य नहीं है, जरा-जरा से बहानों को लेकर उन्हें जीवित  
 मृत दिया जाता है। उन्हें बिना किसी कारण मोमी भार दी जाती है किन्तु  
 उनके हृत्पायों के लिये कोई कानून नहीं है। उन्हें मनुष्य ही नहीं समझा जाता  
 यही एक कि पशु की नहीं माना जाता वे केवल जान जाशमी हैं' यह एक  
 विषय है किसी कुर्छाई को कानून या कट्टरवादिता के साथ समाप्त करने का।

भारत में मूलिपूजा का आरम्भ सपुष ईश्वर की कल्पना के विरुद्ध भीषम बुद्ध  
 के सतत प्रहारों की प्रतिबिम्बास्वरूप हुआ। वेद मूलिपूजा से जननिष्ठ है।

किन्तु सृष्टि के नियन्त्रा एवं पामक के स्थान से ईश्वर को हटाने की प्रतिक्रिया स्वल्प महान् बाधाओं एवं बर्ष-प्रवर्षकों की मूर्तियां बनना प्रारम्भ हो गईं और कुछ स्वयं एक मयबान बन बैठे । बाध भी लार्कों यगुप्य उमकी इसी रूप म पूजा करते हैं । सुधार के उप प्रयास सर्वत्र सज्ज सुधार को पीछे डकेलने के कारण है ।

यही इतिहास की सारी है प्रत्येक कट्टरपंथी आन्दोलन के विरुद्ध—जसे ही उसका सरव कस्बाज करना क्यों न रहा हो ।

### जनता में सुधार की चाह कहाँ है ?

इसके साथ ही एक अन्य बात भी विचारणीय है । भारत की जनता को विरासत से प्राप्त आंतरिक शक्ति को प्रकाशित करने का अभी व्यवहार ही नहीं मिला । पश्चिम विपक्ष कुछ अशांखियों से व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की ओर ठेकी से बढ़ रहा है । भारत में उमा ही प्रत्येक बात का निर्णय करता या कुलीनता से लेकर अफमानदय निर्णय तक । किन्तु पारम्पर्य देशों में जनता स्वयं सब कुछ करती है ।

भारतवासियों में आत्मनिर्मिता की भावना तो दूर, अभी आत्मविश्वास भी रचमान नहीं है । आत्मविश्वास जो कि वेदालय का मूलाधार है अभी तक हमारे व्यवहार में लेजमान नहीं आया है ।

अतएव समाज सुधार की संभुं समस्ता यहाँ आकर केन्द्रित हो जाती है । सुधार चाहने वाले लोग कहाँ हैं ? पहले उमका निर्माण करो । यदि धिर ही नहीं तो धिरबरे कहाँ होना ? —अतः जनता कहाँ है इसका विचार करो ।

### हमारा देश गहन तमस में डूबा

सबसे संसार का प्रमथ कर देने अनुभव किया है कि इस देश के नील अन्य देशों की अपेक्षा गहन तमीपुण में डूबे हुए हैं । ऊपर से सृष्टिक (साल्य और संतुलित) अवस्था का मिथ्याभास होता है, किन्तु अन्तर परबर्षों के समाज आमुल अङ्गता एवं निष्क्रियता श्याप्त है । ऐसे लोग संसार में क्या कार्य कर पावेंगे ?

ऐसे निष्क्रिय आलसी एवं इतिवसोमुप लोग संसार में कितने समय और जीवित रह सकेंगे ? पहले पश्चिमी देशों का प्रमथ कीजिये और तब मेरे इन बचनों का अर्थ्य करने का साहस कीजिये । पारम्पर्य लोगों के जीवन में

कितना उच्चम एवं अपने कार्य के प्रति कितना अनुराग है। उनमें कितने उत्साह और रजोगुण की अभिव्यक्ति है। जबकि हमारे देश में सयता है मानों रक्त हृदय में धम धम है और अब वह नरों में वह ही नहीं सकता मानों सम्पूर्ण शरीर को सड़ना मार गया है और वह जड़त्व हो गया है।

### तमोगुण के दमन के लिये रजोगुण आवश्यक

भारत में रजोगुण का प्रायः सर्वत्र अभाव है इसी तरह पश्चिम में सत्य गुण का अभाव है। अतः यह निश्चित है कि भारतवर्ष से सत्यगुण अथवा आत्म्यात्मिकता की प्रथम बाढ़ के ऊपर ही पाश्चात्य प्रवृत्त का सच्चा जीवन निर्भर करेगा और यह भी निश्चित है कि तमोगुण को रजोगुण के उद्रेक से बचाये बिना हमारा ऐहिक कल्याण नहीं होगा। इतना ही नहीं वो परलोक से सम्बन्धित हमारी उदात्त आकांक्षाओं एवं आदर्शों की प्राप्ति के मार्ग में भी अनेक भारी बाधाएँ बढ़ी होंगी।

ईश्वर की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और क्या हो सकता है? इसमें संदेह नहीं कि जनसत्त कल्याण की तुलना में अधिक ऐहिक सुख का कोई मूल्य नहीं है। सतोगुण (पूर्व मानसिक निर्मलता) की अपेक्षा और कीम अधिक महामक्ति है सकता है? वह समस्त सत्य है कि आराम विद्या की तुलना में अन्य समस्त विद्याएँ अधिका मात्र हैं। किन्तु मैं पूछता हूँ— 'इस उद्यम में कितने ऐसे अनुराग हैं जो सत्यगुण पाने का सौभाग्य रखते हैं? इस भारतवर्ष में ही ऐसे कितने अनुपम हैं? कितनों में महान् शौर्य है कि वे 'मे' और 'मेरे' पद की जायता का परिग्रह कर सर्वस्वाहुति दे सकें?'

कितने ऐसे सौभाग्यशाली हैं जिन्हें ज्ञान की वह सूर्यम दृष्टि प्राप्त है जिसके द्वारा वे समस्त सांसारिक सुख तुच्छतम प्रतीत होने लगे? वे जिसका हृदय अनुपम कहां है जो ईश्वर के सौन्दर्य एवं महिमा के ध्यान में निमग्न हों अपने शरीर का भी भ्रम पायें? ऐसे लोग सम्पूर्ण भारत की जनसंख्या की तुलना में कबल मुट्ठी भर होंगे। और क्या केवल इन मुट्ठी भर लोगों का मोक्ष-मार्ग प्रकट करने के लिये भारत के करोड़ों गर-भागियों को वर्तमान सामाजिक और धार्मिक दुर्दशा के जल में पिलने दिया जाय? उनसे इस तरह पिस जाने से क्या कल्याण होगा?

इस किसी कच्चे को ईश्वर का पाठ नहीं सिखा सकते। बल्कि अन्धश्राव आधाधावी होता है। इन्द्रियों में ही उसकी सम्पूर्ण चेतना रहती है। उसका

सम्पूर्ण जीवन ही मार्ग विषयों के मानव्य का पुंज होता है । इसी प्रकार प्रत्येक समाज में कुछ सोप बन्धों के समान होते हैं । उन्हें सांसारिक विषयों की निस्सारणा को समझने के लिये पहले कुछ मानव्य एवं अनुभव बबन्ध मिश्रमा चाहिये । और तब बैराग्य उनमें स्वयमेव ही आ जायगा । हमारे शास्त्रों में उनके लिये पर्याप्त व्यवस्था की गयी थी किन्तु दुर्भाग्य से परबर्ती कालों में प्रत्येक व्यक्ति को उन्हीं नियमों में बांधने की प्रवृत्ति चल पड़ी जो सम्पादितों के लिये बनाये गये थे । यह एक भारी भ्रम हुई । यदि ऐसा न किया गया होता तो भारत में आज जो दुःख-दाख्य दिखायी देता है उसका बहुतांश न दिखायी दिया होता ।

### हमारे पतन का कारण—'तमस'

क्या तुम नहीं देखते कि इस सत्त्वगुण की भाङ में देश बीरे-बीरे तमोगुण के समुद्र में डूब रहा है ? जहाँ महाजबदुद्धि सोग समस्त जनों से बर्ती पराविद्या के प्रति भूछ अनुपाय प्रबलित कर अपनी मूढ़ता को छिपाना चाहते हैं जहाँ जन्म भर मातसी अपनी बकर्मव्यता पर बैराग्य का बाबरव्य झाबना पाहता है जहाँ कूरकर्मों को अपनी कूरता को तपस्या के बोधे में छिपा कर बर्म का अंग गता रहे हैं जहाँ अपनी दुर्बलताओं पर किसी की दृष्टि नहीं है, सब कोई सम्पूर्ण होप बूछरों के मल्ले मड़ने को तैयार है जहाँ बूछरों के विचारों की बूछन को का लेने को ही ज्ञान समझा जाता है और जहाँ पूर्वजों के गौरव मुताबे में ही अपनी माहता समझी जाती है । क्या इसके अतिरिक्त और कोई प्रगाथ चाहिये यह सिद्ध करने के लिये कि यह देश दिलोपित तमोगुण के यहन वर्त में घिरता आ रहा है ?

अतएव पूर्व दुदता बबबा सतोगुण बभी भी हमसे बहुत दूर है । हमने से जो सोग जमी उसके योग्य नहीं हुए हैं किन्तु जो उस परमहंस की स्थिति के मिःकट पठुबने की बाता माःकांसा रखते हैं उनके लिये जमी घोर क्रियाकीमता बबबा रजोगुण की स्थिति को प्राप्त करना ही सामबायक रहेगा । रजोगुण की स्थिति से गुजरे बिना क्या कोई व्यक्ति पूर्ण सात्त्विक अबरणा को कभी पा सकेगा ? हम ईश्वर-सासारकार बबबा योग की माता जैसे कर सकते हैं जब तक कि हमने योग एवं गुण की अपनी दृष्णा को मांत न कर लिया हो ? जब तक इन सांसारिक मुखों के प्रति विराम उत्पन्न नहीं हुआ है तब तक त्याग भाव कहीं से आ सफता है ?

## व्यक्तित्व का विस्मरण एवं आत्मविस्मृति

यह सताब्दी में समाज-सुधार के विषये मान्यमान हुए वे केवल ऊपर दिशावा थे। इन सब सुधारों का सम्बन्ध केवल प्रथम दो वर्गों से था अन्यो से नहीं। विधवा विवाह की समस्या का सम्बन्ध भारत की ७० प्रतिशत नारियों से नहीं है और ऐसे सब प्रश्न भारत के उच्च वर्गों के ही हैं, जो जनसाधारण की बलिष्ठ कर स्वयं मिलित हुए हैं। प्रत्येक प्रपल उनके चरों की सफाई के लिये ही हुआ। किन्तु यह सच्चा सुधार नहीं है। सुधार करने के लिये हमें समस्या की तह में खुलना पड़ेगा बीड़ों की जड़ तक पहुंचना हीगा। इसी को मैं आधुनिक सुधार कहता हूँ। बड़ में अग्नि रख दो और उसे कमस ऊपर की ओर उठने दो तब भारतीय राष्ट्र का रूप निखरती बी। धर्म को शेष देने से कोई काम नहीं। एक मूर्ति के उठने न उठने से बहुत बड़ा फर्क नहीं पड़ता। शेष की पूरी बड़ मही है। 'सच्चा राष्ट्र जो शोषकों में रहता है अपनी मानवता को भुन चुका है अपने व्यक्तित्व का विस्मरण कर चुका है उसे पुन विहित करना है।'

उन्हें विचार देने होंगे। उनकी आँखें खोलनी होंगी और उन्हें विचारना होगा कि उनके चारों ओर दुनिया में क्या हो रहा है। तब वे अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं खोज लेंगे। प्रत्येक राष्ट्र प्रत्येक नर एवं नारी को अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं निर्मात्र करना होगा। उन्हें विचार हो—केवल इतनी ही सहायता वे तुमसे चाहते हैं शेष सब स्वयं पूर्ण हो जायगा। हमारा कार्य केवल विभिन्न रसायनों को एकत्र भा देना है। अपेक्षित परिणाम निकलना प्रकृति के नियमों के अधीन है। हमारा कर्तव्य इतना ही है कि हम उनके मस्तिष्कों में विचार भर दें शेष कार्य वे स्वयं करेंगे। भारत में यही कार्य करना होगा।

तुम्हारा ध्येय वाक्य केवल यह रहे—'बिना उसके धर्म पर आघात पहुंचाने जनसमूह की अन्तर उदरना है।

## शिक्षा का प्रसार ही एकमेव ह्रस

जिस दिन से योरोप में विद्या और संस्कृति आदि का प्रवाह उच्च वर्गों से जन-साधारण की ओर बढ़ा उठी तब से पश्चिम की वर्तमान सभ्यता और भारत जिस रोम आदि की प्राचीन सभ्यताओं में अन्तर प्रारम्भ हो गया।

मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी जनसाधारण में विद्या और बुद्धिमत्ता की वृद्धि के अनुपात में ही प्रगति कर रहा है। भारत के

पठन का भी मुख्य कारण सम्पूर्ण शिक्षा और बुद्धिमत्ता पर मुट्ठी भर अहम्मन्य और राज्यात्म्य प्राप्त व्यक्तियों का एकाधिकार रहा है। यदि हमें उत्पान करना है तो हमें भी नहीं करना होगा धर्मस्य शिक्षा को जनसाधारण में फैलाना होगा।

### शिक्षा से आत्मविद्वान्त

मुसलमानों के साथ कितने सिपाही जावे थे ? कितने अंग्रेज जात्र यहाँ हैं ? भारत के अतिरिक्त और वहाँ ऐसे करोड़ों लोग मिल सकते हैं जो केवल छ. स्वयं के लिए अपने अपने पिता तथा भाइयों का गला काट डालें ? साठ ही वर्ष के मुस्लिम शासन का मर्म छः करोड़ मुसलमान और केवल चौ वर्ष के ईसाई शासन में बीस लाख ईसाई कैसे तैयार हो गये ? भौतिकता ने इस देश का सर्वथा परित्याग क्यों कर दिया है ? हमारे कलाकुशल सिन्धी योरोपियनों के सम्मुख प्रतियोगिता में न टिक पाकर दिनोंदिन क्यों समाप्त होते जा रहे हैं ? कौन सी शक्ति है जिसके द्वारा अर्धन मजदूर अर्धज मजदूर की कई कताधियों से गहरी जमी हुई बड़ों की हिंसाने में समर्थ हो सका ?

शिक्षा शिक्षा केवल शिक्षा चाहिए। योरोप के अनेक नगरों में भ्रमण करते समय जब मैंने वहाँ खिन्न लोगों के भी आराम और शिक्षा को देखा तो मेरी आँखों के समक्ष हमारे अपने खिन्न लोगों का चित्र था बाता था और मैं आंसू बहाने लगता था। यह अन्तर कैसे पड़ा ? मुझे एक ही उत्तर सूझा— शिक्षा के द्वारा। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति में आत्म विश्वास पैदा होता है।

यदि तुम्हारा सभी लैलीस करोड़ शौराधिक देवताओं में तथा उन समस्त देवताओं में, जिन्हें बीच-बीच में विदेशियों ने हमारे अन्तर प्रविष्ट कराया जब विरवास हो, निस्तु अपने पर तबिल भी विरवास न हो तो तुम्हारी मुक्ति सम्भव नहीं। अपने पर विरवास रखो उस विरवास के सहारे बढ़े हो और बलवान बनो। इसी की आज्ञा हम में आशयकता है।

मुझे स्पष्ट विधाई दे रहा है कि जल्दी ही हमारे देश में किमाभीनता और दारमनिर्भरता की लहर अबस्य आयेगी। इसके अतिरिक्त कोई बाध भी तो नहीं। शानी मनुष्य जानी तीन युगों तक का दुःख साफ़ देख सकता है। यी रामदुःख देश के आदिमजि के समय से प्राची का लिखित पूर्व की प्रायःकालीन किरणों से उद्भासित होने लगा है और भीघ्र ही सम्पूर्ण देश मध्याह्नकालीन सूर्य के प्रखर तेज से देखीप्यमान हो उठेगा इसमें शक्येह नहीं।

## ‘पुनरुद्धार’ कार्य में रत कार्यकर्तियों से

भारत फिर बँध्या, किन्तु केवल सारौरिक शक्ति से नहीं अपितु आत्मा से बल से विप्लव की शक्ति के नीचे नहीं तो धार्मिक और स्नेह के उच्च स्तर को लेकर भी बँध्याही के बंध का प्रतीक है।

अपने आन्तरिक वैचल्य का आह्वान करो जो तुम्हें सुख-व्यास सभी-वर्षीं सहने की शक्ति प्रदान करेगा। मौन-विनाशयुक्त घरों में रहना, जीवन के समस्त दुखों से विरत रहना और एक सुख अविच्छिन्न धर्म को पकड़े रहना अन्य देशों के लिए जैसे ही उपयुक्त ही किन्तु भारत के पास सच्ची बेतका है। यह उद्भव बुद्धि है ही बौद्ध को यह मान लेता है। तुम्हें इसे त्यागना होगा। महान् बनो। स्वयं के बिना कोई भी महान् कार्य होता सम्भव नहीं।

अपने सुखों की, आनन्दों की अपने मर की, प्रतिष्ठा की यहाँ तक कि अपने प्राणों की भी बाहुल्य बढ़ा दो और मानव आत्माओं का ऐसा क्षुब्ध बांध दो जिस पर हीकर न करोड़ों नर-नारी भवतापर को पार कर जाय। ‘सत्य’ की अन्तत कठिनाइयों को एकत्र करो। यह चिन्ता मत करो कि तुम किस प्रकार के नीचे चल रहे हो। यह भी चिन्ता मत करो कि तुम्हारा बर्तन क्या है—सात हूय या नीला। बसिक सब बनों को मिटा दो और स्नेह के प्रतीक रक्षित रंज का प्रसार तब प्रथम करो। हम केवल धर्म करें। परिश्रम अपनी चिन्ता स्वयं करें।

मैं अतिशय प्रसन्न हूँ न मैं इसके लिए चिन्तित ही हूँ। किन्तु एक युग में आने बिलकुल स्पष्ट है कि हमारी प्राचीन आत्माएँ एक बार जग बनी हैं। यह नवमीवक प्राप्त कर लूँगे तो कहीं अधिक जग्य हीनित के धार अपने विज्ञान नर बँधी हुई हैं। समस्त संसार को सम्मिलित और मयसकय वाली है उच्चका प्रवेश मुलाओ।



## सच्चे सुधारक के तीन अनिवार्य लक्षण

यदि तुम सच्चे सुधारक होना चाहते हो तो तुम में तीन बातें होना आवश्यक है। उनमें प्रथम है—'सहाय्यवृत्ति'।

### प्रथम हृदय से अनुमत्त करो

सर्वप्रथम हृदय से अनुमत्त करो। तर्क या बुद्धि में क्या पण है? यह कुछ दूर तक जाती है और वहीं रुक जाती है। किन्तु हृदय के द्वारा प्रेरणा मिलती है। हृदय का ही सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। हृदय के द्वारा ही मरदान का साक्षात्कार होता है न कि बुद्धि के द्वारा। बुद्धि तो सिर्फ सड़क की सफाई करने वाले के समान है। वह हमारा रास्ता साफ करती है। पुनिसमैत के समान उसका भीय स्थान है। वह समाज के कार्य सम्पादन के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। पुनिसमैत का कार्य केवल उपद्रवों को रोकना और नियमोत्सर्जन के प्रवालों का दमन करना मात्र है। और हम इतने ही कार्य की अपेक्षा बुद्धि से भी कर सकते हैं। बुद्धि अन्धी होती है, वह स्वयं चल नहीं सकती। उसके ग हाथ होते हैं न पैर। वस्तुतः जाचना ही कार्य करती है। वह विद्युत् या किसी भी अन्य चीज की अपेक्षा अर्धस्य युना टेज मति से चलती है। अतः "तुम अनुमत्त करते हो या नहीं? —यह मुख्य प्रश्न है।

बुद्धि भी आवश्यक है क्योंकि उसके बिना हम मछों में गिर जायेंगे और माछी गलतियाँ कर बैठेंगे। बुद्धि उमठे बधाती है किन्तु उससे जाने बढ़कर वह अपने आपार पर कोई चीज सझी नहीं कर सकती। उससे केवल किनाहीन और भीय सहामता मिल सकती है। वास्तविक सहायता तो भावना या प्रेम से ही मिलती है।

### प्रेम से असम्भव भी सम्भव

प्रेम असम्भव को सम्भव कर देता है। अमृत के सब रसुवों का द्वार प्रेम ही है। अतः मेरे माछी सुधारकों मेरे माछी वैजमल्लों हृदय से अनुमत्त करो। क्या तुम अनुमत्त करते हो? देख और खदियों के कठोड़ों बसत पगुतुस्य बन गए हैं। क्या तुम अनुमत्त करते हो कि कठोड़ों देववासी आज भूकों पर रहे हैं? और कठोड़ों भुपों से पूछे मरते आ रहे हैं? क्या तुम अनुमत्त करते हो कि देव पर अज्ञान के कासे बाबत छाप हुए हैं? क्या इस सजने तुम्हें बेचैन कर

दिया है ? क्या इसने तुम्हारी भाँखों से नींद छीन ली है ? क्या यह बेबना तुम्हारे रक्त में भिन्नकर तुम्हारी बसंतियों में पशुत्व मनी है तुम्हारे हृदय की बड़बुद के साथ एकत्र हो चुकी है ? क्या इसने तुम्हें समझा बिसिप्य कर डाला है ? क्या सपनापन की इस ब्यथा ने तुम्हें पूरी तरह झगकोर डाला है ? क्या तुम अपने नाम अपने मद्य अपनी पत्नी अपने बच्चों अपनी बन-सम्पत्ति महाँ तक कि अपने शरीर की भी भुला चुके हो ?

### गहरी सहानुभूति ही प्रमुक्त आवल्यकता

नदीकी बीर बजान में सदा स डूब हुए उन बीस करोड़ गर-भारियों की बेबना की अनुभव ही कौन करता है ? व यह भी मूल पए है कि व मनुष्य है और नदी का बरिषाम है मुसानी । कुछ बिचारधीन लोगों ने बिषय कुछ बरों म इस बात को समझ लिया है । किन्तु दुर्भाग्य से उन्होंने उलका बाप हिन्दू धर्म के मन्त्रे मड़ दिया है । उनकी दृष्टि में इस स्थिति को मुधारने का एक ही मार्ग है कि संसार के इस सर्वमेष्ठ धर्म को कुचल डाला जाय । मेरे मित्रो मेरी बात सुनो । ईश्वर की कृपा से मुझे इसका रहस्य पता चल गया है । धर्म इस के लिए बिषकूल होयी नहीं है ।

इसके बिपरीत तुम्हारा धर्म तुम्हें बतलाता है कि सब बीर तुम्हारी आत्मा का ही बिस्तार हो रहा है किन्तु इस तत्व के ब्यावहारिक प्रयोग की कमी है । सहानुभूति का बमान है, इतल का नहीं । भयवान एक बार पुन कुछ का रूप बारम कर बाने बीर उन्होंने सिखाया कि सहानुभूति क्या होती है बरिष दु-बी बीर बारी के प्रति करपा क्या होती है ? किन्तु तुमने उनकी बात भी नहीं सुनी ।

संसार का कोई धर्म हिन्दू-धर्म के समान मनुष्य की महानता का इतने ढुँबि लब्धों में प्रतिपादन नहीं करता । किन्तु संसार में कोई धर्म नहीं है जो पटीकों बीर दुखियों की गर्बनों को इतनी बुरी तरह कुचलता भी हो बिचना कि हिन्दू धर्म । परमात्मा ने मुझे सिखा दिया है कि धर्म का कोई दोष नहीं है । किन्तु यह हिन्दू-धर्म के ठेकेदार बीर पुरोहित हैं जो पारमार्थिक बीर ब्यावहारिकता के सिद्धान्तों की बाढ़ में अत्याचार के नय-नये पयायों का बाबिष्कार करते हैं ।

### बिचिस्तक की माबना में सेवा करो

इतल व होना याद रखना कि भयवान् पीठा में बड़ मये हैं—

धर्मब्यावहारिकतासे धा कनेपु करपावन । (पीठा २. ७)

कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है उसके फल में नहीं। कमर कटो। प्रभु ने मुझे इसी कार्य के लिए बुलाया है। सम्पूर्ण जीवन में मुझे मापदाओं और कष्टों के मध्य से गुजरना पड़ा है। मैंने प्रायःप्रिय जातीयों को तगमग निरपहार मारते देखा है। मेरा उपहास उड़ाया गया है मृत पर अधिकार किया गया है और जिन्होंने मेरी हंसी-मजाक बनाया उन्हीं के प्रति सहायुभूति रखने का बन्ध मुझे भोगना पड़ा है। मित्रो यह वही महा-कष्टों का आमार पुस्त्रों और धर्म प्रवर्तकों के लिए तिरामय स्वरूप है जिसमें सहायुभूति सहिष्णुता और इन सबसे बढ़कर उस अदृश्य बृहद् इच्छाशक्ति का विकास होता है जिसके बल पर मनुष्य सारा जगत् चूर चूर हो जाने पर भी अपने स्वान्त से विचलित नहीं होता।

मुझे इन उपहास करने वालों पर दया आती है। किन्तु यह उनका दोष नहीं है। वे अपनी बन्धे हैं निरे बन्धे—यद्यपि समाज में वे बड़े गण्यमान्य समझे जाते हैं। उनकी आँखें अपने दुष्प्र स्वार्थों के संकुचित घेरे से परे कुछ देख ही नहीं पाती। खाना पीना वैसे क्रमाना और सम्मान उत्पन्न करना यही केवल उनके नियमित कार्य हैं जो पड़ी की सुई के समान वे नियमित रूप से पूरे करते रहते हैं। वे बेचारे अल्प-संख्योपी दुष्प्र जीव इसके सिवा और कुछ देख ही नहीं पाते। उनकी नीब कभी टूटती ही नहीं।

सैकड़ों सतायित्वों के दमन के फलस्वरूप भारतीय बाहुमध्यम में व्याप्त कुल दारिद्र्य और पतन की कातर कराहें उन्हें हासकोर म पायी और उनके जीवन को कल्पना-लोक से बाहर साने में भी समर्थ न हा सकी। उन्होंने कभी उन युवों में झाका ही नहीं जिनके मानसिक नैतिक और शारीरिक बल्यार्थों ने ईश्वर की प्रतिमास्त्री मनुष्य को भारबाहक पशु बना डाला है जिन्होंने माँ भयवती की प्रतिमाकपिनी गायी को केवलमात्र बन्धे पैदा करते वाली वाली में बदल डाला है यहाँ तक कि सम्पूर्ण जीवन को ही अविज्ञाप बना डाला है। क्या तुम इस निश्चेतम जनसमूह में—जिसकी समस्त नैतिक आकांक्षायें मर चुकी हैं—जिसके समस्त मावी स्वप्न मिट चुके हैं और जो अपना मसा बाहने वालों पर भी हमला करने को सदैव तैयार है—प्राण फूँक सकोये? क्या तुम उस डाक्टर की स्थिति में रह सकोये जो एक ठोकर मारने वाले बाले और मासी देने वाले बन्धे के मन में भी दबा उतारने के लिये प्रयत्नशील हो?

आपान में मैंने सुना कि बर्हा की सड़कियों का यह विश्वास है कि यदि दुर्कियों को भी पूरे हृदय से प्रेम किया जाय तो उनमें भी प्रायः जा जाते हैं। इसीलिये

जापानी सङ्घियों कभी अपनी युद्धियों को नहीं छोड़तीं। महानाम्यबागी ! मेरा भी यही विश्वास है कि यदि कोई भारत की अमठा का—जो समृद्धि की कृपा से बंचित तथा ऐश्वर्य से हीन है जिसका विवेक भ्रष्ट हो चुका है जिसकी स्वयं प्रेरणा मर चुकी है जो पद-बसिठ, भुली, मगझाम् और ईर्ष्यासु है—जिस जनता को हृदय से स्नेह करेगा तो यह देश पुनः उठ सड़ा होगा। भारत दाबारा कभी उठ सकेगा जब सैकड़ों विद्यालय हृदय युद्ध-युद्धियों मुक्तोपनीय की समस्त नायनाओं को तिलाञ्जलि दे अपने करोड़ों देशवासियों के जो पीरे पीरे बलिदान और अज्ञान के महान गर्भ में पिल्ले जा रहे हैं कल्याण के हेतु अपनी पूरी शक्तियों सबाने का संकल्प लेंगे।

### क्या तुमने उपाय सोचा ?

क्या तुम महासमृद्धि के भाव से नरे हो ? यदि हो तो यह कल्प प्रथम पथ है। अथवा प्रश्न है कि क्या तुम्हें रोम की कोई औपनि भी भिन्न लगी है ? पुराने विचारों को तुम अन्धविश्वास मने ही समझो किन्तु अन्धविश्वासों के इसी दर में सत्य के स्वर्णकण भी छिपे हैं। क्या तुमने ऐसा कोई उपाय सोचा है जिसके द्वारा निस्कार-दल को त्याग कर इन स्वर्णकणों की रक्षा की जा सके ?

### छुड़ हेतु एवं अवस्य इच्छा शक्ति

अपनी शक्तियों को केवल निरर्थक चर्चा में लार्न करने के बजाय क्या तुमने कोई मार्ग अथवा व्यावहारिक हल सोचा ? निम्ना के बरत सहायता का कोई कार्य हुआ ? उनकी पीड़ा में सहजाने के लिये उन्हें इस भीषित नरक से बाहर निकालने के लिये अनाय कुछ मञ्जुर लय ?

यदि तुमने यह सन कर लिया तो यह कैवल्य भूषण पथ होगा। इसके अतिरिक्त एक और बात भी आवश्यक है तुम्हारी कर्म प्रेरणा का मूम क्या है ? क्या तुम्हें पूर्ण निश्चय है कि तुम्हारी प्रेरणा का मूम जन-नोमुपता या प्रसिद्धि और सत्ता-नोमुपता नहीं है ?

केवल दलता ही पर्याप्त नहीं है। क्या तुममें हिमात्मक जैसी भाषाओं को पार करने वाली दुर्ग इच्छा-शक्ति है ? यदि सम्पूर्ण अथवा तुम्हारे विरुद्ध तलवार मञ्जुर लगी हो जाय तब भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो उसे पुरा करने का साहस करोगे ? यदि तुम्हारे स्त्री-मुञ्ज ही तुम्हारे प्रतिद्वन्द्व हो जाय यदि तुम्हारा सर्वस्य बना जाय यदि तुम्हारा नाम मिट जाय तब भी क्या तुम इस कार्य में

मने रहोगे ? फिर भी क्या तुम अपने पप पर बड़े रहोगे अपने सदय की ओर  
भीरतापूर्वक बढ़ते रहोगे ? और वैसे कि राजा भृगुहरि ने कहा है—

निम्बस्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुबन्धु ।  
नक्ष्मी समाविशतु पशुस्तु वा यथेष्टम् ॥  
मर्दान्त वा मरणस्तु युगान्तरे वा ।  
स्याप्यप्रपण प्रविशन्मिति परं न बीरः ॥  
(भृगुहरि नीतिशतक)

“मनीषी सोय चाहे निम्बा करे चाहे स्तुति नक्ष्मी रहे वा नक्षी जाय आज  
ही मृत्युही या सी बर्ष पश्चात् भीर पुख्य स्याय के पप से विचलित नहीं होते ।  
क्या तुममें यह दृढ़ता है ?

**ध्येय के प्रति पूर्ण समर्पण का संकल्प करो**

यदि तुममें वे तीनों चीजें हैं तो तुममें से प्रत्येक ज्योतिषिक कार्य कर सकता  
है । फिर तुमको समाचारपत्रों में निम्बने की आवश्यकता नहीं तुमको व्याख्यान  
देते फिरने की आवश्यकता नहीं । तुम्हारे नेहरे पर एक अपूर्व कामा बिराजेयी ।  
यदि तुम पर्यटन-कम्पराओं में रहो तब भी तुम्हारे विचार पर्यट की बट्टानों को  
छोड़कर बाहुर निकलेंगे और सैकड़ों बर्ष तक समग्र संसार में भ्रमण करते रहेंगे—  
तब तक जब तक कि किसी मस्तिष्क में जाग्रत न पा सें और उसके द्वारा कार्यान्वित न  
हो जाय । यह है सामर्थ्य विचार-कृति, प्रामाणिकता और शुद्ध ध्येयवाकित्वा का ।

यह एक बिन का कार्य नहीं है । यह मार्ग जल्पत हीन्य कीटों से भर है ।  
किन्तु स्वयं पार्य-सारथि (इच्छ) हमारे सारथि बनने को तैयार हैं । हम जानते  
हैं कि उनमें बहुत थड़ा के सहारे हम भारत की धाती पर बुलों से एकत्र भाषणों  
के पहाड़ में आम लगाने में समर्थ होंगे और वह मरमीभूत होकर रहेगा ।  
पार्य-सारथि के मन्दिर में जाओ । उसके सम्मुख मस्तक नवाबों को गोकुल  
के हीन-हीन स्वार्थों का सखा वा जो गृह व वाञ्छित का आनिगन करने में कभी  
नहीं क्षिप्तका जिसने अपने बुद्धावधार में बुनीयों का निमन्त्रण कुरकार एक  
वेस्था का निमन्त्रण स्वीकार किया और उस पतिता का उद्धार किया । बरे ।  
अपने मस्तकों को उसने सामने मुकाबो और बढ़ा बलिदान करो । अपना सम्पूर्ण  
जीवन उनके सिधे बलिदान कर दो जिनके सिधे ही वह समय-समय पर बबतार  
पारण करता है जिस गरीबों वसिठों हीनों को वह सबसे अधिक प्यार करता  
है । तब संकल्प करो अपने सम्पूर्ण जीवन को इन तीस कीटि भारतवासियों के

पुनरुत्थान के महा-यज्ञ में भाग लेने का जो दिनोदित पञ्च के गर्त में जा रहे हैं।

### धर्या

मठ बनाने ! माओ और इस समस्या की ओर दिखाओ । यह फिटना बड़ा प्रयास होया और हम उसकी तुलना में बिठने तुम्ह ! किन्तु हम ब्रह्मा के पुत्र हैं और ईश्वर की सन्तान । ईश्वर की कृपा से हम अक्षय सफल होंगे । इस संपर्क में संकड़ों परासामी होंगे किन्तु संकड़ों ही उनकी बगल लेने को तैयार भी रहेंगे । मैं नहीं मल ही असफल रह कर मर जाऊँ किन्तु कीई दूषण मेरा कार्य पूरा करेगा । तुम बीमारी को जान चुके हो तुम उसका इलाज भी जानते हो । केवल आत्मविश्वास रखो । हम उपासक अमीरों और प्रतिष्ठितों की ओर मन दिखाओ इन हृदयहीन बुद्धिवादी लक्षकों की विन्ता मंत्र कपे न उनके श्राप अक्षवाप में प्रकाशित हृदययुग्म नेत्रों की परब्राह्मण करो । आत्मविश्वास और सहानुभूति ! प्रबल आत्मविश्वास एवं तीव्र सहानुभूति !! यही तुम्हारा एकमात्र सम्पन्न है । विश्वास ! विश्वास !! विश्वास !!! अपने में विश्वास ईश्वर में विश्वास—यस यही महानता का मूल मंत्र है ।

### नधिकेता की धर्या तुम में प्रविष्ट हो

विश्वकी स्वयं पर विश्वास यही यही गान्धिक है । तुम में स दिन लोगों ने समस्त अपनियरों में बलि मुन्दर कटोपनिपत् का अक्षयन किया है उन्हें स्वल्प हीमा कि किस प्रकार उस यज्ञा ने एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान किया था किन्तु इतिहास में छोट-छोट कर यह ऐसी बूझी यावों एवं बोझों को दे रहा था जो किसी काम के नहीं रहे मधे व । [कदा के अनुसार उसके पुत्र नधिकेता को पिता का यह कृत्य नहीं पया । उसने पिता से पूछा "बाप मुझे किसे देने ?" बार-बार ऐसा पूछने पर पिता ने मुसता कर उत्तर दिया, "मैं तुझे यम को दूँगा । --सं०] उक्त प्रश्न में यह भी निश्चय है कि उस समय धर्या ने उसके पुत्र नधिकेता के अन्तःकरण में प्रवेश किया । अब हम देखें कि उसने (धर्या ने) किस प्रकार कार्य किया क्योंकि उसके प्रवेश के पुसने ही समय हम नधिकेता को स्वयं व कह रहे हुए मुनते हैं

बहुनामेनि प्रथमी बहुनामेनि मध्यमः ।

कि स्थितिमस्य कस्य धर्म मन्मयाद्य करिष्यति ॥ (कट० उ० १ १ ३)

अर्थ बनेकों से खेच हूँ थोड़े मुझसे भी खेच है किन्तु मैं किसी भी प्रकार सब से हीन नहीं हूँ । अतः मैं कुछ न कुछ कर सकता हूँ ।

उसका यह आत्मविश्वास बढ़ता गया और जो समस्या उसके मन में थी उस बालक ने उसे हल करना चाहा । वह समस्या भी मृत्यु की । इस समस्या का हल केवल मृत्यु के जरूरी आकर ही प्राप्त हो सकता था अतः वह बालक वहीं गया । वहाँ उस निर्भीक बालक मच्छिका ने मृत्यु के द्वार पर तीन दिन प्रतीक्षा की और तुम जानते ही हो कि किस प्रकार उसने अपनी असीमित वस्तु प्राप्त की ।

इसी मन्त्र को तुम सब प्राप्त कर लो । पश्चिमी जातियों के द्वारा नीतिक  
 | सत्ता का जो कुछ प्रकटीकरण तुम्हें दिखायी दे रहा है वह इस मन्त्र का  
 | ही परिणाम है क्योंकि उन्हें अपनी कर्म-शक्ति पर विश्वास है । फिर, यदि  
 | तुम भी अपनी आध्यात्मिक शक्ति पर आस्था रखो तो उससे भी कितना ही  
 \* अधिक कार्य कर सकते हो ।

यही मन्त्र है जो मैं चाहता हूँ और हम सब उन्हीं के अर्थात् आत्मविश्वास के भूखे हैं । उस मन्त्र को प्राप्त करना ही तुम्हारे सामने बड़ा कार्य है । प्रत्येक नीति का उपहास उड़ाने की-बम्भीरता के भारी अभाव की इस मयानक बीमारों के अंशुम से बचो जो हमारे राष्ट्रीय मोक्ष में बुराई का रथी है । इसको त्याग दो । और बनो मन्त्र-सम्पन्न बनो । अन्य सब बातें इनके पीछे-पीछे अपने आप चली आयेंगी ।

## बैराग्य परम आवश्यक गुण

काम में लग जाओ । तब तुम अपने अन्दर इतनी प्रचण्ड शक्ति का आगरण पाओगे कि उसे बाहर करना भी तुम्हें कठिन जान पड़ेगा । अन्तों के लिये किये गये अत्यन्त कार्य से भी आन्तरिक शक्तियों का बाहरण होता है । यहाँ तक कि अन्तों के प्रति शुभ चिन्तन से भी सनै-सने हृदय में सिंह की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है ।

आवश्यक वस्तु है बैराग्य । बैराग्य के बिना कोई भी अपने सम्पूर्ण अन्त करण को परीक्षण में नहीं उठेस सकता । विराही मनुष्य ही सबको समान दृष्टि से देखता है और सबकी सेवा में अपने को लगा सकता है ।

## सेवा से ही मुक्ति

अतः बैराग्य धारण करो । तुम्हारे पूर्वजों ने महान् कार्य करने के लिये संसार को त्याग दिया था । वर्तमानकाल में भी ऐसे लोग हैं जो अपनी व्यक्ति

मठ मुक्ति के लिए संसार से बिरस्त हो जाते हैं। सब बातों को त्याग दो यहाँ तक कि अपनी मुक्ति का विचार भी त्याग दो और दूसरों की सहायता करो।

कुछ समय के लिये बन्ध सब देवताओं को अपनी दृष्टि से छोड़कर दो। वस यही एक देवता हमारा अपना समाज बहनित्र हमारे बाँलों के समस्त प्रत्यक्ष है। सर्वत्र उसका हाथ है। सर्वत्र उसके पैर, और सब ओर उसका कान। वह सब ओर व्याप्त है। समस्त भी कि बन्ध सब देवता सो रहे हैं। उन बन्ध देवताओं के पीछे तो हम बीड़े किन्तु इस देवता की इस बिराट पुरुष की जिसे हम अपने चारों ओर देख रहे हैं क्यों न पूजा करें? जब हम इसकी पूजा कर लेंगे तभी हम बन्ध देवताओं की पूजा करने से शोष्य होंगे।

मुक्त नहीं है जिसे अपना सब कुछ दूसरों के लिए त्याग दिया। किन्तु जो बिल रात मेरी मुक्ति मेरी मुक्ति का राय बसापने में ही अपन मस्तिष्क को लपक करत है वे अपने वर्तमान और भावी कल्याण का नाश कर बन्ध ही इतर-इतर मटकते रहत है।

साब आवश्यकता है चित्तगुडि की अन्त-करण की निर्ममता की। किन्तु वह कैसे हो? सबसे पहले उस बिराट की पूजा करो जो हमारे चारों ओर विद्यमान है। उस की पूजा करो। वे सब हमारे देवता हैं—केवल मनुष्य ही नहीं सो पशु भी। इनमें भी सबसे पहले पूजा करो अपने देवतासियों की।

### हमें चाहिये त्यागी और समाजसेवी लोग

माछ के राष्ट्रीय आदर्श हैं—सेवा और त्याग। इन्हीं मार्गों से उनकी भावनाओं को तीव्र करो वेप सब अपने आप ठीक ही जायगा। इस देश में आध्यात्मिकता का माहात्म्य चाहे जितना यात्रो वह कम ही है। इसी में मुक्ति निहित है।

मैं चाहता हूँ लौह पंथिवा और इस्पात के स्नायु जिनके भीतर उसी धातु का बना मानस रहता है जिनका बन्ध बनाया जाता है। शक्ति पीरप धातु कीर्त बहूतव। हमारे मुन्बर एवं होमहार मुबकों के पास ये सब चीजें हैं—परि केवल उन्हें उस कूला की बेबी पर—जिसे वे बिबाह कहते हैं—बसि न किन्ना बाप। हे भयवान मेरी पुकार सुनो!

कुप को इतसे (बिबाह है) बचा रहने दो। उन्हें केवल ईतर के लिये बीने दो ताकि वे बुनिया के लिये बर्न ही रखा कर सकें। राजा जनक के वीसा होने का होय मठ करो जब कि तुम केवल सपनों के जनक हो। (जनक



शब्द का अर्थ है 'निर्माता' और यह नाम एक राजा का वा जिसने केवल प्रजापालन के हेतु राज्य प्रहस्य किया था और सब आसक्तियों को त्याग दिया था। ईमानदार बनो और कहो "मुझे आदर्श दिखानी तो पड़ता है किन्तु अभी मैं इसके निकट नहीं पहुंच सकता। किन्तु यदि तुम बिराधी नहीं हो तब उसका दिखावा मत करो। यदि तुमने वैराग्य धारण किया है तो बुद्धतापूर्वक ब्रटे रहो। यदि लड़ाई में सेकड़ों मिर बुके हों तब भी पताका को धाम तो और उसे लेकर आये बढ़ो। ईश्वर सबका सखी है। चिन्ता मत करो कौन गिरता है। जो गिरने लगे वह पताका को केवल दूसरे हाथों में बमा दे तब यह कमी नहीं मिर पायेगी।

—एक साल नर और नारी—पवित्रता की अग्नि में तपे हुए, भगवान् में अट् विश्वास से सम्पन्न और दीनों बसिठों तथा पतिठों के प्रति सहानुभूति में सि नत् साहस से युक्त—सम्पूर्ण देश के एक कोने से दूसरे कोने तक मुनिठ का सन्ने सेवा का सन्नेब सामाजिक उत्थान का सन्नेब समता का सन्नेब कैवर्त्तने।

भगवान् के सेवक बनकर कर्मक्षेत्र में उतरने

बार बार हमारा देश पठन के गर्त में गिरा है और बार-बार भगवान् ने जबतार लेकर उसका पुनरुद्धार किया है।

मृतक कभी बापस नहीं आते बीती हुई रात बोबाध नहीं आती गुजरती हुई प्यार की लहर फिर-फिर नहीं उठती न ही मनुष्य उसी बेह को पुनरपि पाता है। अतः ओ मनुष्य ! हम तुम्हें मृत अर्थात् की उपासना से हटाकर जीवित वर्तमान की पूजा के सिधे आर्माभित कर रहे हैं। बीती बातों का रोना रोने की अपेक्षा हम तुम्हें वर्तमान की यतिविधियों में भगने का आह्वान कर रहे हैं। भूसी-बिसरी एवं अन्न पगबंधियों की खोज में कार्य बलिष्ठ गप्ट करने के बजाय हम तुम्हें पुकार रहे हैं। नवनिर्मित बिलास पथ पर चलने के लिए, जो कि तुम्हारे सम्मुख फैसा हुआ है। जो बुद्धिमान है वह इस बात को समझ ले।

जिस विषय बलिष्ठ के प्रथम स्वर्ण से ही सम्पूर्ण विश्व में सब और महातरंगे उठने लगी हैं उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति की जरा अपने मस्तिष्क में कस्याबमयी कल्पना करो और बुबा सन्नेह दुर्बसता और बाधजाति-मुलन ईर्ष्या-श्रेय का परिष्पाम कर, इस महाकुल चक्र प्रवर्तन में सहायक बनो।

—हृदय में यह प्रथम धारणा लेकर कि तुम परमात्मा के भूत हो, उसकी आत्मान हो उसके उद्देश्यों की पूर्ति में निमित्त मात्र हो कर्मक्षेत्र में कूट पडो।

## पुनरुत्थान का कार्य-१

### नीच-निर्माणा

जो हमारी समग्र जाति के लक्षिकर्ता और रक्षक हैं, जो हमारे पूर्वजों के उत्पात्य हैं, जाहूँ उन्हें विष्णु कहें या शिव या शक्ति या मन्वन्ति से कोई भी हों सपुत्र या विपुत्र साकार या निराकार, जिन्हें हमारे पूर्व-पुरुषों ने 'एक सद्भिन्ना बहुधा ब्रह्मिन्' मन्त्रवचन में जाना और पुकारा, वे अपना अमर प्रेम लेकर हमारे अन्दर प्रवेश करें—हमारे ऊपर अपने गुनाहीबंद की बर्षा करें, ताकि उनकी कृपा से हम एक दूसरे को समझ सकें वह हमें एक दूसरे के लिये सच्चे स्नेह सत्य के लिए तीव्र प्रेम से साथ कार्य करने की प्रेरणा दें और भारत की साम्प्रदायिक उप्रति से लिए किये जाने वाले इस महाकार्य के अन्दर हमारे व्यक्तियुक्त मर, व्यक्तियुक्त स्वार्थ अथवा व्यक्तियुक्त वीरव की अनुमान जाकांता को भी प्रवेश न करने दें ।

हम अन्य देशों को भी देखें, परलैं

प्राचीन काल में हमारे देश में साम्प्रदायिक भाव की अत्यधिक उप्रति हुई थी । हम आज उसी प्राचीन पीरव सामा को स्मरण करें । किन्तु सुदूर अतीत की महानता का अतिशय चिन्तन करने में यारी सतत यह है कि कहीं हम नवीन बापों के लिए प्रयास करना बन्द न कर दें और केवल अपने प्राचीन पीरव के स्मरण-कीर्तन में ही सन्तोष मानकर अपने को सर्वदेष्ट न समझने लयें । इस ऊपर से हमें सावधान रहना होगा ।

भारत के लिये अपने अन्तःकरण में अगाध प्रेम लेकर अपनी समस्त शक्ति और पूर्वजों के प्रति अगाध भक्ति के रहते हुए भी मैं अपना यह विचार

कदापि नहीं खान सकता कि अन्य राष्ट्रों से हमें बहुत कुछ सीखना है। हमें उनके परकों में बैठ कर बिना ग्रहण करने के सिधे हर समय तत्पर रहना चाहिये, क्योंकि ध्यान रखो कि हर कोई हमें महान् बिधा दे सकता है। किन्तु चाप ही यह भी न भूलना चाहिये कि संसार को हम भी कोई महान् बिधा दे सकते हैं।

भारत से बाहर के देशों से सम्बन्ध छोड़े बिना हमारा कार्य नहीं चल सकता। इसके विपरीत विचार रखना हमारी मूर्खता की और उड़ी के बन्ध-स्वरूप हमें हजार वर्षों तक पायता भोगनी पड़े। भारतीय मस्तिष्क के वर्तमान पथन का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि न तो हमने बिदेशों में जाकर अपनी चीजों की उनसे तुलना की और न ही हमने संसार के अन्य देशों की बतिबिबियों का अध्ययन किया। उसकी मयेष्ट सजा हमें मिला चुकी। बत अब आने उस भूल को हम न दुहराये।

“भारतीय को भारत के बाहर कहीं नहीं जाना चाहिए” — इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण विचार निरे बचकाने हैं। उनकी घटा-सर्वदा के लिए कपात-भिया कर दो। जितना व्यक्ति तुम भारत के बाहर अन्यान्य देशों में चुमोने उतना ही तुम्हारे और तुम्हारे देश के सिधे हितकर हीया। यदि तुमने बिगत सैकड़ों वर्षों में भी यह किया हीता तो तुम जान भारत पर साधन करने के इच्छुक मत्येक राष्ट्र के चरकों पर मिजने की स्थिति में बिबायी न बेटे।

**बिम्बा रहना है तो बिस्तार करो**

जीवन का पहला और स्पष्ट लक्षण है बिस्तार। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो तुम्हें फैसना ही हीया। जिस क्षण तुम जीवन का बिस्तार बन्द कर दोगे उही क्षण जान लेना कि मृत्यु से तुम्हें बेर सिधा बिपत्तियां तुम्हारे सामने हैं। मैं योरप और अमेरिका गया था। मुझे वहाँ जाना पड़ा क्योंकि राष्ट्रीय जीवन के मुख कामरस का यही ही लक्षण है—बिस्तार। इस पुनर्जाय तित राष्ट्रीय जीवन की आन्तरिक बिस्तार भावना ने ही मुझे बुर बहाँ केंर किया और सहस्रों अन्य उही कार्य पर केंर जायेंबे। मेरे लक्ष्यों को ध्यान से चुनो। यदि वह राष्ट्र बौड़ा की जीवित है तो यह डौकर रहेगा। बतएक वह बिस्तार हमारे राष्ट्रीय जीवन के पुनर्रथान का सर्व प्रथम लक्षण है और इसी बिस्तार के साथ-साथ मानव ज्ञान की समष्टिपठ पृथी में तथा समय विश्व के उन्नत कार्य में हमारा जो योगदान होना चाहिये वह भी बाहरी विश्व में पट्टच रहा है।

और यह कोई तथा काम नहीं है। आप लोगों में से जिनकी यह चारपा हो कि हिन्दू अपने देश की चहारदीवारी के भीतर ही फिर काम से पड़े रहे हैं वे भारी भूल कर रहे हैं। इसका अर्थ है कि तुमने अपना प्राचीन राष्ट्र मग नहीं पड़ा है। तुमने अपने जातीय इतिहास का ठीक-ठीक अध्ययन नहीं किया है।

### जीवन बान करोगे, तो जीवन बान पाओगे

हरेक राष्ट्र को अपने अस्तित्व-रसा के लिये दूसरों को कुछ देना ही होता। तुम जीवन बाने ली पाओगे भी। दूसरों से पाओगे तो उसके मूल्य स्वयं बच्य समी की देना भी होगा। हम सहस्रों वर्षों से जीवित हैं यह एक ऐसा तथ्य है जिसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते और जो एक बुरा प्रश्न बनकर हमारी और निहारते लगता है। इसका एक मात्र उत्तर यही है कि हम सदैव बाहरी दुनिया को उपहार देते रहे हैं। मूल में ही बाह्य जो चीजें किन्तु भारत में सदैव बर्न बर्नन ज्ञान और आध्यात्मिकता का ही उपहार दिया है।

अस्तु हमें भारत के बाहर जाना ही होता और अपनी आध्यात्मिकता के बदले में वा कुछ उनके पास देने योग्य है उसे ग्रहण करना होगा। आप्त्य समय के चमत्कारों के बदल हम उनके भौतिक जगत के चमत्कारों का विनिमय करेंगे। हम सदैव उनके विपक्ष ही नहीं बने रहेंगे अपितु कुछ भी बनेंगे। हम जान के समाज में कभी मिश्रता नहीं ही सचठी वहाँ समाजता नहीं रहे सचठी वहाँ एक पक्ष सदैव विपक्ष बना रहे और दूसरा सर्वत्र उसके चरनों में बैठे। यदि तुम अरब और अमेरिकन जाति के समान स्तर पर पहुँचना चाहते हो तो तुम्हें उनसे शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ उन्हें कुछ सिखाना भी होगा। अब भी बाबाजी बनेक अत्राभिर्यो तक संसार की सिखाने पापक तुम्हारे पास बहुत कुछ है।

### हमें पश्चिम से बहुत कुछ सीखना है

यदि हम ऊपर उठना चाहते हैं तो हमें पार रक्षना होगा कि हमें पश्चिम में बनेक बातें सीखनी हैं। पाश्चात्य देशों से हमें उनके विषय और विज्ञान सीखने होंगे।

अब वह आध्यात्मिकता ही ऐसी चीज है जो तुम्हें संसार को सिखानी है। आप्त्य दूसरी जातियों से हमें भौतिक ज्ञान, संपन्न कला विभिन्न अस्तित्वों के उपयोग की कला संपन्न व्यक्तियों तथा छोड़े पल में अधिक साज प्राप्त करने का तन्त्र जारि बातें ग्रहण करनी होंगी।

## अनुकरण ही सम्पत्ता नहीं है

दूसरे का अनुकरण करना सम्पत्ता या उन्नति का सस्रण नहीं है । वह एक दूसरा पाठ है जो हमें सदैव स्मरण रखना चाहिये । यदि मैं स्वयं को राजा की पोशाक में सजा लूँ तो क्या मैं इतने से ही राजा बन जाऊँगा ? सिंह की चारा भोजकर पखा कभी सिंह नहीं हो सकता । कामरुद्रापूर्व अनुकरण कभी उन्नति का कारण नहीं बन सकता । यह मिश्रण ही मनुष्य के और अन्न-पतन का सस्रण है । जब मनुष्य स्वयं से ही भुगा करने लगता है तब समझना चाहिये कि मृत्यु उसके द्वार पर आ पहुँची है ।

## हिन्दू होने का गर्व करो

- \* जब कोई मनुष्य अपने पूर्वजों के बारे में ही लज्जित होने लगे तब समझ लो कि उसका अन्त आ गया । मैं यद्यपि हिन्दू जाति का एक नवम्य बटक हूँ किन्तु मुझे अपनी जाति पर गर्व है अपने पूर्वजों पर गर्व है । मैं स्वयं को हिन्दू कहने में गर्व का अनुभव करता हूँ । मुझे गर्व है कि मैं आप लोगों का एक पृच्छ सेवक हूँ । तुम ऋषियों की सन्तान हो तुम्हारा बेलबासी कहमाने में मैं अपना गौरव मानता हूँ । उन महनीय ऋषियों के वंशज \* हो जो संसार में अद्वितीय रहे हैं ।

## अन्यों से जो लें उसे अपने सचि में ढाल लें

मठएक आर्यविश्ववासी बनी । अपने पूर्वजों पर गर्व करो उनके नाम से लज्जित मत होओ और अनुकरण मत करो मत करो । जब कभी तुम दूसरे की प्रभुता स्वीकार करोये तभी तुम अपनी स्वाधीनता खो बैठोगे । यहाँ तक कि आध्यात्मिक क्षेत्र में भी यदि तुम केवल दूसरों के आदेशानुसार चलोगे तो धीरे धीरे तुम्हारी समस्त प्रतिभा—चिन्तनप्रतिभा भी समाप्त हो जायगी । अपने पुरुषार्थ से अपनी आन्तरिक शक्तियों को विकसित करो । किन्तु अनुकरण मत करो । हाँ दूसरों के पास अगर कुछ खोटा है तो उसे ग्रहण कर लो । औरों के पास से भी हमें कुछ सीखना ही है ।

बीज को भस्मी में बोओ और उसे पर्याप्त मिट्टी हवा तथा जल पोषण के निम्ने पुटा दो । किन्तु जब वह बीज पोषा बनता है एक विकास बृक्ष में परिणत हो जाता है तो क्या वह मिट्टी बन जाता है हवा बनता है जल का रूप

धारण कर लेता है ? नहीं वह बीज मिटटी जस आदि को भी पदार्थ उरक  
 चारों ओर से उनसे अपना पोषण रस खींचकर अपनी प्रकृति के अनुसार एक  
 विधात बूझ का रूप धारण कर लेता है । यही तुम्हारा भावार्थ रहना चाहिये ।

सब जगह से अच्छी बात लो

सधमूक । हमें मर्मों से बनेक बातें सीखनी हैं । और, जो सीखना नहीं  
 चाहता, वह तो पहले ही मर चुका । महर्षि अनु ने जोपना की थी —

आइवीत वरं विद्यां प्रयत्नात्पररादि ।

अभ्यासवि परं धर्मं स्त्रीरुत्तं कुण्डुभासवि ॥ (मनुस्म० ५, २१८)

अज्ञापूर्वक मीच से भी अच्छी विद्या को आच्छात से भी परम धर्म को  
 और मीच कुम से भी स्त्रीरुत्त को ग्रहण कर ।

अतः औरों के पास जो कुछ अच्छा पामो अबस्य सीखो । किन्तु उसे इस  
 प्रकार लो कि वह तुम्हारी प्रकृति के अनुसार बन जाये । कहीं तुम ही पदार्थ न  
 बन बैठो । स्वयं को इस भारतीय जीवनधारा से बाहर पठ निकलने दो । एक  
 क्षण के लिए भी यह मत सोचो कि कितना अच्छा होता यदि सब भारतीय किमी  
 अन्य जाति के समान काठे-पीठे और बेश भूया धारण करते ।

भारतीय जीवन-धारा को अक्षय्य बहने दो

कुछ वर्षों में बनी भारत की छोड़ने में कितनी कठिनाई होती है वह तुम  
 नहीं-जाति जानते हो । भयवान ही जानते होंगे कि कितने अतसह्य बर्षों से  
 वह विशिष्ट राष्ट्रीय जीवन-धारा तुम्हारे रक्त में एक विशेष दिशा की ओर  
 बह रही है । इन से परमपिता ही जस सन्देह है कि तुम्हारे जन्म के अन्दर  
 कितने हजार बर्षों से ये संस्कार जमे हुए हैं और क्या तुम यह कहना चाहोगे  
 कि भागीरथी की यह प्रचण्ड धारा को अपने यन्त्रण समुद्र के लतभय निकट पहुँच  
 चुकी है अब इन हिमालय में अपने आदि कोश द्विमसिखरों पर बाधित या  
 बड़ेनी ? यह असम्भव है । ऐसा करने का प्रयास करोगे तो यह धारा लज्जित  
 हो जायेगी ।

अतएव इस राष्ट्रीय जीवन-धारा को पूर्णवत् बहने दो । इस शक्तिमान  
 धारा की प्रगति में बाधक अवरोधों को हटाओ उसका पथ प्रसन्न करो और  
 एक अपनी स्वाभाविक पति से यह जाने बड़ेनी । तभी यह राष्ट्र अपनी नर्वा-  
 चीन प्रगति करके हुए अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ेगा ।

हम भारतवासी बहुत परिमाण में विदेशी आबापत्र हो गये हैं। वे विदेश काज हमारे राष्ट्रीय धर्म के धीबन-रख को चूसे जात रहे हैं। हम आज इतने पिछड़े हुए क्यों हैं? क्यों हममें से निम्नाने प्रतिवृत्त लोग पूर्णतया विदेशी बिनापों और भावों से भरे हुए हैं? इन्हें हमें कौन ही होया यदि हम संसार के अन्य राष्ट्रों की दृष्टि में ऊँचे उठना चाहते हैं।

### किसी का दोष नहीं, अपने कर्मों को दोष दो

मित्रो! मैं आपको कुछ खरी-खारी बातें भी सुनाना चाहता हूँ। मैं समाचारपत्रों में पढ़ता हूँ कि क्या कभी कोई अंग्रेज हमारे किसी स्वदेशवासी को मार डालता है अथवा उसके साथ दुर्व्यवहार करता है तब सम्पूर्ण देश में हो-हुस्ता मच जाता है। मैं यह पढ़ता हूँ तो रोता हूँ। किन्तु दूसरे ही क्षण मेरे अस्तिष्ठक में प्रश्न उठता है कि आखिर इस सबके लिये जिम्मेदार कौन है? चूँकि मैं बेबाली हूँ अतः मैं अपने से यह प्रश्न पूछे बिना नहीं रह सकता। हिन्दू सत्ता से आत्म-निरीक्षणकारी रहा है। यह सब चीजों को अपने में ब अपने द्वारा ही देखना चाहता है। अतएव मैं अपने से पूछा करता हूँ कि इसके लिए उत्तरदायी कौन है? और प्रत्येक बार एक ही उत्तर आता है अंग्रेज नहीं है। नहीं वे इसके लिये क्यापि उत्तरदायी नहीं हैं। अपनी इस समस्त दुर्बलता के लिये इस अवनति के लिये हम स्वयं ही उत्तरदायी हैं। हमारे विषय इसके लिये कोई अन्य बोधी नहीं है।

बेबालिक होने के नाते हम यह निश्चयपूर्वक जानते हैं कि अगर पहले हम ही अपने को हानि न पहुँचावें तो संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं जो हमें हानि पहुँचा सके। भारत की एत पञ्चगोत्र जनसंख्या मुसममान बन गई। एत ताब से अविश्व व्यक्ति ईसाई हो गये। यह किसकी भ्रम है? प्रश्न यह है कि इन लोगों के लिये भिन्नोक्ति अपना धर्म त्याग दिया हमने दिया ही क्या था? वे मुसलमान बने ही क्यों?

अब हम इन धर्मप्रवृत्त के लिये आसू बहा रहे हैं किन्तु उनके लिये हमने पहले क्या किया था? हमने से प्रत्येक को यह प्रश्न अपने से पूछना चाहिये। हमने क्या सीखा? क्या हमने समय की मत्ताप अपने हाथों में ली, और यदि भी तो उसके प्रकाश में हम किठनी दूर आगे गये? तब हमने जलही सहायता क्यों नहीं की थी? यही प्रश्न है जो हमें स्वयं से पूछना चाहिये। हमने ऐसा नहीं किया यह हमारी भ्रम थी हमारा अपना कर्म था। अत किसी को दोष न दें, बल्कि अपने कर्मों को ही दोष दें।

## दुर्बल शरीर को ही रोग सताते हैं

जड़बाद अपना हज़ारोंबार इन्फ़ार्मिटी या संसार का अर्थ्य कोई भी बाद यहाँ करायि सफल नहीं हो सकता था यदि तुम स्वयं उसके लिये दरबाना न पाते होते । कोई कीटाणु मानव-शरीर पर तब तक आक्रमण नहीं कर सकता जब तक कि वह शरीर ही पापकर्मों द्वारा आहार-विहार एवं अभावों आदि के कारण दुर्बल और पतित न हो गया हो । स्वस्थ मनुष्य का सब तरह के विषैल कीटाणुओं के बीच में रहने पर भी बात-बाँफ़ नहीं हो सकता ।

हम जानते हैं कि किसी बीमारी के पैमाने के वा कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विषैले कीटाणुओं का प्रवेश दूसरा शरीर की अवस्था विषय । जब तक शरीर ही ऐसी अवस्था में नहीं पहुँच चुका है कि कीटाणुओं का प्रवेश प्रथम सुगम हो जाय जबका जब तक शरीर की जीवनी शक्ति इतनी क्षीय नहीं हो चुकी है कि कीटाणु शरीर में घुसकर पकड़े-बढ़ते रहें तब तक संसार के किसी कीटाणु में इतना सामर्थ्य नहीं कि वह शरीर में कोई राग पैदा कर सक । वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के शरीर के भीतर लाखों कीटाणुओं का सतत आवागमन चलता रहता है किन्तु जब तक शरीर बलवान है उस उपाय पता भी नहीं चलता । जब शरीर कमजोर हो जाता है तभी य विषैल कीटाणु उस पर अपना अधिकार बना लेते हैं और उस रोपी बना देते हैं । विमकुल ऐसा ही राष्ट्रीय-जीवन के साथ भी होता है ।

जब कभी राष्ट्रीय जीवन दुर्बल हो जाता है, तभी सभी प्रकार के रोग बीमारी उस राष्ट्र के शरीर में घुस जाते हैं और उसके राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक अवस्था शैक्षिक जीवन को रण्य बना देते हैं । अतएव उसकी विद्विस्ता के लिए हमें इस बीमारी को जड़ तक पकड़ना चाहिये और रण्य को समस्त अनुकूलताओं से मुक्त करना चाहिये । इसका एकमेव मार्ग यही होगा कि मनुष्य को बलवान बनाने उसके रण्य को मुक्त करें और शरीर को पुष्ट करें ताकि वह सफल बाह्य विपत्तियों का प्रतिरोध कर उन्हें पराजित कर सकें ।

बन्धुवो ! हमें यह जानकर सज्जित होना चाहिये कि वे अविश्वसनीय बालक बिक्रम दोष विपत्तियों के कारण विदेशी आतियों द्वारा राष्ट्र से अनुचित साथ उठा कर ही हथोली अपनी ही देते हैं । भारत में विदेशी आतियों के मरने अनेक बूबा सोझों को आरोग्य करने में हम ही कारण बने हैं ।



## यह हास्यास्पद स्थिति

इस किठनी हास्यास्पद स्थिति को प्राप्त हो गये हैं ? यदि कोई भंगी, भंगी के रूप में ही किसी के पास जाता है तो उसे जोग के समान बुतकारा जाता है । किन्तु जब कोई पादरी कुछ मन्त्र पढ़कर उसके घिर पर कोई जल छिड़ककर उसका भ्रम परिवर्तन कर लेता है और उसे एक कोट पहना देता है चाहे वह कितना ही फटा हो और तब यदि वह बड़े से बड़े कर्मकाण्डी हिन्दू के कमरे में प्रवेश करे तो मुझे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं दिखाई देता जो उसे तुरन्त बैठने के लिए कुर्सी न दे और तपाक से उससे हाथ न मिलाए । इससे बड़ी बिहम्यना और क्या ही सकती है ?

अप्य पतन की विषय छद्म-साठ कृताभिव्यो का स्मरण करो जब कि संकटों सयाने व्यक्ति बर्षों तक केवल इस विषय पर बहुस करते रह गये कि वे पानी का पिमास चाहिने हाथ से पिमें जपका बावें हाथ से हाथों को तीन बार मांजें जपका बार बार ।

## यह यौद्धिक सङ्गता !

जिनके मस्तिष्क की प्रभृति ऐसी छोटी-छोटी बाठो में परेमान रहने की है कि घंटी दाहिनी ओर बने या बायीं ओर, जन्मन मस्तक पर लगाया जाय या अन्य कहीं धारती से बार उठारी जाय या तीन बार—उन्हें केवल 'वृन्ति' संज्ञा से ही पुकारा जा सकता है । जिनके मस्तिष्कों में इस मूर्खता के अतिरिक्त अन्य किसी चीज का प्रवेश ही नहीं हो सकता उन्हें केवल 'अङ्गुलि' ही कहा जा सकता है । इन भ्रान्त बाराणासीका ही फस हुआ कि भाग्य ने हमारा साथ छोड़ दिया हमें ठोकरें लगायी और इस पर सूका जब कि पाश्चात्य लोग संसार के स्वामी बन बैठे ।

## मौलिकता, सेजस्विता एवं कर्मण्यता का अभाव

ऐस लोगों से जो इन लौकिक प्रश्नों पर तर्क-वितर्क करने में ही अपना सम्पूर्ण जीवन गुजार दें और जो उन पर अति-वास्तव्यपूर्ण बर्षों की रचना कर जायें तुम क्या अपेक्षा कर सकते हो ?

“यदि एक जानू बैसन से छू जाय तो सृष्टि के प्रलय होने में कितना समय और रह जायगा ? यदि कोई हाथों की बारह बार मिट्टी से न मांजें तो उस

के पूर्वजों की बीबू पीड़ियां नरक में जायेंगी या बीबीस ? ऐसे प्रश्नों के वैज्ञानिक उत्तरों की सोचने में ही मैं लोग बिगत दो हजार वर्षों में मटकत रहे हैं जब कि एक बीबाई जनसंख्या दूखों मरती रही है ।

एक माछ वर्ष की कन्या का विवाह तीस वर्ष के प्रौढ़ के साथ कर दिया जाता है और उस कन्या के माता पिता इस पर लुमी मनाते हैं । यदि कोई इसका विरोध करता है तो ठक दिया जाता है कि 'ऐसा न करने से हमारा धर्म उलट जाता । बाविर उनका यह धर्म है किस् तरह का कि वे बय प्राप्त होने के पूर्व ही अपनी कन्या को माता बमते हुए बलना बच्छा समझते हैं और इसके लिए अनेक कारण प्रस्तुत करते हैं ? कई लोग इन बातों का बोध भी मुसलमानों के मत्ते माहता चाहते हैं । क्या सबमूख उन्हें दाय देना उचित है ?

हमारे धर्म के लिए मय यही है कि वह सब बूस्ते में मुसना चाहता है । हममें से अधिकांस मनुष्य इस समय म ही बेदान्तिक हैं म पौरुषिक और म तान्त्रिक । हम केवल 'मठ छुओ-बाणी' रहे गए हैं । हमारा धर्म बूस्ते में मुस गया है । 'मात की हाणी' ह्यारा ईस्वर है और धर्म है । हमें मठ छुओ हम पन्ध्र हैं । यदि यह भाव एक ब्रह्मणी तक और बसता रहे गया तो हममें से हरैक का स्वाम पाबलबाने में होगा ।

जब मस्तिष्क जीवन की उच्चतर समस्याओं का विचार करने में असमर्थ हो बाय तक समझना चाहिए कि वह उसकी बुद्धतता का सञ्जन है उसकी मौलिकता पुर्यंत गण हो चुकी है मस्तिष्क बिलकुल यतिहीन हो गया है उसकी पठिहीनता चिन्तनमालि गष्ट हो चुकी है और फिर वह छोटी से छोटी चीषा के भीतर ही बन्दर लपाने की कोशिश करता है ।

### कड़िवादी अर्थविदबास और मूतन लडवाब से बची

हमें एक विषय स्थिति में से अपना धार्य निकालना है । यदि एक ओर प्राचीन कड़िवादी बन्धविस्वातों की गडरी छाई है ता दूसरी ओर योरोपीयता अपत्ति बड़बाब का महुरा दुर्भा है----- ।

मात्र हमें एक ओर वह मनुष्य दिखता है जो पारम्भात्य ज्ञान-रूपी मद्रिउ-पान से उगमल होकर अपने की सर्वज्ञ समझता है । वह प्राचीन ऋषियों की हनी उगाना करता है । उसके लिए हिन्दुओं के सब विचार बिलकुल माहिमात थीर हैं हिन्दू दर्शनमास्त्र बन्धों की बोनी है, और हिन्दू धर्म मूखों का दुर्भस्कार बाब है ।

दूसरी ओर एक बहू आरमी है जो स्थिभ्रत तो है, पर एक प्रकार से विभ्रत मस्तिष्क है। वह विस्तृत भ्रम धरा पर चलता है। हर एक छोटी सी बात का धार्मिक अर्थ निकालने का प्रयत्न करता है। अपनी विविष्ट प्राति या देव देवियों या गाँव से सम्बन्ध रखने वाले जितने अल्पविश्वास हैं उनके लिये उसके पास दार्शनिक व्याख्यात्मक तथा बच्चों को सुझाने वाले अर्थ सर्वदा ही मौजूद हैं। उनके लिए प्रत्येक ग्राम्य अल्पविश्वास वेदों की भाँसा है, और इसकी समझ में उन्हें कार्यक्रम में परिवर्तन करने पर ही राष्ट्रीय जीवन निर्भर है। तुम्हें इन लोगों से बचना चाहिए।

जो मस्तिष्क थोड़ा एव उदात्त विचारों को धारक नहीं कर सकता जो अपनी मौलिक विचार-मति को जो चुका है जिसका पीछा नष्ट हो चुका है तथा जो मस्तिष्क धर्म के नाम पर सब प्रकार के झूठे अंधविश्वासों द्वारा स्वयं को विपाक करता रहता है उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

### दुबलता के लक्षण

असकारिता एवं अल्पविश्वास ये सदा दुबलता के ही चिह्न होते हैं। वे अवनति और मृत्यु के चिह्न हैं। अतएव उनसे बचे रहो। बनवान बना और अपने पैरों पर खड़े हो। इस संसार में अनेक महान् वस्तुएँ हैं जो मति आश्चर्यजनक हैं। प्रकृति के बारे में हमारा जो सीमित ज्ञान है उसकी तुलना में हम उन्हें असामान्य मने ही कहें किन्तु उनमें से कोई भी असकार नहीं है।

इस भारत भूमि पर यह उपदेश कभी नहीं दिया गया कि धर्म विषयक सत्य असकार जगत की वस्तुएँ हैं अथवा यह कि हिनात्म की बर्फीली थोटियों पर बैठने वाली किन्हीं गुप्त समितियों का उन पर एकाधिकार है।

### अंधविश्वास दूर करो

ये गुप्त समितियाँ कहीं भी नहीं हैं। इन अंधविश्वासों के पीछे मत दौड़ो। तुम्हारे अपने हीर अपनी प्राति के लिये उत्तम होगा कि और मस्तिष्क धर्म आजी क्याकि कम से कम उससे तुम्हारा कुछ तो बस बना रहेगा किन्तु इस प्रकार अल्पविश्वासपूर्ण होना अवनति तथा मृत्यु को ही निमंत्रण है। मानव प्राति को विश्कार है कि सतेज मस्तिष्क धर्म मनुष्य इन अल्पविश्वासों पर धपना समय गवा रहे हैं। दुनिया के सड़े से सड़े अल्पविश्वासों की रूपक व्याख्याओं का

सावधान करने में ही समय नष्ट करते रहे हैं। साहसी बनो, हरेक विषय की दूसरी प्रकार व्याख्या करने की चेष्टा मत करो।

वास्तविकता यह है कि हमारे पास बहुतेरे अन्धविश्वासी हैं। हमारी देह पर बहुत से बाध तथा हानिकारक छोड़े हैं—इनको काटकर, चीरफाड़ कर एकदम निकाल देना होगा, नष्ट कर देना होगा पर इनके नष्ट होने से हमारा धर्म हमारा राष्ट्रीय जीवन, हमारी आध्यात्मिकता नष्ट नहीं होगी बल्कि इससे हमारे धर्म के मूल तत्व अटूट रहेंगे। और शिवजी जल्दी से काफ़े दाग निकाले जायेंगे तबनी ही बलिक बगमवाहट के साथ ये मूल तत्व बचचूँगे रहेंगे। इन्हीं पर धटे रही।

### शारीरिक दुर्बलता

हमारे उपनिषद् कितने ही बड़े बड़ों न हों, अम्याम्य बातियों की तुलना में हमारे पूर्व-मुख्य ऋषिपितृ कितने ही बड़े बड़ों न हों मैं आपसे स्पष्ट भाषा में कह देता हूँ कि हम दुर्बल हैं अल्पतः दुर्बल हैं। सबसे पहली दुर्बलता है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुर्बलों का कारण है। हम जानकी हैं, हम कार्य नहीं कर सकते।

सर्वप्रथम हमारे मुखकों को बसबाल बगता जागा। धर्म पीछे धावेगा। है मेरे नवमुखक अश्रुगत तुम बसबाल बनो—यही तुम्हारे सिंगे मेरा उपदेश है। पीठा-माठ करने की अपेक्षा तुम फुटबाल खेलने से स्वर्ग के अधिक धनीप पशुंधीमे। मेरे ये अर्थ तुम्हें अल्पते जयेंगे किन्तु इनको कहना अल्पाधरमक या कारण में तुमको प्यार करता हूँ।

### सशक्त शरीर से ही 'गीता' समझ सकोगे

अभिष्ट स्नायुओं एवं सशक्त भुजाओं के द्वारा ही तुम पीठा को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ठेकसी रक्त होने पर तुम धीकृष्ण की महाम् कति और प्रथिमा को अधिक अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हें अपने पीछय का भान होवा, उस समय तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा को मनीजाति मयज्ञान।

हम बहुत ही बालें लोले के समान बोलते वो हैं पर तबनुबार आचरम नहीं करते। अपनी बयनी को करनी में परिष्क न करना हमारी बाध ही गई है। इसका कारण क्या है? शारीरिक बीर्बल ही इसका प्रमुख कारण है। इस प्रकार

का पूर्वस मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता हमें अपने मस्तिष्क को बसवाने बसाना होगा ।

हमें जून में तेजी और स्नायुओं में बल की आवश्यकता है—तोड़े की मुबार्रों और फौलाद के स्नायु चाहिये न कि दुर्बलता घाने वाले निरर्थक विचार ।

### घर में और, बाहर पीवड़

इसके विना हमारे भीतर एक और बड़ा दोष है । वास्तविक बात यह है कि सदियों से मुसामी करते-करते हमारी जाति स्त्रीवत् बन गई है । इस देश में वा अन्य किसी देश में कहीं भी तुम स्त्रियों को केवल पांच मिण्ट के लिये भी बिना क्षणिका किये एकत्र नहीं देख पाओगे । योरोपीय देशों में स्त्रियां बहुत बड़ी बड़ी सभा समितियां स्थापित करती हैं और अपनी जाति की बड़ी-बड़ी धोपचार्यें करती हैं । इसके बाव में आपस में क्षणिका करने लज आती है । इसी समय कोई पुरुष बीच में सूझ पड़ता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है । घारे संसार में उन पर प्रभुत्व करने के लिए किसी न किसी पुरुष का रहना आवश्यक दिखाई देता है ।

हमारी भी ठीक वही हालत है । हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं । यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चमती है, तो सब मिसकर उसकी मुक्ताचीनी घुस कर देती हैं उसकी चिन्मी उड़ाने मागती हैं और बल में उसे नेतृत्व से हटा कर ही बम लेती हैं । किन्तु यदि कोई पुरुष आता है और उसके साथ जल कड़ा-बधा व्यवहार करता है और बीच-बीच में डांट-फटकार सुनता रहता है, तो वे ठीक रहती हैं । वे इसी प्रकार की मोहनी किमा की मन्मस्त हो गयी हैं ।

ठीक इसी तरह यदि हममें से कोई बैलवासी बड़ा होता है और महान् बनने की चेष्टा करता है तो हम सब उसकी टांग खींचने की कोशिश करते हैं । किन्तु यदि कोई विदेशी आता है और हमें ठोकर लगाता है, तो हम ठीक रहते हैं । हम इसके अन्मस्त हो गब हैं । क्या यह सच नहीं है ?

### परस्पर ईर्ष्या

हम एक साथ मिल नहीं सकते हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते हम बड़े स्वार्थी हैं हम तीन मनुष्य भी एक दूसरे से बुधा या ईर्ष्या किये बिना एकत्र नहीं रह सकते ।

हाथ ! सधियों की ओर ईर्ष्या हाथ हम समाप्त करे हुए हैं—हम क्या एक दूसरे से असुमा करते हैं। क्यों असुमा व्यक्ति को मुझसे अपमान किया गया ? क्यों हम असुमा से बड़े न हो सके ? हमारी सर्वथा यही चिन्ता बनी रहती है। यहाँ तक कि ईश्वर की पूजा में भी हम अपमान पाने के लिये सासायित रहते हैं। दासता की इस निम्न स्थिति में हम पहुंच गये हैं।

### ईर्ष्या नहीं सम्भाव्य चाहिये

इस बुनासब सुपुत्रवृत्ति को त्याग दो कुत्तों की तरह परस्पर झगड़ना एक दूसरे पर भीकना बन्द कर दो। गुण उद्देश्य सही साधन एवं साधक साहस के अविच्छान पर बड़े होओ और और बनो।

सर्वप्रथम हमें ईर्ष्यानु वृत्ति के इस धम्मे को जिते प्रकृति सर्वैव गुणार्थों के सत्य पर अक्रिय कर देती है, मिटा देना होगा। क्रिती से ईर्ष्या मत करो। सत्कार्य में रत प्रत्येक कार्यकर्ता का हाथ बटाने को तत्पर रहो। तीनों सौकों में प्रत्येक प्राणी के लिये सम्भाव्य रहो।

### संगठित उद्यम का सबसे बड़ा शत्रु—ईर्ष्या

प्रत्येक व्यक्ति एवं प्रत्येक राष्ट्र को महान् बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं —

- (१) सत्त्ववृत्ति की शक्ति पर अभिग यथा।
- (२) अविस्वाह और ईर्ष्या से मुक्ति।
- (३) सत्त्ववृत्त एवं सत्कार्य में रत व्यक्तियों के प्रति सहयोग का भाव।

बाहिर मह हिन्दू राष्ट्र अपने अद्भुत बुद्धिबल एवं अन्य गुणों के कारण ! इस भी अष्ट अविष्ट क्यों हुआ ? मैरा उत्तर एक ही है—ईर्ष्या के कारण ! इस समायी हिन्दू जाति के समान संसार में कहीं भी लोगों में एक दूसरे के प्रति इतनी बुनासब ईर्ष्या नहीं रही कहीं भी लोग एक दूसरे के यत्न और प्रतिष्ठान के प्रति इतने ईर्ष्यानु नहीं रहे। और यदि कभी तुम्हें पश्चिम यात्रा का अवसर मिला तो गुन पाश्चात्य देशों में हम सुपुत्रवृत्ति का सर्वथा अभाव अनुभव करते थे।

भारत में तीन व्यक्ति पाँच मिनट के लिए भी आपस में मिसकर कार्य नहीं कर सकते। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति सत्ता के लिए संघर्ष करता है जिसके परिणाम स्वरूप कामाक्षर में सम्पूर्ण संगठन सकट में पड़ जाता है।

## शक्ति का रहस्य एकता और संगठन में निहित है

मुझे अचर्चबिह संख्या की एक श्रृंखला याद आ गयी, जो सदा प्यास में रखने योग्य है । उसमें कहा गया है—

सर्ववत्सर्वं सर्ववत्सर्वं सं वो मनासि जानताम् ।

वैशा तार्थं यथा पूर्वं सञ्जालानामुपाहते ॥

(अचर्चबिह प्रथम काण्ड)

कि "तुम सब तोय एक मन हो जाओ, सब सोय एक ही विचार के बन जाओ क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण ही देवताओं ने हमिर्जान पाया । देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गये कि वे एकचित्त थे । एक मन हो जाना ही समाज के यत्न का रहस्य है ।

इसका क्या फलरूप है जबका वह कीर्तनी यस्तु है, जिसके द्वारा कुछ पार करोड़ अंग्रेज पूरे तीस करोड़ भारतीयवासियों पर शासन करते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में मनोविज्ञान क्या कहता है ? यही कि वे चारों करोड़ मनुष्य अपनी-अपनी इच्छा शक्ति को एकत्र कर बैठे अर्थात् शक्ति का अगस्त्य जगहार बना सेते हैं और तुम तीस करोड़ मनुष्य अपनी-अपनी इच्छाओं को एक दूसरे से टूटक क्रिये रहते हो । यह नहीं इसका रहस्य है कि वे कम होकर भी तुम्हारे ऊपर शासन करते हैं ।

• अतएव यदि भारत की महान् बनना है, इसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है तो इसके लिए आवश्यकता है संयत्न करने की और बिकरी हुई इच्छा-शक्तियों को एकत्र करने की ।

यदि तुम 'आर्य' और 'अरिष्ट' 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर तु-तु मैं-मैं करते रहोगे—सगड़े और पारस्परिक विरोध भाव को बढ़ाओगे—तो तपस्य सो कि तुम जल शक्ति-संग्रह से दूर रहते गये जाओगे जिसके द्वारा भारत का भविष्य बटित होने वाला है । इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य सम्पूर्ण-जसी पर निर्भर करता है । यह इच्छाशक्ति को कैम्ब्रीकृत और शतदुखी शक्तियों को एकदुखी करने में ही साधन रहस्य छिपा हुआ है ।

## धर्म के आधार पर निर्माण

किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएं अधिक बटिम और सुष्ठर हैं । जगगत भेद धर्म भाषा साधन—ये ही एक साथ मिलकर राष्ट्र की वृद्धि करते हैं ।

हमारी एक मात्र सम्मिलन-भूमि हमारी पुष्प परम्परा बर्षात् हमारा धर्म है। एकमात्र बहिष्कार नहीं है, और उही पर हमें राष्ट्र का संयोजन करना होगा। योरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का आधार है।

भारत के बहिष्कृत संयोजन की पहली गति के तौर पर उसकी धार्मिक एकता ही आवश्यकता है। देश भर में एक ही धर्म सबको स्वीकार करना होगा। एक ही धर्म से भेद क्या बतलव है? उस धर्म में एक धर्म नहीं जिस धर्म में ईसाइयों मुसलमानों या बौद्धों में एक धर्म की कल्पना की जाती है।

## जीवनदायी समान सिद्धान्तों पर ही धारणा करें

हम जानते हैं हमारे विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हों उनमें कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायों द्वारा स्वीकृत हैं। अस्तु, हमारे सम्प्रदायों में कुछ ऐसे साधारण सिद्धान्त आवश्यक हैं जिनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में बहुमूल विविधता के सिद्धे सुझाव ही जाती है और साथ ही स्वतन्त्र चिन्तन और जीवन रचना के लिए हमें पूरा अवसर प्राप्त हो जाता है।

हम भीम चाहते हैं, कि अपने धर्म के ये जीवनदायक समान तत्व हम सबके सामने मार्ग और देश के सभी स्त्री-पुरुष आसक्त-बुद्ध उन्हें समझें तथा जीवन में परिष्कृत करें। यह हमारे लिए आवश्यक है। यह प्रथम पथ है। अथ इसे उठाना ही होगा।

## धर्म की ऐक्य-शक्ति

हम देखते हैं कि एशिया और विद्युत्-भारत में शक्ति भाषा समान एवं राष्ट्र सम्बन्धी सभी आचार्य धर्म की इस एकीकरण-शक्ति के सामने उड़ जाती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय मजस के लिए धार्मिक आदर्श से बड़ा और कुछ भी नहीं है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूलमंत्र है और हमें इस सर्व-विक्रम सुन्दर मार्ग के द्वारा ही सफलता प्राप्त होगी।

—केवल इतना ही धारणा नहीं कि धार्मिक आदर्श यहाँ सबसे ऊँचा आदर्श है, अतितु भारत में तो कार्य करने का यही एकमात्र सम्भाव्य उपाय है। पहले इस पथ को सुदृढ़ किए बिना दूसरे मार्ग से कार्य करने पर उत्तरकाल कायक होगा। इसी लिए सभी भारत के निर्माण का पहला कार्य युवा-युवों से बल भाषा इस राष्ट्रीय जीवन के महापरिषद में से धार्मिक एकता स्त्री प्रथम धीमान की निर्माण करना होगा।



## विश्व सत् आध्यात्मिक शक्तियों का एकीकरण

महं विद्या हम सबको मिलनी चाहिए कि हम हिन्दू-वैतनादी विविध्या  
 वैतनादी या अद्वैतनादी अथवा जैन वैष्णव पाशुपत आदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों  
 का नाम धारण करते हुये भी आपस में कुछ सामान्य भाव रखते हैं और जब  
 वह समय आ गया है कि अपने हित के लिए अपनी जाति के लिए हम इन  
 तुच्छ भेदों और विचारों को त्याग दें ।

सधुसध ये क्षयके विस्तृत निरर्क हैं हमारे शास्त्र इनकी निन्दा करते हैं  
 हमारे पूर्व-गुरुओं ने इन्हें त्याग्य बताया है । वे महापुरुषमय जिनके हम संबन्ध  
 कहनाते हैं जिनका रक्त हमारी नसों में बह रहा है, अपने बच्चों को इन गुरु  
 शठों के लिये शायकते हुए बैस कर और बुना की वृष्टि से देख रहे हैं ।

—भारत की विश्व सत् आध्यात्मिक शक्तियों के एकीकरण में ही भारत की  
 राष्ट्रीय एकता निहित है । भारत में राष्ट्रीय एकता का अन्विषय है उन हृदयों  
 भी एकीकरण जिनके सम्बन्ध से एक ही आध्यात्मिक सत् संकल्प हो रही है ।

## पुनरुत्थान का कार्य-२ कार्य-योजना

असमान वैदग्ध्यता कहते हैं, इस कतिपय में बान ही एक मात्र धर्म है, और सब प्रकार के बानों में आध्यात्मिक ज्ञान का बान ही सर्वश्रेष्ठ है। इसके बाद तौकिक विद्या-बान फिर जीवन-बान और सबसे अन्तिम है असमान।

असमान हम लोगों ने बहुत किया है, हमारी बीसी बलसील जाति बूझी नहीं। यहाँ तो भिक्षुक के घर में भी जब तक रोटी का एक टुकड़ा प्युता है, बह पलमें से आवा बान करता है। ऐसा वृथ वकल भारत में ही बीक पकृता है। हमारे यहाँ इस बान की कमी नहीं। हमें अग्य दोनों धर्मबान और विद्याबान के लिये बहना चाहिए।

अगर, हम सब बीरबुद्धि को भारत कर, बुद्ध अन्तःकरणों के साथ पूर्ण प्रामाणिकता को अपना कर कर्मक्षेत्र में कूद पड़ें तो पचीस साल के भीतर सारी समस्याओं का समाधान हो जायगा और ऐसा कोई प्रश्न हीय न रह जायेगा जिसके लिये ब्रुसते रहना पड़े सब सम्पूर्ण भारत फिर एक बार आर्यात्व से परिपूर्ण हो जायगा।

### घार बान

अग्य हैं वे महामाण्ड के प्रणेता यह्यि ब्यास जिन्होंने कहा है— 'कतिपय में बान ही एकमात्र धर्म है'। तप और कठिन योगों की साधना इस युग में नहीं होती। इस युग में बान देने तथा बूझरों की सहायता करने की विशेष बरुत है।

घान जग्य का क्या धर्म है ? सब बानों से श्रेष्ठ है धर्म-बान फिर है विद्या-बान फिर प्रामाणिक और सबसे अन्तिम है अस-जल-बान।

जो आध्यात्मिक ज्ञान का दाव कर रहे हैं वे आचार्यमय के एक से मुक्त हो जाते हैं। जो लौकिक विचारवान करते हैं वे मनुष्य की बातें सोचते हैं उन्हें आध्यात्मज्ञान का पत्र दिखा देते हैं। आर्य दाव यहाँ तक कि प्राण-दान भी इनके निकट वीच है। अतएव तुम्हें समझ लेना चाहिये कि आध्यात्म एक कर्म आध्यात्मिक ज्ञान-दान से निम्नतर है।

जो मनुष्य को आध्यात्मिक ज्ञान देता है वही वस्तुतः मानव का सबसे बड़ा उपकारक है और इसीलिए हम सबैव पाते हैं कि जिन्होंने मनुष्य को उसकी आध्यात्मिक साधना में सहायता दी, वे ही मनुष्य में सर्वाधिक प्रभावशाली माने गये क्योंकि आध्यात्मिकता ही हमारे जीवन के समस्त धिया-कसापों की सच्ची आधारभूतता है। आध्यात्मिकता से स्वस्व एवं अतिशाली व्यक्तियों में अम्ब सब दुष्टियों से भी अतिमान बनने की क्षमता रहती है। जब तक मनुष्य में आध्यात्मिक अति नहीं है तब तक उसकी भौतिक आवश्यकतायें भी भरी प्रकार पूरी नहीं हो सकती।

## धर्म प्रचार अर्थात् अध्यात्म-ज्ञान

इस दानशील देश में हमें पहले प्रकार के अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के कार्य को उत्साहपूर्वक हाथ में ले लेना चाहिये। यह ज्ञान-विस्तार भारतवर्ष की सीमा में ही बाध नहीं रहना चाहिये इसका विस्तार सम्पूर्ण जगत में करना होगा और वही अब तक होता ही आया है।

जो लोग कहते हैं कि भारत के विचार कभी भारत से बाहर नहीं गये और जो लोग कहते हैं कि मैं ही पहला सम्पासी हूँ जो भारत के बाहर धर्म प्रचार करने गया वे अपने अष्ट के इतिहास को नहीं जानते। यह कार्य कई बार हो चुका है। जिस समय संसार को इसकी आवश्यकता हुई उसी समय भारत में निरन्तर बढ़ने वाले आध्यात्मिक ज्ञानशील ने संसार को प्रभावित कर दिया।

**प्रत्येक घर में धर्म का प्रवेश हो**

भारत का धर्म बहुत दिनों से पतिहीन है—बहु स्थिर होकर एक पत्रह टिका हुआ है। हम चाहते हैं कि उसमें यति उत्पन्न हो। मैं प्रत्येक मनुष्य के जीवन में इस धर्म को प्रतिष्ठित हुआ देखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि प्राचीन काल की तरह राजमहल से लेकर बरिच के छोपड़े तक सर्वत्र समान भाव से धर्म का प्रवेश हो।

धर्म इत बालि में सभी को समान रूप में बंधानुक्रम से प्राप्त हुआ है धर्म ही इस बालि का अन्तर्निहित स्वभाव है। इस धर्म को प्रत्येक व्यक्ति के लिये सहज सुलभ बनाना होगा। जिस प्रकार ईश्वर क राग्य में सबको बापु बिना प्रवास किये प्राप्त होती है, उसी प्रकार भारतवर्ष में धर्म को सुलभ बनाना होगा। यही कार्य है जो हमें भारत में करना होगा किन्तु छोटे-छोटे सम्प्रदाय स्थापित करने की बजाय केवल मत्प्रेर के प्रश्नों पर अग्रगते रह कर नहीं हम उन्हीं बातों का प्रचार करें, जिन पर हम सब सहमत हैं।

### सत्य हो, असत्य स्वयं मिट जायगा

यदि किसी कमरे में सदियों से घोर अंधकार फैला हुआ है तो क्या घोर अंधकार ! 'मर्यादर अंधकार !!' बहकर बिस्माने माथ से अंधकार दूर हो जायेगा ? नहीं कमरे को आलोकित कर दो फिर देखो कि अंधेरा बाप ही बाप दूर हो जाता है या नहीं। मनुष्य के सुधार व संस्कार का यही मार्ग है।

पहले मनुष्य पर विश्वास करो। तदुपरान्त यदि तुम्हें विश्वास है कि उसमें दोष है वह कोई यत्नियां करता है अथवा अल्पक अपरिपक्व एवं भ्रष्ट सिद्धांतों को अपनाता है तो निश्चय जानो कि इसका कारण उसकी मूल प्रकृति नहीं अपितु उसके जीवन में खोले आदर्शों का अभाव मात्र है।

तुम उसे सत्य का दर्शन करने दो—बस यही तुम्हारा काम समाप्त हो गया। अब उसे उस सत्य के प्रकाश में अपना आत्मनिरीक्षण करने दो ? और मेरे शब्दों पर ध्यान दो ! यदि तुमने वास्तव में उसे सत्य का ज्ञान करा दिया है तो अज्ञान स्वयं ही विरहित हो जायेगा। प्रकाश कभी अंधकार का नाश किए बिना नहीं रहता। सत्य अज्ञान ही उसकी अन्धाश्रयों को शकट करेगा।

यदि तुम देश का आध्यात्मिक उत्थान करना चाहते हो, तो उसका यही एकमेव मार्ग है। उसका मार्ग यही है न कि मड़ना मड़ना न कि लोगों को यह बतलाते रहना कि जो कुछ तुम कर रहे हो वह सब बुरा है। आवश्यकता इस बात की है कि जो कुछ अच्छा है उसे उनके समक्ष रख दो फिर देखो वे किसनी उत्सुकता के साथ उसे ग्रहण करते हैं। मनुष्य मात्र के अन्दर जो अविनाशी ईश्वरीय तंत्र विद्यमान है वह जो कुछ भी भय एवं खेद है उसे हाथ पीनाकर ग्रहण कर लेता है।

## वर्ष-ग्रन्थों में छिपे आध्यात्मिक रत्नों को प्रकाश में लायें

मेरा विचार है सर्वप्रथम आध्यात्मिकता के उन रत्नों को जो हमारे सास्त्र ग्रन्थों में मौजूद हैं और जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में बरतों और बरतों में छिपे हुए हैं बाहर निकालना होगा। बिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल वहीं से इस ज्ञान का उद्धार करने से काम न चलेगा किन्तु सबसे भी बुर्जोअ पेटिका बर्षात् ब्रह्म माया में ये सुरक्षित हैं उन अठारहवीं के संस्कृत ग्रन्थों के कोष से उन्हें निकालना होगा। एक वाक्य में कहें तो मैं उन्हें जन-मुक्त बना देना चाहता हूँ।

इस कार्य में सबसे बड़ी बाधा हमारी मौरवधार्मिकी माया बर्षात् संस्कृत ही है और यह माया हम तक दूर नहीं हो सकती जब तक कि सम्पूर्ण राष्ट्र-यदि सम्भव ही तो-संस्कृत नहीं बन जाता।

### संस्कृत के प्रचार की आवश्यकता

मह कठिनाई तुम जब समझ सकोगे जब मैं प्रकट करूँ कि मैं जातीयता इस संस्कृत भाषा का अध्ययन करते रहने पर भी जब कभी इसकी कोई नयी पुस्तक उठाता हूँ तब वह मुझे विस्मृत अभिमत जान पड़ती है। जब लोको कि बिन नीमों ने विशेष रूप से इस भाषा का अध्ययन करने का समय नहीं पाया उनके लिये यह किठनी अधिक क्लिष्ट होती। अतएव मनुष्यों की शोक जाल की तारों में हम विचारों की बिना बनी होती। किन्तु साह ही संस्कृत की शिक्षा भी अवश्य चलती रहनी चाहिये। क्योंकि संस्कृत ग्रन्थों की परिभाषा ही राष्ट्र को एक प्रकार की प्रतिष्ठा लक्षि एवं ऐव प्रदान करती है।

उत्तमोत्तम और कबीर ने भाष्य की निम्न आठियों की उठाने का जो प्रयत्न किया था उसे उन महान् पर्वतारोहियों के जीवन काल में अद्भुत लक्ष्मता प्राप्त हुई किन्तु फिर उसके बाद उस कार्य का जो अक्षय परिणाम निकला उसकी सीमासा होनी चाहिये और किन्तु कारण से उन बड़े-बड़े धर्मियों के तिरोभाव के प्राय एक ही अठारवीं के नीतर वह समिति एक यही इसका विशेषण भी किया जाता चाहिये।

इसका रहस्य यह है कि उन्होंने निम्न आठियों की उठाने का उनको पूर्ण इच्छा थी कि वे सदा के उच्च विचार पर आरुह हो जायें परन्तु उन्होंने जनता में संस्कृत का प्रचार करने में लक्षि नहीं लबायी। वही एक कि सबधान

बुद्ध ने भी यह भूल की कि उन्होंने जलज में संस्कृत शिक्षा का विस्तार बन्द कर दिया ।

वे जलज की बौद्धधर्म की भाषा में बोले थे । यह बहुत ही अच्छा हुआ था इससे उनके भाव बहुत सीधे ही सीधे और दूर-दूर तक पहुँचे किन्तु इसके साथ ही संस्कृत भाषा का भी प्रचार होना चाहिये था । बौद्धिक ज्ञान का विस्तार तो हुआ किन्तु उनके मन में ज्ञान की पहिना का भाव नहीं बस सका और न ही वे संस्कार सम्पन्न बन सके । विभिन्न प्रकार के आघातों के सम्मुख टिके रहने की क्षमता केवल संस्कारित ज्ञान में ही होती है न कि निजी बौद्धिक जानकारी के डेर में ।

जलज की उसकी बौद्धधर्म की भाषा में शिक्षा से, उसे अनेक विचार दो हमने उसकी जानकारी बढ़ेयी । परन्तु इससे भागे बढ़कर उसे संस्कारित बनाने का प्रयास भी करो । जब तक तुम यह नहीं कर सकते तब तक उनकी उन्नत रक्षा क्यापि स्थायी नहीं हो सकती ।

## ज्ञान का शाश्वत भण्डार और श्रद्धा केन्द्र

उपनिषद् हमारे पवित्र धर्मग्रन्थ है । भारत के समस्त दर्शन और सम्प्रदायों को यह प्रभावित करना हीठा है कि उसका दर्शन बचवा सम्प्रदाय उपनिषद् रूपी नीच के ऊपर प्रतिष्ठित है । यदि कोई ऐसा करने में समर्थ न हो सके तो वह दर्शन बचवा सम्प्रदाय धर्म-विषय विना बाधा है । इसलिए वर्तमान समय में समस्त भारत के शिक्षुओं को यदि किसी समान नाम से परिचित करना हो तो उनकी 'वैदिक' बचवा 'वैदिक' कहना उचित होगा । मैं वैदिक धर्म और वेदान्त इन दोनों शब्दों का व्यवहार करत इसी अर्थ से किया करता हूँ ।

यहाँ तक कि बौद्धों और जैनों के धार्मिक ग्रंथों में भी श्रद्धाओं की सहायता को समाप्त नहीं किया गया है और कम से कम कतिपय बौद्ध शाखाओं तथा बहिर्देशीय जैन धर्मों में श्रद्धाओं के प्राभास को पूर्णतया स्वीकार किया गया है । वे केवल इन धर्मों को नहीं मानते जिन्हें वे हिंसक श्रद्धा कहते हैं और जिन्हें वे शास्त्रों द्वारा प्रतिष्ठित अर्थ बताते हैं ।

## शक्ति के भण्डार—उपनिषद्

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ शक्ति से भरा हुआ है । यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है । समस्त जीवन में मैंने यही महाशिक्षा प्राप्त की है । उपनिषद् कहते हैं—'हे मानव तेजस्वी बनो दुर्बलता को त्यागो ।

जो हमारी जाति को नष्टिहीन कर सकती है। ऐसी दुर्बलताओं का प्रवेश हममें विगत एक हजार वर्ष से ही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है मानो विगत एक हजार वर्ष में हमारे राष्ट्रीय जीवन का एकमात्र तरंग यही रहा था कि किस प्रकार हम अपने को अधिक से अधिक दुर्बल बना सकें। ताकि अन्त में हम कीटवत् रहे जायें और उस समय को चाहे हमें रोह डाले।

हे बन्धुपुत्र ! तुम्हारी और मेरी गलों में एक ही रक्त का प्रवाह है। तुम्हारा जीवन-मरण मेरा भी जीवन-मरण है। मैं तुमसे पूर्वोक्त कारणों से कहता हूँ कि हमकी शक्ति, केवल शक्ति ही चाहिये और उपनियत् शक्ति की विद्याम ज्ञान है। उपनियत् में ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तैरसवी कर सकते हैं। उनके द्वारा समस्त संसार पुनर्जन्मिष्ठ एवं शक्ति और नीर्यसम्पन्न हो सकता है।

समस्त जातियों को सकल मनों को मिश्र-निश सम्प्रदाय के दुर्बल दुर्धी पद-बन्धित लोगों को वे उच्च-स्तर से पुकार कर स्वयं अपने पैरों पर खड़े होकर मुक्त होने के लिए कहते हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता—वैदिक स्वाधीनता मानसिक स्वाधीनता धार्म्यात्मिक स्वाधीनता वही उपनियत् का मूल मग्न है।



### उपनियत् केवल विरक्ति के प्रतिपादक नहीं

किन्तु आश्चर्य के केवल संस्कारियों तक सीमित रहे। वे रहस्य बत मने। उपनियत् केवल अरभ्यवासी संस्कारियों की सम्पत्ति रहे। ह्रीं अक्षर के बोझी बना अक्षय की और कहा— गृहस्थ मनुष्य भी उपनियत् का अध्ययन कर सकते हैं। इससे उनका कल्याण ही होमा कोई अनिष्ट न होवा। परन्तु अभी तक यह संस्कार कि उपनियत् में केवल संस्कारियों के अरभ्यक जीवन की ही जर्नी है हमारे मन पर बना हुआ है।

जो स्वयं वेदों के प्रकाशक हैं उन्हीं भयवान् भीदम्पन द्वारा वेदों की एकमात्र प्रामाणिक टीका— 'शीवा'—एक ही बार विरक्तम के निम्ने बनी है। वह उनके लिए और जीवन के प्रत्येक कर्मक्षेत्र में उपयोगी है।

वेदान्त के इन महान् तत्त्वों को बाहर आना ही होमा। अब वे केवल अरभ्य में अथवा मिरि-मुद्गाओं में बग्न नहीं रहेंगे। विद्यालयों में प्रार्थना मन्त्रों में शक्ति की कुटी में मत्स्यजीवियों के बूझों में छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र ही उनका प्रसार व व्यवहार होमा।

बापत !!

सब कर्मक्षेत्रों में उपनिषद् विकास में सहायक

उपनिषदों के सिद्धान्तों को मनुष्य आदि साधारण जन किस काम में लायेंगे ? इसका उपाय शास्त्रों में बताया गया है ।

मस्त्रजीवी यदि अपने को आत्मा कह कर चिन्तन करे तो वह एक उत्तम मस्त्रजीवी होगा । विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा कहकर चिन्तन करे तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा । बकील यदि अपने को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा बकील होगा । अर्थों के विषय में भी यही समझना चाहिये ।

आत्मा के पूर्णत्व का महान् सिद्धान्त

हम उसी सर्वशक्तिमान की सन्तान हैं हम उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की विमपारिमा हैं तब भला हम 'नमस्य' क्योंकर हो सकते हैं ? हम सब कुछ करने को तत्पर हों हम सब कुछ कर सकते हैं और मनुष्य को सब कुछ करना भी चाहिये ।

अतएव मेरे बन्धुजो ! तुम अपनी सन्तानों को आत्मकास से ही इस महान् जीवन प्रद, उच्च और महत्वविधायक तत्व की शिक्षा देना शुरू कर दो । तुम उन्हें ईश्वरवाद की शिक्षा दो यह कोई अनिवार्य नहीं है । उन्हें चाहे ईश्वरवाद की शिक्षा दो या किसी 'बाब' की—मैंने यह पहले ही बता दिया है कि आत्मा की पूर्णता का यह अपूर्व सिद्धान्त सभी सम्प्रदाय वासियों को समान रूप से मान्य है ।

आत्मा की पूर्णता का यह विश्वास हमारे पूर्वजों के अन्तःकरण में विद्यमान था । यह आत्मपदा ही वह मूल प्रेरणा की जिसने उन्हें सम्मता की यात्रा में निरन्तर भागे बढ़ते रहने की शक्ति प्रदान की और अब यदि हमारी अवनति हुई तो आपसे सब कहता हूँ—जिस दिन हमारे पूर्वजों ने अपना यह आत्मविश्वास गंवाया उसी दिन से हमारी यह अवनति यह पुरबस्ता आरम्भ हुई । आत्म विश्वास के न होने का मतलब ही है ईश्वर में भी अविश्वास ।

आत्मविश्वास की अब्मुख शक्ति

मैंने पाश्चात्य जगत में जाकर क्या सीखा ? मैंने विभिन्न ईसाई सम्प्रदायों की इस निरर्थक शोषणा में कि मनुष्य नितान्त पठित एवं पापी है, के पीछे नहीं क्या देखा ? मैंने देखा कि बोरोप और अमेरिका के राष्ट्रीय अन्तःकरण इस अन्तःपदा से अनियंत्रित प्रवृत्त सामर्थ्य से परिपूर्ण हैं ।



एक अंग्रेज 'बामरु' बाने के साथ तुमसे कह सकते हैं— 'मैं अंग्रेज हूँ मैं सब कुछ कर सकता हूँ ।' एक अमेरिकन वा मोरोपियन बामरु इती तरह की बात बड़े विश्वासपूर्वक कह सकते हैं । हमारे भारतवर्ष के बच्चे क्या इस तरह की बात कह सकते हैं ? कदापि नहीं । सड़कों की कौन कसे—सड़कों के पिता भी इस तरह की बात नहीं कह सकते । हम अपने आप पर से विश्वास लो बैठे हैं ।

भारत का कोई भी बर्न-सम्प्रदाय ऐसा नहीं है, जो यह न कहता हो कि ईश्वर सबके भीतर विराजमान है और सब वस्तुओं में देवत्व का वास है । हमारे देवालय मत्ताबसम्बन्धों में जो भिन्न-भिन्न मतवादी हैं व सजी यह स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा में पहले से ही पूर्ण पवित्रता, शक्ति और पूर्णत्व अन्तर्निहित है ।

आत्मविश्वास वा आदर्श ही हमारी सर्वाधिक सहायता कर सकता है । यदि अब तक आत्मविश्वास की मिसा ही मयी होती और उसका अभ्यास कराया गया होता तो मेरा विश्वास है कि भिन्न आपदाओं और दुःखों से हम घिरे हुए हैं उनमें से अधिकतर जोप हो गयी होती । मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में घमस्त महान् पुरुषों एवं नारियों के जीवन में यदि कोई मालसिक शक्ति सबसे प्रथम दिखाई देती है तो वह है उनका आत्मविश्वास । 'हमें महान् बनना है' यह वेतना उनमें सदैव बनी रही और वे महान् बन गये ।

एक साधारण बलक साक्षात्कार का निर्माता बन गया

कोई मनुष्य नीचे से नीचे भी विरता जाव तो एक समय ऐसा अवसर आयेगा जब वह धीरे धीरे निराशा में उतर की ओर उठने का प्रयास करेगा और स्वयं में विश्वास रखना सीखेगा । किन्तु हमारे मित्रे अन्ध होया कि हम इस मान्य को प्रारम्भ से ही स्मरण रखें । आत्मविश्वास प्राप्त करने के लिये आशिर हम इस घमस्त कष्ट अनुभवों के मध्य से गुजरें ही क्यों ? हम बेशक सकते हैं कि मनुष्य-मनुष्य में अन्तर केवल इस विश्वास की भावना के अस्तित्व अथवा अस्तित्व के कारण ही पड़ जाता है ।

यहाँ, इस भाष्य में एक अंग्रेज आया था वह एक साधारण बलक वा अपने जैसे के अभाव से और दूसरे कारणों से भी उसने अपने चिर में गौरी मारकर दो बार आत्महत्या करने की चेष्टा की और जब वह उसमें असफल हुआ तब उसे विश्वास हुआ कि वह अवश्य ही किसी बड़े काम को करने के लिये पैदा हुआ है—वही मनुष्य इस कठिन साम्राज्य का प्रतिष्ठता चाई बनाएव है ।

## व्यावहारिक जीवन में अद्वैत

अपने पर विश्वास रखो और यदि तुम्हें सांसारिक ऐश्वर्य की आकांक्षा हो तो इस अद्वैतवाद को कार्यान्वित करो वन तुम्हारे पास आयेगा । यदि विद्वान और बुद्धिमान होने की इच्छा है, तो उसी क्षेत्र में अद्वैतवाद का प्रयोग करो— तुम महामनीषी हो जाओगे । और यदि तुम मुक्ति-साध करना चाहते हो तो तुम्हें आध्यात्मिक स्तर पर इस अद्वैतवाद का प्रयोग करना होगा तभी तुम ईश्वर हो जाओगे—परमानन्दस्वरूप निर्वाण प्राप्त करो ।

अद्वैत के साथ एक यही खराबी रही कि इसका प्रयोग अब तक केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही किया गया है और अन्य कहीं नहीं । अब उसका प्रयोग व्यावहारिक जगत में करने का समय आया है । अब उस केवल रहस्य रखने से काम नहीं चलेगा अब वह हिमालय की मुच्चलों और जंगलों में साधु-सन्त्यासियों के पास ही बंधा नहीं रहेगा—अब मनुष्य के दैनिक जीवन के कार्यों में उसकी उपयोगिता की आवश्यकता है । राजप्रासाद में साधु-संन्यासियों की रहने में यतीशों की कुटिया में सर्वत्र यहाँ तक कि रास्ते के भिखारी के जीवन में सब कार्यों में उसकी व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध होगी ।

## शिक्षा अथवा लौकिक ज्ञान का प्रसार

पादसात्त्व्यों की प्रगति का रहस्य—शिक्षा का व्यापक प्रसार

पश्चिम और पूर्व में केवल इतना अंतर है कि उनमें राष्ट्र-साध व्यापक है जबकि हममें नहीं है । जबकि वहाँ शिक्षा और सम्मता जनसाधारण तक प्रवेश कर चुकी है । अमेरिका और भारत के उच्च वर्ग तो एक समान हैं । किन्तु दोनों देशों के निम्न वर्गों में आकाश-मातास का अंतर है । अंग्रेजों के लिए भारत को बीतना इतना सुगम क्योंकर हो सका ? क्योंकि वहाँ राष्ट्रियता की भावना सबमें जागृत है हममें नहीं है ।

हमारे यहाँ अब एक महापुरुष का विरोधान हो जाता है जब हमें दूसरे महापुरुष के आत्मन के लिए गताब्धियों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है । जबकि वे एक महापुरुष के मरते ही दूसरा पैदा कर लेते हैं । वहाँ महापुरुषों की ज्ञान है । ऐसा क्यों है ? क्योंकि उनके सामने महापुरुष उत्पन्न करने के लिये एक विशाल क्षेत्र विद्यमान रहता है । हमें बहुत छोटा क्षेत्र उपलब्ध है । हमारे

एक अंग्रेज बालक शाने के साथ तुमसे कह सकता है— 'मैं अंग्रेज हूँ मैं सब कुछ कर सकता हूँ।' एक अमेरिकन या योरोपियन बालक इसी तरह की बात बड़े विश्वासपूर्वक कह सकता है। हमारे भारतीयों के बच्चे क्या इस तरह की बात कह सकते हैं? कदापि नहीं। मड़कों की कोम कहे—मड़कों के पिता भी इस तरह की बात नहीं कह सकते। हम अपने आप पर से विश्वास को बैठे हैं।

भारत का कोई भी धर्म-सम्प्रदाय ऐसा नहीं है जो यह न कहता हो कि ईश्वर सबके भीतर बिराजमान है और सब वस्तुओं में देवत्व का वास है। हमारे वेदान्त महात्मियों में जो सिद्ध-भिन्न मतवादी हैं वे सभी यह स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा में एहमें से ही पूर्ण पवित्रता अस्तित्व और पूर्णत्व अन्तर्निहित है।

आत्मविश्वास का आवर्ध ही हमारी सर्वाधिक सहायता कर सकता है। यदि जब तक आत्मविश्वास की निम्ना की गयी होती और उसका अभ्यास कराया गया होता तो मनु विश्वास है कि जिन आपदाओं और बुराइयों से हम घिरे हुए हैं उनमें से अधिकतर शीघ्र ही खरी होतीं। मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में समस्त महान् पुरुषों एवं गारियों के जीवन में यदि कोई मानसिक अक्षति सबसे प्रथम दिखाई देती है तो वह है उनका आत्मविश्वास। 'हमें महान् बनना है' वह चेतना उनमें सर्वत्र बनी रही और वे महान् बन गये।

### एक साम्राज्य बलक साम्राज्य का निर्माता बन गया

कोई मनुष्य नीचे से नीचे भी गिरता जब तो एक समय ऐसा अवश्य आयेगा जब वह घोर निराशा में ऊपर की ओर उठने का प्रयास करेगा और स्वयं में विश्वास रखना सीखेगा। किन्तु हमारे लिये अच्छा होगा कि हम इस मनुष्य को प्रारम्भ से ही स्मरण रखें। आत्मविश्वास प्राप्त करने के लिये आशिर हम इन समस्त कष्ट अनुभवों के मध्य से गुजरें ही क्यों? हम देख सकते हैं कि मनुष्य-मनुष्य में अन्तर केवल इस विश्वास की भावना के अस्तित्व अथवा अस्तित्व के कारण ही पड़ जाता है।

यहाँ, इस भारत में एक अंग्रेज आया था वह एक साम्राज्य बलक का स्वयं पंथ के अभाव से और दूसरे कारणों से भी उसने अपने चिर मे योसी मारकर दो बार आत्महत्या करने की चेष्टा की और जब वह उसमें अतफल हुआ तब उसे विश्वास हुआ कि वह अवश्य ही किसी बड़े काम को करने के लिये पैदा हुआ है—वही मनुष्य इस ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिपत्तता नाई स्थापन है।

## व्यावहारिक जीवन में अद्वैत

अपने पर विश्वास रखो और यदि तुम्हें सांसारिक ऐश्वर्य की आकांक्षा हो तो इस अद्वैतवाद को कार्यान्वित करो वन तुम्हारे पास आयेगा। यदि विद्वान और बुद्धिमान होने की इच्छा है तो उसी क्षेत्र में अद्वैतवाद का प्रयोग करो— तुम महामनीषी हो जाओगे। और यदि तुम सुखित-साम करना चाहते हो तो तुम्हें साम्यारिक्त स्तर पर इस अद्वैतवाद का प्रयोग करना होगा तभी तुम ईश्वर हो जाओगे—परमानन्दस्वरूप निर्वाण साम करोने।

अद्वैत के साथ एक मही लड़ाई रही कि इसका प्रयोग अब तक केवल साम्यारिक्त क्षेत्र में ही किया गया है और अन्य कहीं नहीं। अब उसका प्रयोग व्यावहारिक जगत में करने का समय आया है। अब उस केवल रहस्य रखने से काम नहीं बसपा अब वह हिमालय की गुफाओं और जंगलों में साधु-सन्ध्या सियों के पास ही बंधा नहीं रहेगा—अब मनुष्य के दैनिक जीवन के कार्यों में उसकी उपयोगिता की आवश्यकता है। राजप्राधार में साधु-सन्ध्यासियों की गुरु में मरीचों की कृटिमा में सर्वत्र यहाँ तक कि रास्ते के निलारी के जीवन में सब कार्यों में उसकी व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध होगी।

## धिज्ञा अथवा लौकिक ज्ञान का प्रसार

### पाश्चात्यों की प्रगति का रहस्य—शिक्षा का व्यापक प्रसार

पश्चिम और पूर्व में केवल इतना अन्तर है कि उनमें राष्ट्र-भाव व्यापक है जबकि हममें नहीं है। अर्थात् वहाँ शिक्षा और सम्पत्ता जनसाधारण तक प्रवेश कर चुकी है। अमेरिका और भारत के उच्च वर्ग तो एक समान हैं। किन्तु दोनों देशों के निम्न वर्गों में आकाश-पाताल का अन्तर है। अंग्रेजों के लिए भारत को जीतना इतना नुपय क्योंकर हो सका? क्योंकि वहाँ राष्ट्रीयता की भावना सबमें जागृत है, हममें नहीं है।

हमारे यहाँ अब एक महापुरुष का त्रियोग्य हो जाया है अब हमें हमारे महापुरुष के आगमन के लिए जगत्त्रिभुवों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। जबकि एक महापुरुष के मरण ही इसका पया कर लेते हैं। वहाँ महापुरुषों की ज्ञान की भावना सबमें जागृत है? क्योंकि उनके सामने महापुरुष उत्पन्न करने के लिये एक ज्ञान क्षेत्र विद्यमान रहता है। हमें बहुत छोटा क्षेत्र उपलब्ध है। हमारे

राष्ट्र की जनसंख्या तीस कोटि होते हुए भी हमारे पास जगत् राष्ट्रों की अपेक्षा जिनकी जनसंख्या केवल तीन चार बाइ करोड़ है महापुरुष उत्पन्न करने वाला क्षेत्र सबसे छोटा है क्योंकि जगत् राष्ट्रों में ब्रिजित नर-नामियों की संख्या इतनी अधिक है । मेरे एक-एक लक्ष को हृदयंगम कर लो । हमारे राष्ट्र की यह मारी कभी है और इसे दूर करना होना । जन-साधारण को ब्रिजित कर और ऊपर उठाओ । केवल तभी यह देश यथार्थ में राष्ट्र-रूप में बढ़ा हो सकेगा ।

तुमने पढ़ा होना 'मातृ देवो भव पितृ देवो भव' । यर्थात् माता की प्रशान्ता समझो पिता को भवबान् समझो । किन्तु मैं कहता हूँ—'पति देवो भव मूर्ख देवो भव'—इन परीकों अपनों मजानियों एवं बुक्तियों को ही अपना भवबान् मानो । स्मरण रखी केवल इनकी सेवा ही तुम्हारा परम धर्म है ।

### वर्तमान शिक्षा—निपेयात्मक एवं निर्जीव

वी शिक्षा तुम अभी पा रहे हो उसमें अल्प अंश बहुत ही कम और बुराईया बहुत है । इसलिए उसकी बुराईया उसके बले अंश को पचा जाती है । सबसे पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा अनुप्य बनाने वाली नहीं कभी जा सकती । वह पूर्वतया निपेयात्मक शिक्षा मात्र है । अमर्याद पर आचारित कोई भी निपेयात्मक शिक्षा मृत्यु से भी भयावह होती है । क्रौमल-मति वालक पाठ-बाला में भर्ती होता है तो सबसे पहली बात उस विद्यार्थी जाती है कि 'मेरा बाप मूर्ख है । दूसरी बात यह सीखता है कि 'मेरा बापा पावस है । तीसरी बात—'मेरे जितने शिक्षक और आचार्य हैं वे सब मिथ्यावादी हैं । और चौथी बात 'मेरे समस्त पवित्र धर्मग्रंथ गणोद्धारणी हैं । इस प्रकार की अमर्यादपूर्व बर्तें सीखते-सीखते जब वह १६ वर्ष की अवस्था को प्राप्त करता है तब वह अमर्यादों का निर्जीव निरात्मक डेर मात्र रह जाता है ।

हमें कभी यह नहीं बताया जाता कि हमारे देश में भी महापुरुष पैदा हुए हैं । हमें कोई भी ठीक ज्ञान नहीं सिखाया जाता । हम यह भी नहीं जानते कि अपने हाथों-पैरों का ठीक प्रकार से उपयोग कैसे करें । हम अंग्रेजों के पूर्वजों से सम्बन्धित आंकड़ों और तथ्यों को ही रखते रहते हैं किन्तु हमें अपने पूर्वजों के बारे में कुछ भी पता नहीं रहता । हमने केवल दुर्बलता ही सीखी है । एक पराभित जाति के नाते हम यह विश्वास करने लगे [कि हम दुर्बल हैं और हमें कुछ करने की स्वाधीनता नहीं है । अतः इसका परिधान और ही ही क्या सकता है कि हम पूर्वतः व्याधिहीन हो जाय ।

## शिक्षा—चरित्र-निर्माणकारी विचारों का सम्मिश्रण

केवल जलकारी का बहुर 'मिता' नहीं कहना भक्तता त्रिजे तुम्हारे निमाय में छुड़-छुड़ कर पर दिना मात्रा है और जो बिना मायमात हुए नहीं जीवन पर उपग्रह नचाना करता है। हमें विचारों को इस प्रकार मायमात कर लेना चाहिए कि उनके द्वारा हमारा जीवन-निर्माण हो सके हमारा चरित्र निरूपण हो सके और हम मनुष्य बन सकें। यदि तुम केवल पांच ही भावों को मायमात कर उपग्रह बनने जीवन और चरित्र का गन्त कर सको तो उस मनुष्य की कल्पना नहीं अधिक मिश्रित हो त्रिजे एक पूरा का पूरा पुन्यकालन कष्टस्य कर रहा हो।

अतः हमारा मन्त्र यही है कि हमारे देश की सम्पूर्ण मित्रा सौकरिक और पायमादिक हमारे हावों में हो और यह मित्रा हमारी राष्ट्रीय भावमकठारों के अनुसरण हो और जहां तक सम्भव हो सके राष्ट्रीय पद्धति में ही ही जानी चाहिये।

### गरीबों के पढ़ाने की कठिन समस्या

गरीबों को शिक्षित बनाने के मार्ग में सबसे बड़ी कठिनाई यही है। कल्पना के लिए यदि हम प्रत्येक भाग में नि-मुक्त विद्यालय खोलने की स्थिति में पहुँच भी जायें तो भी गरीब लड़के उस विद्यालय में जाने की कल्पना करीबिका के लिए इन कल्पना उगाध पसन्द करिये। न तो हमारे पास पर्याप्त धन है और न हम उन्हें विद्यालयों की ओर आह्वय करने में ही सफल हो सके हैं। अतः इस समस्या का कोई हल नहीं बीजता विन्तु मैंने उसका एक हल खोजा है जो इस प्रकार है

### समस्या का हल

संन्यासी प्रत्येक द्वार तक शिक्षा को ले जाय

यदि रोमी चिचितक के पास जाने को ठीकार नहीं तो चिचितक ही रोमी के पास क्यों न जाय ? यदि गरीब लोग मित्रा के निकट नहीं आ सकते तो मित्रा को ही उनके लिए उनके क्षेत्रों पर, उनकी पैदली में तथा सर्वत्र जाना होगा।

हमारे देश में सहजों श्रेयविष्ठ एवं सर्वस्वस्वामी संस्थाओं का बर्ष है जो पाँच-पाँच जाकर बर्ष की शिक्षा देते हैं। यदि उनमें से कुछ को मौखिक विद्याओं का शिक्षण देने के लिए तैयार कर लिया गया तो वे ग्राम-ग्राम, द्वार-द्वार जा कर न केवल बर्षोपबर्ष कर सकेंगे अपितु शिक्षादान भी करेंगे।

यद्यपि उन लोगों को ग्राम-ग्राम जाकर प्रत्येक घर पर केवल बर्ष की ही नहीं पहुँचाना चाहिए बल्कि तिला को भी पहुँचाना चाहिए।

अब कल्पना करो कि समस्त ग्रामवासी अपने दिन घर के काम से निपट कर राँध बापस आये और किसी पैर के नीचे या कहीं और बैठकर हुक्का पी रहे हैं एवं बातों में समन काट रहे हैं। कल्पना करो कि ऐसे समय को बिबिध संस्थाओं ने उन्हें वहाँ घेर लिया और एक कमरे के द्वार श्वेतित्विज्ञान के सुयोग एवं इतिहास आदि की किताबों के रूप में उनके सामने प्रस्तुत किया। इस प्रकार भूमिगत मानवियों आदि तथा मौखिक वास्तुशिल्प के द्वारा उन्हें विविध शैक्षिक ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

केवल आँख ही ज्ञान प्राप्ति का केला द्वार नहीं है कान भी वह काम कर सकता है। इस प्रकार उनमें नये-नये विचारों, शैक्षिकता तथा अपने ब्रह्मण्य मन्विष्य के प्रति आका का संचार होया। यहाँ हमारा कार्य समाप्त हो जाता है।

उन्हें विचार दिये जाये चाहिये उनकी भाँजों के समान चारों ओर क वक्रत में चलने वाले व्यापार का चित्र खड़ा करना चाहिये एवं वे अपने उद्धार का मार्ग स्वयं निर्माण कर लेंगे।

हमारा कार्य है कि हम रसायनों को एकत्र ला दें, उनकी सम्मिश्रण प्रक्रिया अपने आप ईश्वरीय नियमों के अनुसार चलेगी। हम केवल उनके दिमागों में विचार भर दें। दिए कार्य वे स्वयं कर लेंगे। यही है वास्तविक जनों में लोक-शिक्षण।

## धार्मिक उन्नय से बड़ा काम होगा

किन्तु संस्थाएँ इतना बड़ा स्वयं करेंगे ? ऐसा कार्य अपने ऊपर क्यों लेंगे ? केवल धार्मिक उन्नय के कारण। प्रत्येक नयी धार्मिक सहर के लिये एक नया केन्द्र होता आवश्यक होता है। पुराने धर्म में बुद्धिजीवन का संचार एक नये केन्द्र द्वारा ही हो सकता है। अपने 'प्राची' और शिक्षकों को एक में रख दो के कुछ समय नहीं बाँचेंगे। इस समय एक परिवर्तन एक जीवननिष्ठ श्रेयवादी मनुष्य को ही केन्द्र बनकर समाज का नेतृत्व करना होगा। यही

केन्द्र है जिसके चारों ओर अन्य समस्त ब्रह्मिणी एकत्र होंगी और समाज पर एक स्वार-चरण के समाज का चारोंवी तथा समाज की समस्त मतिनताओं को बहा से चारोंवी ।

किसी सफ़ाई के टुकड़े को उसके रेसों के अनुसार विज्ञान में काटना अधिक सरल होता है । इसी प्रकार इस प्राचीन हिन्दू धर्म का पुनर्संस्कार भी हिन्दू धर्म के बाध्यम से ही हो सकता है न कि इन नवीनता-सोभी सुधारवादी बाण्डोलनों से ।

साथ ही, इन सुधारकों को अपने अन्दर पूर्व और पश्चिम दोनों की संस्कृति का समन्वय करना होगा ।

- \* सबसे पहले हमें अपनी जाति की आध्यात्मिक और लौकिक मित्रता का पार बहूत करना होगा । तुम्हें इस विषय पर सोचना-विचारना होगा इन पर वर्क-विथर्क और बापट में परामर्श करना होगा विमान बनाना होगा और अन्त में उसे कार्यरूप में परिणत करना होगा । जब तक जाति का उद्धार होना असम्भव है और जब इसके लिए आवश्यकता है एक संघटना की ।

### सर्वत्र कर्मचेतना के केन्द्र स्थापित हों

यह एक बहुत बड़ी योजना है बहुत बड़ी परिष्कल्पना है । मैं नहीं कह सकता कि यह कार्यक्रम में बरिलत होयी या नहीं और होयी तो क्या ठक ? पर उसका विचार छोड़कर हमें यह काम औरतू मुक्त कर देना चाहिए । कैफ़ियत कैसि ? किस तरह से काम में हाथ लगाया जाय ? उदाहरण के लिये मद्रास का ही काम ले लीजिये । सबसे पहले हमें एक मन्दिर की आवश्यकता है क्योंकि सभी कामों में हिन्दू इष्टम स्थापन धर्म को ही बदे हैं । आप कहेंगे कि ऐसा होने से हिन्दुओं के विभिन्न मतावलम्बियों में परस्पर सङ्घर्ष होने लगेगे । पर मैं आपकी फ़िक्रों मत् विधेय के अनुसार वह मन्दिर बनवाने की नहीं कहता । वह इन साम्प्रदायिक भेद भावों से परे ही उसका एकमात्र उपास्य 'शु' हो जो कि हमारे सभी धर्म सम्प्रदायों का प्रतीक है ।

बदि हिन्दुओं में कोई ऐसा सम्प्रदाय हो जो 'मोफ़ार' को न माने तो समझ लीजिये कि वह हिन्दू कहमाने योग्य नहीं है । उस मन्दिर में सब लोग अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही उन हिन्दुत्व की व्याख्या कर सकेंगे पर वह मन्दिर उसके मिलन का केन्द्र होगा । तुम जैसे ही अन्धकार अपनी उचित थदा



के अनुकूल मूर्ति बनवा प्रतीक की उपासना करो किन्तु इस मन्दिर में जाकर अपने ये विषय मत रखने वालों से झगड़ा मत करो ।

इस कैम्प में वे ही धार्मिक तत्व समझाये जायेंगे जो समस्त सम्प्रदायों के बहिष्कृत हैं । किन्तु साथ ही हर सम्प्रदाय वाले को यहाँ जाकर अपने सिद्धांतों को स्पष्ट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी । पर वे मतभेद की शपथें वाली बातें बताने या सिद्धांतें नहीं पायेंगे । बोली तुम क्या बोलते हो ? संसार तुम्हारा सम्पत्ति बनना चाहता है पर उसे यह सुनने का समय नहीं है कि तुम धीरों के विषय में क्या विचार प्रकट कर रहे हो । धीरों की बात छोड़ो तुम अपनी ही ओर ध्यान दो ।

### लौकिक एवं धार्मिक आध्यात्मों का प्रशिक्षण

इस मन्दिर के साथ एक और संस्था हो जिसमें ऐसे शिक्षक तैयार किये जायें जो लोगों में धर्म प्रचार करने एवं उन्हें लौकिक जितना देने के हेतु सर्वत्र प्रयत्न करते रहें । उन्हें दोनों काम करने होंगे । जैसे हम धर्म का प्रचार द्वार द्वार जाकर करते हैं वैसे ही हमें लौकिक ज्ञान का भी प्रचार करना पड़ेगा । यह काम आसानी से हो सकता है । इन्हीं धर्मप्रचारकों तथा व्याख्यानदाताओं के द्वारा हमारे कार्य का विस्तार होता जायेगा और कमला अत्यात्म स्वामी में ऐसे ही मन्दिर प्रतिष्ठित होंगे, और यह कार्य समस्त भारत को व्याप्त कर लेगा यही मेरी योजना है ।

यह योजना तुमको बड़ी भारी मामूळ होगी पर इसकी इसी समय आवश्यकता है । तुम यह पूछ सकते हो इस काम के लिए धन कहाँ से जायेगा ? वास्तविक आवश्यकता धन की नहीं है । धन का कोई महत्व नहीं । पिछले बारह वर्षों में मुझे कभी पता नहीं रहा कि अपने समय का मौजत कहाँ से जायेगा किन्तु धन या कोई भी वस्तु की बितरणी मुझे इच्छा हो मेरे निकट आना ही चाहिए, क्योंकि वे मेरे पुत्रात् हैं न कि मैं उनका पुत्रात् हूँ । वनापि प्रत्येक चीज को जाना ही होना 'जाना ही होना' यही मेरा मत है ।

### ध्वस्त चाहिये—निष्ठावान् ध्वस्त

धन प्राप्त यह है कि काम करने वाले लोग कहाँ हैं ? धन प्राप्त यही है । मनुष्यों की केवल मनुष्यों की आवश्यकता है । और सब कुछ ही जायेगा किन्तु आवश्यकता है बीरवान् तेजस्वी भीतान्ध और पूर्ण प्रामाणिक तथमुक्तों

की । मेरी आशाएं इस नवोदित पीढ़ी में—बाहुनिक पीढ़ी में केन्द्रित हैं । उसी में से मेरे कार्यकर्ता निर्मात्र होंगे । वे सिद्ध के समान पूरी समस्या को हल कर देंगे । मैंने अपना समय निर्धारित कर लिया है और अपना सम्पूर्ण जीवन उसके लिए समर्पित कर दिया है । यदि मैं सफलता प्राप्त नहीं कर पाता तो उसे पूरा करने के लिए कोई अन्य आर्यवा और मुझे संवर्ष करते रहने में ही संतोष प्राप्त होगा ।

तुम सब अपने में यह विश्वास रखो कि प्रत्येक आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है । बस तभी तुम सारे भारत को पुनरुज्जीवित कर सकोगे । फिर तो हम बुनिया के सभी देशों में जायेंगे और हमारे भाष उम अनेक प्रतिभों के अंश स्वरूप हो जर्मनी के बिनके द्वारा संसार का प्रत्येक राष्ट्र ऊपर उठ रहा है । हमें भारत में बसने वाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना हीया इसके लिये हमें यत्न करना होगा । इसके लिये मुझे कुछ चाहिए । वेदों में कहा है— 'तद्वम वसन्तासी स्वस्थ एवं तीव्र मेवा वात ही ईश्वर के पास पहुंच सकती है ।'

\* तुम्हारे अधिभ्य को निश्चित करने का यही समय है । इसीलिए मैं कष्टता हूँ कि अभी इस बड़ी बरानी में इस नये जोस के जमाने में ही काम करो । काम करने का यही समय है । इसलिए अभी अपने माप्य का निर्भव कर लो और काम में लम जाओ क्योंकि जो फूल विस्तृत ठामा है जो हाथों से पससा नहीं गया है, और जिसे सूंखा नहीं गया है वही मयवान् के बरनों पर बढ़ाया जाता है, उसे ही मयवान् बहण करते हैं ।

इसीलिए आओ हम एक महान् ध्येय को अपनायें और उसके लिए अपना जीवन समर्पित कर दें । यही हमारा ब्रत हो और वे परमेस्वर अनवान् सीहृष्य जो हमारे मात्नों की धीपमानुसार 'अपने प्रियजनों के परिचाप व उद्धार के लिये बार-बार भाविर्भूत होते हैं' हम पर आधी

\* वाद की बर्पा करें एवं हमारे जहेभ्य की सिद्धि में सहायक हों ।

उत्तिष्ठत आपत प्राप्य वराधिबोधय

(कठ० उप० १३४)

उठो, जाओ और सब तक लक्ष्य प्राप्त न हो, शकौ मत ।





भाग दो

समाषण

प्रवचन

एवं

लेखों

से

संकलित



## हिन्दू धर्म की मर्यादाएँ

अन्य धर्मावलम्बियों को हिन्दूधर्म में साने के विषय में स्वामी विवेकानन्द जी का सठामत जानने के लिए सम्पादक ने मुझे आदेश दिया था कि मैं उनसे जाकर मिलूँ। एक दिन सार्यकान गंगाजी में मौका पर बैठ कर उनके साथ इस विषय पर बातचाप का सुयोग मुझे मिला। उस समय सम्पा हो गई थी। बैनूर-स्वित श्रीरामकृष्णमठ के बाट के पाछ ही हमने मौका खड़ी की थी। स्वामीजी मठ से बाये और मौका में बैठकर मेरे साथ बातचाप करने लगे।

स्वान और काल दोनों ही परम रमणीय थे। ऊपर आकाश में तारे चमक रहे थे चारों ओर कम-कम-निगाकिनी जाह्लाही वह रही थी और एक ओर स्पष्ट रूप से आसोकित मठ हीण्ट हो रहा था उसके पीछे ठाल और बड़े-बड़े सायेदार वृक्ष माल और मौन खड़े थे।

मैंने पहले बातचाप शुरू किया। मैंने कहा 'स्वामीजी किन लोगों ने हिन्दूधर्म छोड़ कर अन्य धर्म को अपना लिया है उन्हें फिर से हिन्दू-धर्म में साने के विषय में आपका क्या मत है यही जानने के लिए मैं आपसे मिलने आया हूँ। आपके मत में क्या उनको फिर से हिन्दूधर्म में साया जाना चाहिए ? स्वामी जी बोले 'अवश्य। उनको अवश्य साया जा सकता है और सागा भी चाहिए।

एक मुहूर्त के लिए स्तम्भ खड़ेकर यन्मीर विचार के बाब मे पुन कहने लगे "और भी एक बात है उनका फिर से न लेने पर हमारी संस्था किनोंकिन बटवी आपनी। प्राचीनतम मुसलमान इतिहासकार फरिस्ता के मतानुसार, इस देश में मुसलमानों के प्रथम आगमन के समय यहाँ के हिन्दुओं की संख्या ९० करोड़

थी । अब हम बीच करोड़ में उतर आए हैं । फिर यह भी बात है कि किसी एक व्यक्ति के हिन्दू समाज को स्थापित करने पर इस समाज का एक व्यक्ति केवल कम ही नहीं हो जाता बल्कि उसके अनु की सख्या में एक की वृद्धि हो जाती है ।

‘ फिर जो लोग हिन्दू-धर्म को स्थापित कर मुसलमान या ईसाई बन गये हैं उनमें से अधिकतर लोग समाज के बल पर उन-उन धर्मों को ग्रहण करने को बाध्य किये गए हैं और आजकल जो मुसलमान ब ईसाई हैं उनमें से अधिकतर इन्हीं लोगों के बंशज हैं । इनके हिन्दूधर्म में सौटने के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न मयबा बाधा डालना स्पष्ट अश्याय है । और तुम क्या उन विचारियों के सम्बन्ध में भी पूछ रहे थे जो हिन्दू समाज के अन्तर्गत कभी भी नहीं थे ? अतीत काल में तो ऐसे गुंड के गुंड विधर्मियों को हिन्दूधर्म में नहीं से लिया गया था ? वह प्रक्रिया अब भी जारी रखने में क्या आपत्ति हो सकती है ।

मेरे अपने मत से यह कथन न केवल जनजातियों पड़ोसी जातियों तथा मुस्लिम शासन के पूर्व के प्राय हमारे समस्त विवेकापण पर भाग्य होता है बल्कि उन समस्त जातियों के बारे में भी सत्य है जिनकी विशेष प्रकार से उत्पत्ति का वर्णन पुराण-ग्रन्थों में किया गया है । मेरे मत में ये सब लोग विधर्मों के और उनको हिन्दू बना लिया गया था ।

‘जो लोग स्वच्छ से दूसरे धर्म में चले गये थे पर अब फिर से हिन्दू धर्म में आना चाहते हैं उनके लिये प्रायश्चित्त का अनुष्ठान निस्संदेह उचित है पर जिनका परधर्म-ग्रहण धोर बबरदस्ती के कारण हुआ था—जैसे कश्मीर और नेपाल में—अथवा जो लोग कभी हिन्दू नहीं थे ऐसे लोग यदि हिन्दू समाज में आना चाहते हैं तो उन सबके लिये किसी प्रकार के प्रायश्चित्त का विधान नहीं होना चाहिये ।

मैंने कुछ साहस करके पूछा ‘स्वामीजी पर इन लोगों की जाति कौन सी होती ? उनका किसी न किसी जाति के अन्तर्गत रहना निजान्त आवश्यक है अन्यथा वे कभी भी इस विशाल हिन्दू-समाज में समास हो कर उससे एक न हो सकेंगे । हिन्दू-समाज में उनका यथार्थ स्थान कहाँ पर है ?

स्वामीजी आँतपूर्वक बोले ‘जो लोग पहले हिन्दू थे वे अबस्य ही अपनी पहली जाति में सौट जायेंगे और जो नये धर्मों में से अपनी जाति आप ही बना लेंगे ।’

वे कहते चले तुम्हें स्मरण होया कि बीप्पलों में वह बात पहले से ही बार्दी जाती है । हिन्दुओं की विभिन्न जातियों में से जिन्होंने अन्य धर्म ग्रहण कर लिया

का उन्होंने तथा ब्रह्मिणुओं में वैष्णवों के आश्रम में जाकर अपनी एक स्वतन्त्र हिन्दू जाति बना ली और यह जाति भी न कोई दुष्कर्म थी न हीन ही—बहु तो बख्शी सिद्ध जाति ही बनी। बाबाजी रामानुज से लेकर बंगाल के श्री वैद्य महाप्रभु तक समस्त वैष्णव आचार्यों ने यही किया है।

मैने पूछा "इस स्वतन्त्र जाति का विवाह-संस्कार आदि कहाँ होगा ?

स्वामीजी ने भास्य भाव से उत्तर दिया 'ज्यों आनकम जैसा काम रहा है, वैसा ही वे आपस में विवाह करेंगे।

मैने पूछा 'किर नामकरण की भी बात है। मेरी राय में ब्रह्मिणु तथा ब्रह्मिणुने स्वयम् का त्यागकर ब्रह्मिणु नाम रख लिया या उन दोनों का नया नामकरण होना उचित है। उनका आप जाति-भूषक नाम देंगे या अन्य कोई ?'

स्वामीजी सोचते हुए कहने लगे 'हाँ नाम का भी काशी महारब है।

वे इस विषय में और अधिक कुछ नहीं बोले। परन्तु उसके बाद मैने जो प्रश्न किया उससे वे मारतों उदीर्य से हो उठे। मैने पूछा 'स्वामीजी ये नयापत भोग हिन्दू-धर्म की विभिन्न शाखाओं में से अपने लिए किसी उपासना प्रणाली का निर्वाचन स्वयं ही कर लेंगे या आप उनके लिए किसी योग्य उपासना प्रणाली का निर्देश करेंगे ?'

स्वामीजी बोले, 'यह भी कोई चुष्टने की बात है ? वे अपने पक्ष का चयन आप ही कर लेंगे क्योंकि स्वयं चयन न करता हिन्दू-धर्म के मूल तत्व के विच्छेद है। हमारे धर्म का सार तो यही है कि प्रत्येक को अपने इष्ट के चयन का अधिकार है।

स्वामीजी की इस बात को मैने विधेय महत्वपूर्वक समझा। कारण मेरी समझ में मेरे सम्मुख इस महापुरुष ने वैज्ञानिक बुद्धि और सहानुभूतिपूर्वक दृष्टि से हिन्दू-धर्म के साधारण आचार्यों की आसोचना और अभ्यपन में संसार के अन्य किसी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक समय बिताया है और यह इष्ट निर्वाचन की स्वाधीनता का सिद्धान्त इतना उगार है कि सारा संसार इसमें स्थान पा सकता है।

इसके बाद दूसरे विषयों पर बार्तालाप हुआ। अन्त में प्रेक्षपूर्वक मुझसे विदा लेकर वे महान् बर्माचार्य अपनी सामंतेन उठकर मठ सीट गये और मैं भी बंगाल के ऊपर से उबड़ी तरंगों पर हिलती-डुलती विभिन्न आकारों की नौकाओं के बीच से होते हुए अपने कम्कटा-स्थित निवासस्थान पर सीट आया।



## अपने धर्म की रक्षा के लिये डट जाओ

माई सिन्हा यदि कोई व्यक्ति तुम्हारी माता का अपमान करे तो तुम क्या करोगे ?

मीमन् मैं उस पर दूढ़ पहुँगा । और उसको एक अच्छा पाठ पढ़ा दूँगा ।

'बहुत ठीक' उन्होंने कहा 'लेकिन अब यदि यही भारतीयता तुममें अपने धर्म जो इस राष्ट्र की सच्ची जननी है के प्रति होती तो तुम किसी भी हिन्दू बन्धु का ईसाई धर्म में परिवर्तन देखना चाहन नहीं कर पाते । तिस पर भी तुम यह मित्यप्रति होता देख रहे हो और तुम उसकी ओर से पूर्वतया उबासीन हो । तुम्हारी भ्रष्टा कहां है ? तुम्हारी वैयक्तिक कहां बपी ? तुम्हारी बाबाओं के सामने निरव प्रति ईसाई प्रचारक हिन्दू धर्म को पासी बैठे हैं और तब भी तुममें से किन्तने लोग हैं जो उसकी रक्षा के लिये बड़े होने को तैयार हैं, जिनका एक सास्त्रिक शीघ्र से जीतने शकता है ?

## भारतीय नारी—उसका अतीत, वर्तमान और भविष्य०

हमारे प्रतिनिधि लिखते हैं —

आखिर एक रविवार को बड़े सवेरे ही मैं सम्पादक महोदय का आदेश प्राप्त करने में समर्थ हुआ । भारतीय नारियों की सबस्था और उनके भविष्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द का महात्म्य जानने के लिये मैंने उनसे हिमा राव की एक मुन्धर उपस्थिति में भेंट की ।

मैंने जब स्वामीजी को अपने धाने का उद्देश्य पतसाया तो वे बोले 'बनो बड़ो टहल मारो । हम लोग उसी समय बाहर निकल पड़े । अहा ! कैसा मनोहर दृश्य था । ऐसा दृश्य संघार में शायद ही हो ।

कहीं भूप और कहां धाया ने इके मायों को काटते हुए हम मान्तिपूर्य धारों में खले जा रहे थे । वहीं धामीन बच्चे आनन्द से गेल कूर कर रहे थे और कहीं पारों मोर मुगहने सेठ महलहा रहे थे । ऊँचे-ऊँचे बूड देग रीसते थे धामीं के नील यवन को पार कर उसके परे खने जाना चाहते हैं । सेठों से कहीं पर कुछ इपक-बाताएँ हाथों में हथिया लिए भीठ मृतु के लिए बानदे के मुट्टे काटकर इकट्ठा कर रही थी तो खग कही सेबों की एक मुन्धर

बापिका विज्ञानी होती थी, जिसमें बुझों के नीचे साम कलों क डेर बड़े ही सुझाने सगते थे । फिर कुछ समय बाद ही हम खुद मीरान में जा पहुंच और हमारे सामने हिमाच्छादित मृन्न तिखर अन्नमाया की चीर कर अब्जुत सौंदर्य के साथ विद्यमान थे ।

ब्रह्म में स्वामी जी ने मीन मय करले हुए कहा 'आर्यों और सेमिटिक जातों के नारी सम्बन्धी आदर्श सर्वत्र एक दूसरे के विस्मृत विपरीत रहे हैं । सेमिटिक लोग स्त्रियों की उपस्थिति को उपासना-विधि में भार विप्लवस्वभ्य मानते हैं । उनके अनुसार स्त्रियों को किसी प्रकार के भय-कर्म का अधिकार नहीं है यहाँ तक कि बाह्यार के लिए परी मारना भी उनके लिए निषिद्ध है । आर्यों के अनुसार तो सहस्रमिथी के बिना पुरुष कोई धार्मिक कार्य नहीं कर सकता ।

ऐसी अस्पृशिता और स्पष्ट बाध से मैं तो आश्चर्यचकित हो गया । मैंने पूछा 'किन्तु स्वामीजी क्या हिन्दू-धर्म आर्यों-धर्म का मय विधेय नहीं ?

स्वामीजी ने कान्त स्वर में कहा 'आधुनिक हिन्दू-धर्म अधिकारण एक पौराणिक धर्म है जिसका उद्गम बौद्धकास क परभाव हुआ है । दयानन्द सरस्वती ने यह दर्शाया कि अद्यपि वार्हपत्य अभि में आहुति प्रदान करने की जो वैदिक क्रिया है उसके अनुष्ठान में सहस्रमिथी की उपस्थिति नितास्त अनिवार्य है, पर तो भी यह सातधामस्त्रिमा अमरा सुह-देवता की मूर्ति को स्पर्श नहीं कर सकती, बल्कि इस प्रकार की पुजा का प्रथम पौराणिक कास के उच्छर्ष से हुआ है ।

"अतः बापके अनुसार हमारे देश में पाया जाने वाला स्त्री-पुरुष के अधिकारों का भेद पूर्वतः बौद्ध-धर्म के प्रभाव के कारण है ?

"हाँ ! नहीं कहीं भी यह भ्रम पाया जाता है वहाँ तो मैं ऐसा ही सोचता हू । पाश्चात्य सारलोकता की आकस्मिक बाढ़ से प्रभावित होकर और पाश्चात्य नारियों की तुलना में अपन देश की नारियों की अस्तित्व विप्र देख कर हम भारत में नारी के प्रति असमानता के उनके आरोप को क्षुब्धता स्वीकार न कर लें । बिलकुल कई सदियों से भारत में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण होता रहा है जिससे हम स्त्रियों का विधेय संरक्षण करने को बाध्य हुए हैं । इस एक कण के न कि सभी जाति के प्रति हीन-वृत्ति के निष्ठा आरोप के प्रकाश में हम अपनी प्रजाओं के यथार्थ स्वरूप को समझ सकेंगे ।

'स्वामी जी तो क्या बाप भारतीय स्त्री की वर्तमान दशा से पूर्वतः अनुत्पत्त है ?

कदापि नहीं। पर स्त्रियों के सम्बन्ध में हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार बस उनको सिखा देने तक ही सीमित रहना चाहिये। उनमें ऐसी योग्यता ना बेनी होगी जिससे वे अपनी समस्याओं को स्वयं ही अपने ढंग से सुलझा सकें। अन्य कोई उनके लिए यह कार्य नहीं कर सकता और करने का प्रयत्न भी उचित नहीं है। हमारी भारतीय स्त्रियाँ अपनी समस्याओं को हल करने में संसार के किसी भी भाग की स्त्रियों से पीछे नहीं है।

स्वामीजी क्या आप बतलायेंगे कि हमारे देश में बौद्ध-धर्म के द्वारा यह बोध किस प्रकार पका हुआ जिसका अभी आपने उल्लेख किया ?

स्वामीजी— 'इस बोध का जन्म बौद्ध-धर्म के पतन-काल में हुआ। प्रत्येक मान्योक्तन किसी असाधारण विद्येपता के कारण ही संसार में सफलता प्राप्त करता है पर जब उसका पतन होता है, तब उसकी यह अविमानास्पद विद्येपता ही उसकी दुर्बलता का एक मुख्य उपादान बन जाती है। तदर्थेष्ट भगवान बुद्ध में संगठन करने की अमूर्त शक्ति की और इसी शक्ति के बल पर उन्होंने संसार को अपना अनुयायी बनाया था। किन्तु उनका धर्म केवल संन्यासियों के लिए ही उपयोगी था अतः उसका एक कुफल यह हुआ कि संन्यासी की मुद्रा तक सम्मानित होने लगी। फिर उन्होंने सर्वप्रथम मठ-प्रथा अर्थात् धर्म-संघ में रहने की प्रथा का प्रवर्तन किया। इसके लिए उन्हें बाध्य होकर स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा निम्न स्थान देना पड़ा क्योंकि प्रमुख भिक्षुणियाँ कुछ विविष्ट मठ-अध्यक्षों की अनुमति के बिना किसी भी महत्वपूर्ण कार्य में हाथ नहीं डाल सकती थीं। इससे उनके तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति तो अवश्य हुई अर्थात् उनके धर्म-संघ की एक मूर्तता बनी रही किन्तु उसके दूरगामी परिणाम अविष्ट हुए।

परन्तु स्वामीजी संन्यास धर्म तो बेवबिहित है।

'अवश्य संन्यास बेव प्रतिपादित है पर वहाँ स्त्री पुरुष का कोई भेद नहीं किया गया है। क्या तुम्हें स्मरण है कि विदेहराज जनक का राजसभा में किस प्रकार धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर महर्षि मातृवल्ग्न से बाद विचार हुआ था ? इस पाद-विवाद में ब्रह्मवादिनी वाचकनी (धार्मी) ने प्रधान भाग लिया था। उसने कहा था 'मेरे दो प्रश्न मानों कुशल अनुभारी के हाथ में के दो तीखे बाण हैं। वहाँ पर उत्तर देनी होने के सम्बन्ध में कोई प्रश्न तक नहीं उठाया गया है। तुम्हें विदित ही होगा कि प्राचीन गुरुकुलों में वासक और वासिकाएँ समान रूप से शिक्षा ग्रहण करती थीं। इससे अधिक साम्यभाव और क्या हो सकता

है ? हमारे संसूत माटकों को पड़कर देखो—अदुम्तमा का बास्पात पड़ो और फिर देखो टैनिसन की 'उमकूमारी' म हमारे लिए क्या कोई नयी जिज्ञा प्रय बाप प्राप्त हो सकती है ?

स्वामीजी आप में हमारी अतीत वीरक परिमा को इतने सुन्दर रंग से प्रकट करने की बड़ी मद्भुत समता है !

स्वामीजी शान्तिपूर्वक बाले 'सम्भव है इसका कारण यह हो कि मीने पुष्पी क रोगों कोनाओं का पर्यटन किया है । मंग तो बूढ़ विरवास है कि त्रिभ जाति मे सीता को उत्पन्न किया—बाहे बह उमरी कस्पना ही क्यों न हो—उस जाति में स्त्री-बादि के लिए इतना अधिक सम्मान और श्रद्धा है जिसकी तुलना संसार मे हो ही नहीं सकती । पारशान्य स्त्रियाँ ऐसे कई कानूनी बन्धनों से बकड़ी हुई हैं । त्रिभसे भारतीय स्त्रियाँ सबका मुक्त एवं अपरिचित हैं । भारतीय समाज में निश्चय ही दोष और अपचार दोनों हैं पर मही स्थिति पारशान्य समाजों की भी है । हमें यह कभी न भूलना चाहिये कि संसार के सभी मानों में प्रीति शोभतता और साधुता को अभिव्यक्त करने के प्रयास चल रहे हैं, और विभिन्न जातीय प्रयाएँ इन्हीं को समासम्भव प्रकट करने की प्रयाणी मात्र हैं । बहाँ तक माहस्त्व बने का सम्भव है मैं बिना किसी संशोक के कह सकता हूँ कि भारतीय प्रयाणी में अन्य देशों की अपेसा अनेक सद्गुण विद्यमान हैं ।

'स्वामीजी तो क्या भारतीय स्त्री-जीवन के सम्बन्ध में हम इतने संक्षुट हैं कि हमारे समय उसकी कोई भी समस्याएँ बड़ी हैं ?'

"बनों नहीं बहुत सी समस्याएँ हैं—और में समस्याएँ बड़ी गम्भीर हैं परन्तु इतने से कोई ऐसी नहीं है, वा 'सिगा' के हाउ हल न हो सके । पर हाँ जिज्ञा की सच्ची कल्पना हममें से कदाचित् ही किसी को हो ।

'स्वामीजी जिज्ञा की आप क्या परिभाषा देते हैं ?'

स्वामीजी ने स्मित-हास्य से कहा 'मैं परिभाषाएँ देने के विरक्त हू । पर इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि सच्ची जिज्ञा यह है, जिसमें मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास हो । यह केवल शर्तों का रटना मात्र नहीं है । जिज्ञा वा वास्तविक बर्ष है—व्यक्ति में योग्य बर्ष की वाक्रीमा एवं उसको कुशलतापूर्वक करने की पात्रता उत्पन्न करना । हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियों को ऐसी जिज्ञा की जाय जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को बनी प्रीति निभा सकें और संवमित्रा भीमा, बहुस्याबाई तथा

मीराबाई आदि भारत की महान् शैशियों द्वारा बनाई गई परम्परा को माने बढ़ा सकें एवं बीरप्रसू बन सकें । भारत की स्त्रियाँ पवित्र और स्वामूर्ति हैं क्योंकि उनके पास वह बल और शक्ति है जो सर्वशक्तिमान परमात्मा के शरणों में सर्वम्बार्पण करने से प्राप्त होती है ।

‘स्वामीजी इससे प्रतीत होता है कि आपके विद्यारामुदार विद्या में धार्मिक शिवा का भी समावेश होना चाहिए ।

स्वामीजी ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया ‘मेरा तो बड़ा विश्वास है कि धर्म शिवा का मेकरुण्ड ही है । हाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यहाँ धर्म से मेरा मतलब मेरा तुम्हारा या अन्य किसी का उपासना मत नहीं है । मेरे मत से अन्य विषयों के समान इस सम्बन्ध में भी शिवाक को ध्यान के मात और शारणा के अनुसार शिवा देना प्रारम्भ करना चाहिये तथा उसे उन्नत करने के लिये ऐसा सहज पथ दिखा देना चाहिये जिससे उसे सबसे कम बाधाओं का सामना करना पड़े ।

क्या ब्रह्मचर्य-मात्मन की वार्षिक धार्मिक महत्त्व देने का अर्थ मातृत्व और पत्नीत्व को समाज में उनके सर्वोच्च स्थान से बर्चित कर, वहाँ उस स्त्रीधर्म को प्रतिष्ठित करना नहीं है जो पवित्र वायित्तों से परे भावती है ?

‘तुम्हें स्मरण रहना चाहिये कि हमारे धर्म में स्त्री और पुरुष दोनों के लिये ब्रह्मचर्य की महिमा समान रूप से बतानी पड़ी है । तुम्हारे प्रश्न से यह भी सात होता है कि तुम्हारे मत में कुछ भ्रम पैसा हुआ है । हिन्दू धर्म में मान वात्मा का केवल एक ही कर्तव्य बतलाया गया है और वह है इस अनित्य और नश्वर ब्रह्म में नित्य एवं शाश्वत पद की प्राप्ति । उसकी प्राप्ति के लिए कोई एक ही बंधा हुआ मार्ग नहीं है । विवाह हो या ब्रह्मचर्य पाप हो या पुण्य जान हो या अज्ञान—इनमें से प्रत्येक की शार्थकता हो सकती है यदि वह इस धर्म लक्ष्य की ओर से जाने में सहायता करे । बस यहाँ पर हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म में महान् अन्तर है । क्योंकि बौद्धधर्म में जीवन का प्रपाद सक्य और वह भी मोटे ठौर पर केवल एक ही मार्ग से ब्रह्म ब्रह्म की शक्ति का अनुभव कर लेना मात्र है । क्या तुम्हें महाभारत में शिवा उस युद्ध योधी का वृत्तान्त विदित है जिसने अपने श्रेष्ठ से उत्पन्न अपनी प्रबल मानसिक शक्ति के प्रभाव से एक कौए और बगुल को जसम कर योगिक शक्तियों के प्रदर्शन में बन्धता मानी थी ? क्या तुम्हें स्मरण है कि एक दिन यही योधी किसी नगर में शार्थकता बतलाता है कि एक स्त्री अपने रोटी पति की सेवा-सुधया में निरत

है तथा एक धर्म मामक कसाई मांस को बेच रहा है परन्तु इन दोनों में अपने कर्तव्य का पुरा-पुरा पालन करके पूर्ण ज्ञान का साक्षात्कार कर लिया या ?

‘तो स्वामीजी आपका इस देश की स्त्रियों के लिए क्या संदेश है ?’

‘बही जो पुरुषों के लिये है । भारत और भारतीय धर्म के प्रति विश्वास और यत्न रखो । ऐश्वर्यानी बगो हृदय में उत्साह लये भारत में धम्म सेने के कारण सन्निवृत्त न हो, बरन् उसमें गौरव का अनुभव करो और स्मरण रखो कि यद्यपि हमें दूसरे देशों से कुछ सीना अवश्य है, पर हमारे पास दुनियाँ को देने के लिये दूसरे की अपेक्षा सहस्रगुना अधिक है ।

### भारतीय और पाश्चात्य नारी.

न्यूयार्क में भाषण देते हुए एक समय स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था—  
‘मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि भारतीय स्त्रियों की ऐसी ही बौद्धिक प्रवृत्ति हो, जैसी इस देश में हुई है । परन्तु वह उन्नति अभी अभीष्ट है, जब वह उनके पवित्र जीवन और सतीत्व को अनुप्य बनाए रखत हुए हो । मैं अमेरिका की स्त्रियों के मान और विद्वता की बड़ी प्रशंसा करता हूँ परन्तु मुझे यह अनुचित दिखता है कि भाव पुराणों को भसाइयों का रंग देकर विद्वाने का प्रयत्न करें । बौद्धिक विकास से ही मानव का परम कल्याण सिद्ध नहीं हो सकता । भारत में नीतिमत्ता और आध्यात्मिक उन्नति को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है और हम उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं । यद्यपि भारतीय स्त्रियाँ उन्नती विद्या-सम्पन्न नहीं हैं फिर भी उनका आचार-विचार अपि पवित्र होता है । प्रत्येक स्त्री को चाहिये कि वह अपने पति के अतिरिक्त सभी पुरुषों को पुरुषवत् समझे ।

प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि वह अपनी पत्नी के अतिरिक्त सभी स्त्रियों को मातृवत् समझे । जब मैं इन पाश्चर्य की जिसे भाव नारी-श्रम्यान् का पाप पहने हो अपने चारों ओर बैठता हूँ तब मेरा हृदय क्षीम से भर जाता है । जब ठक धार स्त्री-मुद्रण के मेम को भूषकर प्रत्येक व्यक्ति में मानवता का दर्शन नहीं करते तब तब इस देश की स्त्रियों की यथावत् उन्नति नहीं हो सकती । इस देश को प्राप्त किए बिना तो आपकी स्त्रियाँ क्लिप्त सं अधिक और कुछ भी नहीं और इसी कारण वहाँ इतने विवाह विच्छेद होते हैं । यहाँ

के पुरुष स्त्रियों के सम्मुख झुकते और उन्हें आसन प्रदान करते हैं परन्तु एक क्षण के उपरान्त वे उगड़ी चापमूसी करने लगते हैं वे उनके लक्ष शिशु सौन्दर्यकी प्रशंसा करना आरम्भ कर देते हैं । चापको ऐसा करने का क्या अधिकार है ? कोई पुरुष इतनी दूर तक जाने का चाहस ही कैसे कर पाता है ? और वहाँ की स्त्रियाँ उसको सहन भी कैसे कर लेती हैं ? इस प्रकार के आचरण से मनुष्य में निम्नतर भावों का उत्प्रेक होता है, उससे उच्च आदर्श की प्राप्ति सम्भव नहीं ।

हमें स्त्री-गुरुप के भेद का विचार मन में नहीं रखना चाहिए, केवल यही चिन्तन करना चाहिये कि हम सभी मानव हैं और परस्पर एक दूसरे के प्रति सद्भावहार और सहायता करने के लिये उत्पन्न हुए हैं । हमें यहाँ देखते हैं कि ज्यों ही किसी लक्ष्मण और लक्ष्मणी को अकेले होने का अवसर मिला त्यों ही वह लक्ष्मण उस लक्ष्मणी के स्व-साक्ष्य की प्रशंसा आरम्भ कर देता है और किसी स्त्री को विधिवत् पत्नी रूप में अंगीकार करने के पूर्व ही वह जो सी स्त्रियों से प्रेमाचार कर चुका होता है । मैं यदि इन विवाहेच्छुकों में से एक होता तो बिना किसी आश्चर्य के ही किसी का प्रियपात्र बन जाता ।

जब मैं भारतवर्ष में था और इन चीजों को केवल दूर से देखता सुनता था तब मुझे बताया गया कि उनमें कोई दोष नहीं है यह केवल मनोविनोद है । उस समय मैंने उस पर विश्वास कर लिया था । तब से अब तक मुझे बहुत यात्रा करने का अवसर आया है, और मेरा बड़ा विश्वास हो गया है कि यह अनुचित है यह अत्यन्त दोषपूर्ण है । केवल आप पाश्चात्यवासी ही अपनी जानें बचकर इसे निर्दोष कहते हैं । पाश्चात्य राज्यों का अभी भी यही धारणा ही धारणा के अतिरिक्त बचन और धनवान हैं । जब इन गुणों में से किसी एक के प्रभाव में ही मनुष्य कितना क्षय करने कर आसता है तब वहाँ के तीनों चारों एकज हों वहाँ कितना भीषण बनन हो सकता है ? वहाँ का तो फिर बहना ही क्या । अतः सावधान !

### सायनाचार्य का पुनर्जन्म

स्वाधीनी—क्या तुम जानते हो कि मेरी धारणा है कि सम्भवतः सायनाचार्य ने ही वेदों पर अपने भाष्य का पुनरुद्धार करने हेतु मीनसमूह के रूप में पुनर्जन्म लिया है ? मेरी यह धारणा बहुत दिनों से बनी हुई थी । मीनसमूह से घँट करने के परभाव मेरी यह धारणा बड़ा ही बनी । अपने देव में भी तुम्हें आश्चर्य कोई ऐसा विद्वान न मिलेगा जिसका वेदों और वेदान्त में इतना प्रवेक हो और जो इतना सम्भवसायी हो । और इस सबके ऊपर, उनमें भी रामकृष्ण

परन्तु इसके प्रति कितनी अज्ञानता है ! क्या तुम्हें पता है कि वे उन्हें दैवी अवधार मानते हैं ? और जब मैं उनका बहिष्कार या तो उन्हें मेरे प्रति कितने बहिष्कार स्पेह का परिचय दिया । उस बूढ़ पुत्र्य एवं उनकी पत्नी के दर्शन कर मुझे समाधानों के अन्तर्गत अत्यन्त बहिष्कार और अस्मिता के समान विचार रहे हैं । मुझे विश्वास करते समय उस बूढ़ मनीषी की बातें अत्यन्त-पूर्ण हो जायीं ।

शिष्य—किन्तु धीमन् ! यदि आप स्वयं मैत्र्युत्तर बन कर जाये हैं तो उन्होंने इस पवित्र मारुत भूमि पर जन्म न लेकर मोक्ष रूप में जन्म लेना क्यों उचित समझा ?

स्वामीजी—मैं कार्य हूँ और दूसरा मोक्ष—यह मेरा नाम अज्ञानवत् उत्पन्न होता है । किन्तु जो ज्ञान के अयोग्यताओं का नाप्यकार है, उसके निकट अज्ञान और अहिंसा कहां ? उसके लिये वे सब कार्यहीन हैं । वह मानवता के अन्तर्गत के लिये अपनी इच्छानुसार कहीं भी मानव देह ग्रहण कर सकता है विशेष कर वह ऐसे देश में जो वैभव और विद्वता दोनों में सर्वोपरि है जन्म लेना न चुनते, तो इन विद्वान् जनों के प्रकाशन हेतु उन्हें इतनी विद्या अन्तर्गत कहां से उपलब्ध होती ? क्या तुमने नहीं सुना कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अत्यन्त प्रकाशन के लिये लक्ष्य ही लाख रुपये प्रदान किये थे ? किन्तु यह अन्तर्गत भी पर्याप्त न निकली । इस देश में सैकड़ों वैदिक पण्डितों को वास्तविक वेतन के अभाव पर इस कार्य के लिये जुटाया गया । क्या किसी ने इस देश में इस युग में ज्ञान के लिये इतनी उत्कृष्ट उपकरण देखी है ? ज्ञान और सत्य के लिये धन का इतना उदार विनियोग देखा है ? मैत्र्युत्तर ने अपने आत्मकथन में स्वयं लिखा है कि पञ्चीस वर्ष उन्होंने केवल पौडुतिनि तैयार करने में मर्यादा ! उस युद्ध में बीस और मर्यादा ! आचार्य अनुप्य के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह एक प्रकाशन के हेतु अज्ञान के वैचारिकताओं तक स्वयं को रगड़ता रहे । जब हम पर विचार तो करो । इसके बाद यदि मैं कहूँ कि वह सामान्य स्वयं है तो क्या यह बड़ी कल्पना की उद्धान मात्र है ?

### आर्य और योरोपीय सभ्यताओं का सामा-दाना\*

यदि हम सत्य को सत्यता का रूपक मानें तो योरोपीय सभ्यता के ये उप-कार्य हूँ — बुरा तट पर स्थित एक अमरीकीय पहाड़ी प्रदेश उत्तका कथा

\* आचार्य और अनुप्य के लेख



बना और बनेक आवियों की समष्टि से पैदा हुई एक बलिष्ठ तथा सदा युद्ध-सौम्य सम्मिश्र जाति इसकी रई हुई। इसका नामा हुआ बुद्ध। अपनी और समाज की रक्षा के लिये जो तलवार बना सकता है वही लड़ा हुआ। जो तलवार बनाना नहीं जानता वह स्वाधीनता का विसर्जन कर किसी और की अधःश्रम में रह पीनम म्पतीत करने मना। इस बस्त्र का नामा हुआ व्यापार बलिष्ठ्य। इस सम्मता का साधन था—तलवार सहायक बने—साहस तथा आठरिफ सामर्थ्य, और उद्देश्य है—शौकिक और पारशीकिक सुख-प्राप्ति।

### हमारी सम्मता शान्तिप्रिय है

अब हम अपनी सम्मता को देखें। हम आर्य लोभ शान्तिप्रिय हैं, हमारा व्यवसाय कृषि प्रमाण था और हम केवल इतने में परम सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव कर सते थे यदि हम अपने परिवार का बिना किसी बाधा के पालन-पोषण कर पाते।

ऐसी जीवन-रचना में हमारे पास पर्याप्त अवकाश था। अत हमें चिन्तन करने एवं सम्म बनने के लिए पर्याप्त अवसर मिल सका। हमारे मनक राजा अपने हाथों से हम भी बनाते थे और उत समय के सर्वश्रेष्ठ आरमबिद् भी थे। वही आरम्भ से ही ऋषि-मुनियों और योनिर्षों का जन्मोद्भव हुआ था। वे लोग आरम्भ से ही जानते थे कि संसार मिथ्या है। लड़ना-सगड़ना बेकार है। जिस जानम्ब की तुम जीव कर रहे हो वह तो केवल 'शान्ति' में ही निहित है और वह शान्ति निहित है ऐहिक सुखोपभोगों के परित्याग में। जानम्ब का वास मानसिक उत्सखि और शौकिक विकास में है न कि शारीरिक भोगों में। इन आरमबिर्षों ने ही अंयत्नों को कृषि-योग्य बनाकर सम्मता का विस्तार किया।

इस प्रकार परिष्कृत भूमि पर वैदिक राजावैरी की स्थापना हुई और भारत के निर्मल आकाश में यज्ञों का पवित्र बुझा उठने लगा। उस शान्तिमय वातावरण में वैदिक धर्मित और प्रतिष्पन्नित होने लगे और पाद बैस आदि सब पशु निवर्षक विचरने लगे। अब तलवार का स्थान विद्या और धर्म के पैर के पीचे हो गया। उस का काम रह गया सिर्फ धर्म-रक्षा करना तथा अनुप्य एवं अन्य प्राणियों का परिचाय करना। बीरों का नाम साधक वाता-अभिय पड़ा। हम-तलवार आदि सबका अधिपति नियामक हुआ—धर्म। वही राजाओं का राजा है। अणु के निवामल हो जाने पर भी वह सदा प्रामुत्त रहता है। धर्म के आभय में सभी स्वाधीन रहते थे।

## आर्यों के आगमन का निष्पत्ता योरोपीय सिद्धांत

और तुम्हारे योरोपीय पंडितों का यह कथन कि आर्य लोग किसी अन्य देश से आकर भारत पर सपट पड़े, और वे वहाँ के मूल निवासियों का समुसोन्धेदन कर उनकी भूमि को बसपूर्वक छीन कर वहाँ पर बस गये, निरी मूर्खता और बाहिमात बात है। आश्चर्य तो इस बात का है कि हमारे भारतीय विद्वान् भी जन्हीं के स्वर में स्वर मिलाते हैं और मही सब सूठी बातें हमारे दास-बन्धों को पढ़ाई जाती हैं। यह शोर बरमाय है।

मैं स्वयं अल्पत हूँ विद्वता का दावा नहीं करता किन्तु जो समझता हूँ उसे ही लेकर मैंने पेरिस की कांग्रेस में इसका प्रतिपाद किया था। मैं अनेक भारतीय एवं योरोपीय मनीषियों से इस विषय पर चर्चा कर रहा हूँ और आश्चर्य करता हूँ कि समय बिताने पर मैं इस निष्पत्ता सिद्धान्त की अनेक आन्तरिक असंगतियों को नहीं कहूँगा। मेरा आप सोचो से, अर्थात् भारतीय पंडितों से भी यही अनुरोध है इत्यादि अपने प्राचीन ग्रन्थों एवं शास्त्रों की अच्छी प्रकार छान-बीन कीविधे और अपने स्वतन्त्र निष्कर्ष निकालिये।

योरोपियनों का जिस देश में जीका निजता है वहाँ के आर्य निवासियों का नाम करके स्वयं मौख से रहने मारते हैं इसलिए वे समझते हैं कि आर्य लोगों ने भी विसा ही किया होगा। यदि वे पश्चिमवासी अपने स्वदेश में केवल अपने सीमित साधनों पर ही पूर्णतया निर्भर रहकर जीवनयापन करते रहते तो उनका यह विचार जीवन उनकी अपनी सम्पत्ता की कसौटी पर ही मूर्खता आचारों का जीवन कहलाता। अतः उन्हें दुनिया भर में जम्पत्तों के समान यह आश्चर्य ब्रूना पड़ता है कि वे झूट-पाट एवं हत्या के द्वारा दूसरों की भूमि के लोचन पर स्वयं सुखोपभोग कर सकें। इसीविधे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि आर्य लोगों ने जो विसा ही किया हीया।

किन्तु तुम्हारे पास इस आश्चर्य के पक्ष में क्या प्रमाण है। केवल अनुमान ? तो कल्पना की अपनी इन सङ्गाओं को अपने पास ही रखो।

किन्तु वेद अथवा सूक्त में तुमने पढ़ा है कि आर्य दूसरे देशों से भारतवर्ष में आये ? इस बात का प्रमाण तुम्हें कहाँ मिलता है कि उन लोगों ने जयंती आर्यों को भार-काट कर वहाँ निवास किया ? इस प्रकार की बाहिमात बातों से क्या लाभ है ? तुम्हारा रामायण का अल्पत निरर्क है। फिर व्यर्थ ही उसके आधार पर यह सङ्केत झूठ क्यों पड़ रहे हो ?

## रामायण आर्यों द्वारा अनायों की विजय का उपाख्यान नहीं

यसो रामायण क्या है ? क्या आर्यों के हाथ एभिग भाछ की वंशो जातियों पर विजय की गाथा ? बाहू क्या खूब ? रामचन्द्र सुसम्भ कार्य राजा थे । पर उन्होंने किसके साथ लड़ाई की थी ? लंका के राजा रावण के साथ । अब जब रामायण पढ़ कर देखो तो पता चलेगा कि वह रावण सम्मता में रामचन्द्र से बड़ा बड़ा ही वा कम नहीं । लंका की सम्मता बबोध्या से कम क्वापि नहीं उठे कहीं बढ़ बढ़ कर थी । फिर प्रसन्न उठता है कि बानराजि के मित्र और सहयोगी बन गये थे और यह भी बताओ कि रामचन्द्रजी और मुहू के कौन से राज्यों को अपने राज्य में सम्मिश्रित कर लिया ?

कार्य, सम्मता बपी बरन का करघा है । एक बिलास उच्च समस्त प्रदेस बिस पर सब-सब लीकारोहक योय्य बिलास नब-जदियां प्रबहमान हैं । इस बरन की बई बनी है उन नाता प्रकार की बतिसम्भ बर्बसम्भ एवं असम्भ जातियों को मिलाकर, जो प्रबालवया कार्य हैं और इसका राजा है बर्बामाचार । इसका बाना है मानव प्रकृति की बंगमूल संवर्ष और स्वर्षा की प्रबृत्तियों पर बिक्रय ।

ये योरोपीय लोगो ! क्या मैं तुमसे पूछ सकता हूँ कि तुमने अब तक किस देश की बजा को मुपाट है ? जहाँ कहीं तुमने बुर्बस जाति को पाया, उसका समुलोच्चाटन कर दिया और उसकी निवास-भूमि में तुम लुब बर गये और ने जातियाँ एकत्र नामधेय हो गयीं । तुम्हारे बतरिका का क्या इतिहास है ? तुम्हारे बाल्ट्रिकिया, स्क्रूजीलैण्ड प्रहास महासागर के डीपसमुह और बर्षीका का क्या इतिहास है ? बहाँ की मूस जातियाँ बाब कहां है ? उनका समुल उच्चाटन कर दिया गया । तुमने उनका बंगली पयुवों के समान ब्याचक संहार कर बामा । जहाँ तुममें यह सब करने का सामर्थ्य नहीं वा केवल बहीं बन्ध जातियों बभी तक बीबित रह सकी हैं ।

भारत ने तो ऐसा काम कभी भी नहीं किया । कार्य भोग बड़े बयामु और उबार थे उनके बबण्ड समुद्रवपु बिलास हूबम में बतिसमानबीब प्रतिभा सम्पन्न मस्तिक में इन सब मानवदायक प्रतीत होने बामे किन्तु धार्मिक और पात्रबिक ब्यबहारों ने किसी समय भी स्वान नहीं पाया और मेरे निरुद्ध देस जातियों में तुमसे पूछता हूँ कि यदि बाबों ने यहाँ के मूल निवासियों का उनकी

भूमि पर बसने के लौम में समुत्सोक्तेहन कर दिया होता तो क्या यहाँ वर्ष व्यवस्था की सृष्टि हो पाती ?

यूरोप का उद्देश्य है—सबको ताक करके स्वयं अपने को बचाये रखना ।  
 जापों का उद्देश्य था—सबको अपने समान करना जबवा अपने से भी बड़ा करना ।  
 योरोपीय सभ्यता का साधन तलवार है, और जापों की सभ्यता का उपाय—वर्ष विषास ।  
 विभिन्न वर्षों में बिनाजन की यह व्यवस्था ही सभ्यता का बह सोपान है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को उसके संस्कारों एवं अधिकार के अनुरूप उतरोत्तर ऊपर उठने का अवसर मिलता है ।  
 योरोप में केवल बलवान को ही शक्ति का अधिकार है, दुर्बल के भाग्य में तो केवल मृत्यु का विधान है इसके विपरीत भारतवर्ष में प्रत्येक सामाजिक नियम दुर्बलों की रक्षा के हेतु ही बनाया गया ।





**भाग तीन**

**चिन्तन-कण**

**एवं**

**प्रताड़ना**



## स्फुट विचार

प्रत्येक पुराण में कोई न कोई महासत्य अनुस्यूत है\*

प्रत्येक पुराण का मूसाधार कोई न कोई ऐतिहासिक सत्य है। पुराणों का जहेस्य है—मनुष्य को सूक्ष्म सत्य का उसके विभिन्न रूपों में परिचय कराना। और यदि उनमें कोई ऐतिहासिक सत्यता न हो तो भी वे अपने द्वारा उपदिष्ट सर्वोच्च सत्य के सम्बन्ध में प्रमाण स्वरूप हैं। उदाहरण के लिये रामायण को ही लें। अरिष निर्माण की दृष्टि से उसका अभ्ययन करने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि राम नामक कोई व्यक्ति कभी हुआ ही हो। रामायण या महाभारत के प्रतिपाद्य सत्य की प्रामाणिकता केवल राम और कृष्ण के व्यक्तियों की ऐतिहासिकता पर निर्भर नहीं करती। कोई चाहे तो यह बारम्बार रक्त सच्यता है कि वे विभूतियाँ कभी हुई ही नहीं किन्तु सच ही उसे इन रत्ननामों को उनके द्वारा मानवता के समस्त प्रतिपादित महान् विचारों के बारे में सर्वोच्च प्रमाण मानना होना।

हमारा दर्शन अपनी सत्यता के लिये किसी एकाग्र विभूति पर निर्भर नहीं है। कृष्ण ने संसार को गयी या मौनिक बात नहीं सिखायी न ही रामायण ऐसी कोई बात कहने का वाका करती है जो शास्त्रों में नहीं थी। यह ध्यान रखने की बात है कि ईसाई धर्म ईसु के बन्धन में इस्लाम मोहम्मद के बिना और बौद्ध मत बुद्ध के बन्धन में नहीं टिके उर सच्यते। किन्तु हिन्दू धर्म व्यक्ति गिररोस है। और किसी पुराण में समिहित दार्शनिक सत्य के मूल्यांकन के लिये हमें इस प्रस्न में उनसने की आवश्यकता नहीं कि उसमें बतित पाम वास्तविक है वा काल्पनिक।

\*एक भेद से उद्धृत [‘हिन्दू’ मन्नास करवती १८१७]



पुराणों का उद्देश्य जनसाधारण को त्रिस्तित करना है । उनके रचयिता ऋषि-मुनियों ने कुछ ऐतिहासिक पात्रों को छांट लिया और उन पर अपनी कल्पनानुसार अत्युच्च या अतिनिम्न गुण आरोपित कर दिये तथा मानवी भाव एवं के मतिक नियम प्रतिपादित कर दिये । क्या यह अनिर्णय है कि रामायण में बर्णित राममुष्ठी रावण का अस्तित्व रहा ही हो ? दशमुख का व्यक्तित्व कास्पनिक है या ऐतिहासिक इस विचार से असम्यक रह कर वह जिस महाकाव्य का प्रतीक है उसको समझना चाहिए । तुम कृप्य का भीर भी आकर्षक विषय कर सकते हो वह विषय केवल तुम्हारे भावों की खेप्टा पर निर्भर करेगा । किन्तु पुराणों में लिखित महान् दार्शनिक सत्य एवं भी नहीं खोया ।

### प्रतिभियात्मक आम्बोसनों की शीघ्र मृत्यु\*

दक्षिण में संकर और रामायण के आम्बोसनों के पक्षान् वहाँ राष्ट्रीय परम्परा के अनुसार संयुक्त जातियों और एकल साम्राज्यों का उदय हुआ । जिस समय उत्तरी भारत पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक मध्य एशिया की विजेताओं के चरणों में सोट रहा था उस समय दक्षिण भारत ही भारतीय धर्म संस्कृति और सम्पत्ता का दुर्गत्व बना । मुसलमानों ने दक्षिण को जीतने के लिये सतासियों तक प्रयास किया किन्तु उन्हें वहाँ बृहत्ता से पैर जमाने सामर्थ्य अपनी बेह विजय को पूर्ण करने के निकट पहुँच रहा था उसी समय दक्षिण के पठारों और पर्वतों में अपने सङ्घान् रूपक अस्वारोहियों को सैरान में उतार दिया । रामदास और तुकाराम के द्वारा प्रचारित धर्म के लिये वे और अपने प्राणों की बलि देने के लिये भी बृह संकल्प थे । बोड़े ही समय में विनाश मुगल-साम्राज्य का केवल नाम भर रह गया । इस मुस्लिम काग में उत्तरी भारत में जितने भी आम्बोसन चले उनका एक ही प्रयास रहा कि जनता को विजेताओं का धर्म अमानने से विरत करना । ये विजेता अपने धर्म के अन्तर्गत रामानन्द स्त्री, बाबू चैतन्य व नाटक के द्वारा स्थापित सभी पन्थों के सभी सन्तों ने परस्पर दार्शनिक मतभेद होते हुये भी मानव-समता का समान रूप से प्रचार किया । उनकी समस्त शक्ति जनता पर इस्लाम के विजय की बैरवत

\* भारत का ऐतिहासिक विकास से उन्मूठ

बाद को रोकने में ही बर्ब हो गयी और नये विचारों तथा आकांक्षाओं की जन्म देने का उनको अवकाश हो नहीं मिल सका। बर्षापि उन्होंने जनता को उसके प्राचीन बर्ष पर अभिष्टित रखने और मुसलमानों के कट्टरवाद को प्रम करने में निस्सविह सफलता पाई तथापि वे केवल जीने के लिये संघर्ष करते रहे। वे केवल जात्यरसावादी थे।

किन्तु सिद्धों के बचप्य युव श्री याबिन्दर सिंह के रूप में उत्तर भारत में भी एक महान् धर्मत्रस्तक उठे जो नृजनतात्मक प्रतिभा से युक्त थे। उनके आध्यात्मिक प्रयासों का परिणाम प्रख्यात राजनीतिक संघटन सिद्ध पंथ के उदय के रूप में हुआ। हमें भारत के संपूर्ण इतिहास में यह बात दिखाई देती है कि प्रायः प्रत्येक आध्यात्मिक उत्थान के पीछे एक के छोटे या बड़े मास में राजनीतिक एकता स्थापित हुई, जिसने उसको जन्म देने वाली मूल आध्यात्मिक आकांक्षा को बलवती बनाया है। किन्तु मरहटा एवं सिख राज्या के प्राधुर्भाव के पूर्व जो आध्यात्मिक जागृति जायी वह प्रतिजिवात्मक थी। पूना या लाहौर के राज दरबारों में उच्च बौद्धिक प्रभा की एक भी निरूप को खोजने का प्रयत्न निष्फल होया जो मुसल दरबार को बरे रहती थी। फिर यामक और बिजयनगर साम्राज्यों की बौद्धिक आभा से इसकी तुलना बहुत दूर की जाठ है। बौद्धिक दृष्टि से यह भारतीय इतिहास का सबसे अन्धकारमय काल था। वे दोनों साम्राज्य जो मुसलमानों के बिचक जन-उन्माद और भुजा का पूर्व प्रतिनिधित्व करते हुए उत्कापाठ के यथान भारतीय मन पर बमके उठी क्षम प्रेरणा-सूत्र्य हो गये बर के पुषा के मन्त्र मुसलमानों के साम्राज्य को लंढ-अंकित करने में समर्थ हो गये।

### पहले 'मनुष्य निर्माण' करो

समस्त स्वस्व सामाजिक परिवर्तन आन्तरिक आध्यात्मिक क्षमियों की अभिष्पलित मास हैं। यदि वे आन्तरिक क्षमियाँ बलवती एवं समुत्थित हैं तो समाज तदनुसार अपनी रचना स्वयं कर लेया। प्रत्येक व्यक्ति को अपना उच्चार स्वयं करना होगा। कोई अन्य उपाय नहीं है। ऐसा ही राष्ट्रों के साथ होता है। फिर प्रत्येक राष्ट्र की महान् सामाजिक व्यवस्थायें उसके अस्तित्व की आचारणिता है और उन्हें किसी दूसरी जाति के साने में नहीं डाला जा सकता। जब तक उनसे शैल व्यवस्थाओं का विकास न हो तब तक पुरानी व्यवस्थाओं को मल्ट करना आरम्भाव होया। विकास सर्वत्र बीरे-बीरे होया है।

इन व्यवस्थाओं में दोष निकालना बड़ा सरस है क्योंकि सत्री में कुछ न कुछ अपूर्णता होती है। किन्तु मानवता का सफ़ा कसबा बड़ी कठता है या चाहे जिन व्यवस्थाओं के व्यर्थपन रहने वाले व्यक्ति को उसकी अपूर्णताओं पर विजय पाने में सहायता दे। व्यक्ति के ऊपर उठने पर समाज और उसकी व्यवस्थाओं का ऊपर उठना आवश्यकता है। शीलवान लोग बराबर प्रथाओं और नियमों की उपासना कर देते हैं और उनकी जगह से सिते हैं प्रेम सहामुक्ति और प्रायश्चित्त पर आधारित संशुद्ध नियम। बही सफ़ा सुखी है जो इतना ऊँचा उठ सके कि उसे न्यूनतम कानूनी पुस्तकों की आवश्यकता यह बाय और जिस इस या उस व्यवस्था के लिये मायापन्थी करने की आवश्यकता ही न पड़े। सत्पुण्य समस्त नियमों से ऊपर होते हैं और अपने साधनों को वे चाहे जिन परिस्थितियों में रहे हों ऊपर उठने में सहायता प्रदान करते हैं।

अतएव भारत का उदार व्यक्ति के आत्मिक बल और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने अन्तर देवत्व के साक्षात्कार पर निर्भर करता है।

उपासना एकान्त में होती है समूह में नहीं\*

हम कहते हैं कि आत्मिक उपासना का रूप कभी सामूहिक नहीं हो सकता। धर्म की सच्ची साधना प्रत्येक व्यक्ति का निजी विषय होता चाहिये। मेरा अपना कोई भाव हो सकता है किन्तु मुझे उसे पबित्र और मुक्त रखना चाहिये क्योंकि मैं जानता हूँ कि आपका भी वही भाव होना आवश्यक नहीं है। पूछते हैं प्रत्येक के सामने यह डिटोरा पीटकर कि मेरा भाव क्या है, स्पष्ट उत्तर देना कष्ट ? अथवा लोग आकर मुझसे मझने लगेंगे। यदि मैं उन्हें अपना भाव न बताऊँ तो वे ऐसा नहीं करने किन्तु यदि मैं सबको बताता हूँ कि मेरा बहुत भाव है तो वे सब निश्चय ही मेरा विरोध करेंगे। अतः उसकी सच्ची करने से लाभ ही क्या ? इस इष्ट को मुक्त ही रखना चाहिये। वह केवल पुम्हारे और ईश्वर के बीच की वस्तु है। धर्म के वैज्ञानिक पथ का विवेचन एवं प्रवचन सार्वजनिक तौर पर किया जा सकता है उसे सामूहिक रूप भी दिया जा सकता है किन्तु उच्चतर धर्म-साधना को सार्वजनिक रूप नहीं दिया जा सकता। बापेस मिससे ही मैं अपनी आत्मिक साधनाओं को प्रकट नहीं कर सकता। इस स्वीय और उपहास का क्या परिणाम होता है ? यह धर्म का

\* 'व्यक्तिगत पर व्याख्या' से उद्धृत

उपहास है ईश्वरकोह है। इसका पद सुनै कर्तमान गिरजाधरों में देखने को मिल सकता है। यद्युक्त इस धार्मिक कथापर को कैसे सहन कर सकते हैं ? वहाँ सैनिक जीवन का सा वृत्त रखा है। 'बन्दूक कम्बे पर से जाओ। सीधे मुको चिताव उठ्यो' जाति-आदि सब कुछ यंत्रणत् नियमित, पांच मिनट तक अनुमति पांच मिनट तक तर्क पांच मिनट तक प्रार्थना—सब पूर्व नियमित। इन स्वार्थों के बर्न को हानि पहुँचाई है। इस गिरजाधरों में भी भर कर चिन्तों यत वारों एवं धार्मिक विषयों का विवेचन हो किन्तु जब उपासना का प्रश्न आये जो कि बर्न का वास्तविक व्यावहारिक बंध है, तब वह ईशु के इन शब्दों के अनुकूल ही होना चाहिये 'जब तु प्रार्थना करे, तो पूर्णतया बन्दर्नूहा में प्रविष्ट हो, उसका जब तू द्वार बन्द कर से तब वहाँ एकाम्त में अपने परमपिता से प्रार्थना कर।

समस्त संसार में तुम किसी न किसी रूप में मूर्तिपूजा पाओगे। कहीं वह मूर्ति मनुष्याकार है जो कि उतका सर्वोत्तम रूप है। यदि मैं किसी मूर्ति की उपासना करता चाहूँ तो मैं उतका मानव रूप पसन्द करूँगा न कि पशु, भवन या अन्य कोई रूप। एक सम्प्रदाय सोचता है कि एक विशिष्ट रूप ही मूर्ति का सही प्रकार है अन्य सोचता है वह रूप कदापि है। स्तिर्न सोचते हैं कि यदि ईश्वर कबुतर के रूप में आये तो ठीक किन्तु यदि वह मत्स्यावतार लेकर आये वैसे कि हिन्दुओं की धारणा है तो वह मूर्ते हैं मित्त अम्बबिस्वात्त है। बहुरियों की धारणा है कि यदि मूर्ति का रूप ऐसा हो जिसमें 'एक सन्दूक पर बैठे हुए दो वेकपूत और एक पुस्तक' दिखाई जाय तो वह बिल्कुल ठीक होया किन्तु यदि मूर्ति स्त्री या पुरुष रूप में है तो वह भवानक है। मुसलमानों का विश्वास है कि मयात्र पड़ते समय यदि वे पश्चिम की ओर मुंह कर दाबा की मस्जिद और उसके पश्चिम 'उने अस्तब' (काला पत्थर) का कल्पना-चित्र धरने मस्जिद में ला तर्कें तो वह बहुत अच्छे रहेगा। किन्तु यदि उत कल्पना-चित्र में गिरजाधर का आन हो वह और मूर्तिपूजा। वही सोच है। किन्तु बर्न के धार्मिककार की यह भावनाक सीढ़ियाँ हैं।

अनायास समाधि अवस्था पाने से हानि\*

बोपी सिखाता है कि मन स्वर्न बुद्धि से परे एक उच्च अवस्था में पहुँच जाता है जिसे समाधि अवस्था कहते हैं। और जब मन उत अवस्था में पहुँच

\* 'उपमोष' से उद्धृत

जाता है तब उसे तर्क-बुद्धि से परे अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है। उस मनुष्य को परामीतिक एवं अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त हो जाता है। तर्क बुद्धि के परे जाने की सामान्य मानव-संज्ञति को पार करने की इस अवस्था को कभी-कभी ऐसा व्यक्ति भी बनायास प्राप्त कर जाता है जिसे उसकी सास्त्रमुक्त प्रचारी का ज्ञान नहीं है। वह उस अवस्था को मार्गो संयोग से पा जाता है।

योगी कहते हैं कि इस अवस्था को संयोग से पा जाना बहुत पटरनाक होता है। ऐसे अभिकांक्ष यामनों में मस्तिष्क विकृत हो जाने का मय रहता है। और निरपवाद रूप में तुम पाओगे कि ऐसे सब लोग जो समाधि अवस्था की बिना समझे ही संयोगवशात् उसमें पहुँच गये बहुत महान् होने पर भी, अंधेरे में घटकते रहे और सामान्यतया अपने समस्त ज्ञान के उपपन्न भी के कुछ विविध अन्धविश्वासों के अधीन हो गये। वे मतिप्रम के आसानी से शिकार हो जाते हैं। मोहम्मद का दावा था कि एक दिन उन्हें एक पुका में जिब्राइल नामक एक देवदूत मिला था और स्वर्गिक आत्म 'हृत्क' पर बैठकर उन्हें स्वर्ग में गया था। किन्तु ऐसी बातों के बलावा मोहम्मद ने कुछ बर्भुत सत्त्वों का उद्घोष किया है। यदि तुम कुरान पढ़ो तो तुम्हें उसमें अन्धविश्वासों में निपटित बर्भुत सत्य भी मिलेंगे। इसका ज्ञाप क्या स्पष्टीकरण देने? उस व्यक्ति को असौकिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु वह प्रेरणा उन्हें बनायास ही प्राप्त हा गई। उसके लिये उन्होंने सास्त्रीय पद्धति से योगाभ्यास नहीं किया था और जो कुछ कर रहे थे उसके कारणों को नहीं जानते थे। मोहम्मद ने संसार का विठना भला किया उसका विचार करो और अपनी कूटरबाधिता के कारण उन्होंने संसार का विठना बका अपकार किया इसकी भी कल्पना करो। उन उपदेशों के कारण जो करोड़ों मनुष्य मीठ के घाट उतारे गये जो असंख्य माठामें अपने बच्चों से बंधित कर भी गयीं जो बच्चे अनाथ हो गये बेश के बेश उजाड़ बिये गये करोड़ों-करोड़ों लोग मार डाले गये—अब इसकी भी कल्पना करो।

इस प्रकार हम मोहम्मद और अन्य महान् धर्मोपदेशकों के जीवनो के अध्ययन से इस संकट को जान सकते हैं। किन्तु साथ ही हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि उन सभी को असौकिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी। अब कभी कोई बर्भुत प्रवर्तक अपनी भावुक प्रकृति के बलीभूत हो समाधि अवस्था में पहुँचा तभी वह वहाँ से न केवल सत्य के कुछ कण छाप सामा अपितु कुछ कूटरबाधिता कुछ अन्धविश्वास भी छाप माया जिन्होंने संसार को उठनी ही जानि पहुँचाई,

कितनी जित उसके उपदेशों से साम पहुँचा। असमयियों के इस डेर में जिसे हम जीवन कहकर पुकारते हैं कोई संगति बैठाने के लिये हमें तर्क-बुद्धि के परे जमा होगा। किन्तु उस स्थिति को शास्त्रीय पद्धति से सनै-सनै सतत्-अभ्यास द्वारा समस्त अन्धविश्वासों से मुक्त होकर प्राप्त करना ही उचित होगा।



जाता है तब उसे ठरक-बुद्धि से परे अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है । जब मनुष्य को परमार्थिक एवं अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त हो जाता है । ठरक बुद्धि के परे जाने की, सामान्य मानव प्रवृत्ति को पार करने की इस अवस्था को कभी-कभी ऐसा व्यक्ति भी बनायास प्राप्त कर जाता है जिसे उसकी वास्तव्युक्त प्रणामी का ज्ञान नहीं है । वह उस अवस्था को मालों संशय से वा जाता है ;

योगी कहते हैं कि इस अवस्था की संयोग से वा जाता बहुत कठोरताक होता है । ऐसे अधिकोक्त मामलों में मस्तिष्क विच्छिन्न हो जाने का भय रहता है । और निरपवाद रूप में तुम पाओगे कि ऐसे सब कोष, जो समाधि अवस्था की बिना समझे ही संयोगवशात् उत्तम पक्ष पर बहुत महान् होने पर भी अंधेरे में लटकते रहे और सामान्यतया अपने समस्त ज्ञान के उपरान्त भी वे कुछ विचित्र अन्वेषित्वाओं के अधीन हो गये । वे मतिभ्रम के आधारी से निकार हो जाते हैं । योहम्मद का दावा था कि एक दिन उन्हें एक युद्ध में विवाहस तामक एक बेकबूत मिला था और स्वर्गिक अस्त्र 'शूरक' पर ईश्वर उन्हें स्वर्ग ल गया था । किन्तु ऐसी बातों के अभाव योहम्मद ने कुछ अद्भुत सत्यों का उद्घोष किया है ; यदि तुम कुरान पढ़ो तो तुम्हें उत्तम अन्वेषित्वाओं में निपटित अद्भुत सत्य भी मिलेंगे । इसका ताप क्या स्पष्टीकरण देने ? उस व्यक्ति को बलौकिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी इसमें कोई संदेह नहीं । किन्तु वह प्रेरणा उन्हें बनायास ही प्राप्त हो गई । उसके सिये उन्होंने वास्तवीय पद्धति से योग्यावाह नहीं किया था और जो कुछ कर रहे थे उसके कारणों को नहीं जानते थे । योहम्मद ने संसार का विघना बना दिया उसका विचार करते और अपनी कष्टकराविता के कारण उन्होंने संसार का मिथ्या बड़ा अन्कार किया इसकी भी कल्पना करो ; इन उपरोक्तों के कारण जो कठोरों मनुष्य नीत के घाट उतारे गये जो असंख्य माताओं अपने यन्त्रों से बंधित कर दी गयी जो बन्ने जनाम हो गये ईश के ईश उजाड़ दिये गये कठोरों-कठोरों ताप मार जाते गये—बच इसकी भी कल्पना करो ।

इस प्रकार हम योहम्मद और अन्य महान् भ्रमोपवीतकों के जीवनो के अध्ययन से इस संकट को भ्रान सकते हैं । किन्तु ताब ही हमें वह स्मरण रखना चाहिए कि इन सभी को बलौकिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी । जब कभी कोई मर्न प्रवर्तक अपनी वास्तुक प्रकृति के बलीभूत हो समाधि अवस्था में पहुँचा तभी वह वहाँ से न केवल उत्तम के कुछ कण साब लाया अपितु कुछ कष्टकराविता कुछ अन्वेषित्वास भी साब लाया जिन्होंने संसार को उत्तनी ही हानि पहुँचाई,

जितनी जित उसके उपदेशों से साम पहुंचा। असंगतियों के इस डर में जिसे हम जीवन कहकर पुकारते हैं, कोई सपति बैठाने के लिये हमें तर्क-बुद्धि के परे जाना होगा। किन्तु उस स्थिति को शास्त्रीय पद्धति से शनै-शनै सतत् अभ्यास द्वारा समस्त व्यक्तित्वों से मुक्त होकर, प्राप्त करना ही उचित होगा।





## प्रताडना

ओ ! अंग्रेजों का अग्धानुकरण करने वालो ! \*

“इसे तुम लोग भी अच्छी तरह समझ लो जो भीतर-बाहर से साहब बने बैठे हो तथा यह कहकर बिल्लाठे घूमते हो—‘हम लोग गर-मणु हैं हे योरोपवासियो ! हमारा उधार करो’ और यह कहकर घूम मचाते हो कि ईसु काकर प्राण में बैठे हैं। ओ बन्दु ! यहाँ ईसु भी नहीं जाये जिहोवा भी नहीं जाये और न जायेंगे ही ! वे इस समय अपने घर संभाम रहे हैं हमारे देश में जाने का उन्हें अबसर नहीं है।

इस देश में नहीं पुण्यवन शिव जी बैठे हैं वही काली माई पूजित हैं और बंछीभायी बंछी वजाते हैं। यह पुण्यवन शिव नन्दी पर सवार होकर भारतवर्ष से एक ओर मुमागा बोनियो सेलीबिस आस्ट्रेलिया अमेरिका के किनारे तक बमरु बजाते हुए एक समय घूमे थे बूसरी ओर तिब्बत चीन जापान साइबेरिया पर्वत पुण्यवन शिव ने अपनी नन्दी को बरजा वा बव भी बण्टे हैं। यह वही महाकामी हैं जिनकी पूजा चीन जापान में भी होती है जिसे ईसु की मां ‘मेरी’ समझ कर ईसाई भी पूजा करते हैं।

यह जो हिमालय पहाड़ है इसके उत्तर में सैलास है वहाँ पुण्यवन शिव का निवासस्थान है। उस कैलास को पश्चिम और बीच हाथ बाता राबल भी नहीं हिमा सफा वा फिर उसे हिमालय क्या किसी पादरी के बस का काम : ? ने पुण्यवन शिव बमरु बजायेंगे। महाकामी पशु वनि और धीहण्य जी ली बजायेंगे यही इस देश में ह्येसा होवा।

के हिमासय के समान बर्णित हैं। कोई भी प्रयास चाहे वह ईसाई पापियों का हो या अन्य धर्मोपदेशकों का उन्हें हिंसाने में कभी समय नहीं हो सकेगा। यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगता तो इट जाओ। तुम को चार लोगों के लिए क्या सारे देश को अपना सर्वनाश करना हाया? इतनी बड़ी दुनिया तुम्हारे सामने फैली पड़ी है। क्यों नहीं बड़ी अग्रिम ज़रूरी तुम्हारे मनमान विचरण के लिए पर्याप्त क्षेत्र उपलब्ध हो जाकर अपने लिए स्थान खोजते हो? ऐसा तो कर ही नहीं सकते साहस कहाँ है? इस बड़े विश्व का क्या कार्यें विरहासपाठ करने और ईसु की बय बनायें।

विचकार है ऐसे लोगों को जो साहसों के सामने जाकर गिड़गिड़ाते हैं कि हम बलि मीष हैं हम बहुत बुर हैं, हमारा जो कुछ है सब कुछ खराब है। किन्तु इनके लिए मैं कहता हू कि "हां यह सब तुम्हारे अपने चारे में छाय हो सकता है क्योंकि तुम स्वयंकारी होने का खावा करते हो और हम तुम पर भविष्यवाणी करें भी क्यों? किन्तु तुम अपने "हम" के भीतर सम्पूर्ण राष्ट्र को क्यों समेट लेते हो? क्याको तो यह नहीं का सिद्धाचार है?

### जाओ अनुप्य मनो\*

—और तुम लोग क्या करते हो? —जीवन भर राम्बी-पम्बी शीर्षे हीरता। जो बकवासियों! तुम हो क्या? याको इन लोगों को देखो और जाकर सज्जा से अपना मुह धिना सो। जो भ्रष्ट बुद्धि वालो! तुम्हारी तो देश के बाहर निरमते ही गाति जनी जायेगी। अपनी खोपड़ी पर सैकड़ों बपों के दुइ बगबिवासों का कूड़ाकर्मट लाय कर बैठे सैकड़ों बपों से केवल बाहार की मुदि-अगुडि के सपने में ही अपनी समस्त शक्ति को मल्ट करन वाम सैकड़ों दुबों के सामाजिक उत्पीड़न से जिनकी सारी मानबता का कश्मूर निकल चुका है असा बताओ तो लही तुम कौन हो? और तुम इस समय कर ही क्या रहे हो? — सुबो! पुस्तकों को हाथ में जिने केवल समुद्र-मट पर विचरण कर, योरोपीय मरिठण की अपविठ जूटन को बेधमसे रटना तीस अपने की मुंजीकीरी के लिए बबबा बहुत हुआ तो एक बकीम बनने के लिए भी जान से लहना यही तो उरग्य भारत की सर्वोच्च सदृशवाकीया है। जिस पर प्राणक छात्र के मुंड क मुंड बच्चे भी पैश ही जाते हैं जो भूम स विप

\* बचावनी से

बिसाले उसके पैरों के चारों ओर बिपककर राटी के नियं चिल्लाते हैं । क्या समुद्र में इतना पानी भी न रहा कि उसमें तुम तुम्हारी तुस्तके तुम्हारा पावन और तुम्हारी विश्वविद्यालय की डिग्रियां यादि सब डूब सकें ?

ओ भारत के उच्छ यर्गों ! \*

तुम कार्य पूर्वकों से अपने बंशानुक्रम का चाहे जितना विचित्रिम पीटो प्राचीन भारत का चाहे जितना गौरव-पान करो, अपनी कुनीलता पर चाहे जितना गर्व करो किन्तु, ओ भारत के उच्छ यर्गों ! क्या तुम समझते हो कि तुम जीवित हो ? तुम अब इस सहस्र वर्ष पुरानी 'मयी' (सब) मात्र रह गये हो । भारत में अब भी जीवन का जो पौड़ा बहुत लक्षण रूप है वह उतमें है जिन्हें तुम्हारे पूर्वकों ने "बमती-फिरली सारें" कहकर पुकारा था । वास्तवमें तुम ही "बमते-फिरले सब" हो । तुम्हारे गृह तुम्हारा फर्नीचर सब इतने निर्जीव और पुराने हो चुके हैं कि वे अजामबर के तमूने से लगते हैं । तुम्हारे रीति-रिवाजों रहन-सहन को वेस कोई भी प्रत्यादर्शी यह सोचने के लिये विचरक हो जाता है कि मारों वह मुड़ी दापी की कहानी सुन रहा है और जब कोई तुमसे व्यक्तिगत बेट करके पर बातस सौटता है तो उसके मन में विचार उठता है कि मारों वह किन्ती विच संप्रहास्य में रहे पुराने बिजों को देखकर जता जा रहा हो । इस माया के जगत में ऐ भारत के उच्छ यर्गों ! तुम ही वास्तविक माया व रहस्य हो मस्त्वल की मृग-मरीचिका हो । तुम कूटकास की—उसकी समस्त विविधताओं की सिद्धकी का प्रतिनिधित्व करते हो । अब वर्तमान काम में जो कुछ तुम्हारा अस्तित्व बस रहा है वह अजीर्ण के कारण उत्पन्न एधि-स्वप्न के अतिरिक्त कुछ नहीं है । तुम मविष्य क दूम्य अस्वि-मांसरहित निरस्तित्व मान हो । जो स्वप्नलोक के अन्तुजी । तुम और अधिक जीवित ही क्यों हो ? तुम अतीत भारत के मांसरहित एतररहित कंकाम मात्र हो । क्यों नहीं तुम भीम ही स्वयं को रास बनाकर हवा में बिलीन हो जाते ? ओह तुम्हारी अस्विबत् अंभुनियों पर अभी भी अमृत्य हीरों की अंगुठियां हैं और तुम्हारे बुयंत्वपुक्त शक के अन्तर में तुम्हारे पूर्वकों द्वारा संक्षित बिसाल सजाने दिये हैं । अब तक तुम्हें उन्हें सोपने का अवसर नहीं मिल सका होया । अब ब्रिटिश शासन-काल में मुक्त तिया और जामरज के इन दिनों तुम अपनी उस सम्पति को अपने उत्तर

\* योरोप भाषा के संस्करणों से उद्धृत

बिकारियों को सौंप दो । अरे ब्रिताने लीज हो सके यह कर जाओ । तुम स्वयं को धूम्य में बिसीत कर दो अन्तर्ध्यात हो जाओ और अपनी जयह मशीन भारत को उठने दो उसे उठने दो—हल की मुठिया पकड़े किसानों के झोपड़ों से, मछुओं मोषियों और बंमियों के झोपड़ों से । उसे पंजारी की दूकान में से प्रकट होने दो । बजाइये की मट्टी में से प्रकट होने दो । उसे कस-कारखानों हाट बाजारों में से उदित होने दो । उसे बन-उपबनों गिरिपर्वतों में से निकसने दो । इन सामान्य लोगों ने सहुओं बपों तक जापण को सेला है, बिना बूँ बपड़ किये तुम्हारे अत्याचारों को सहा है और परिणामस्वरूप उनमें अब्मुत सहनशक्ति का बयी है । उन्होंने अन्त विपदाओं को सहा है जिसने उन्हें अटूट जीवन शक्ति प्रदान की है । मुट्टी भर अनाज पर जीवित खूकर के समस्त संसार को उसट सकत है । उन्हें रोटी का केवल भाषा टुकड़ा मिल जाने का फिर समस्त संसार भी उनकी कर्मशक्ति को रोक नहीं सकेगा । उन्हें रक्तबीज की अक्षय जीवन शक्ति का वरदान मिला हुआ है (रक्तबीज दुर्गा सप्तमती में वर्णित एक रातस का जिसके रक्त की प्रत्येक बूँद परटी पर बिरने पर उसक समान एक नये रातस को जन्म देती थी) इसके अतिरिक्त उनमें गुठ और नैतिक जीवन से उत्पन्न वह अब्मुत बल है जो संसार में व्ययत्र कहीं नहीं मिल सकेगा । यह क्षान्तचितता यह संस्थाप यह स्नेह यह मीन अमबरत कर्म शक्ति, और संकट की पड़ी में सिंह-साहस का परिचय तुम और कहीं पा सकोये । ओ बर्तित के कंधाओ ) ब हैं तुम्हारे सामने तुम्हारे भाबी सत्तर बिकारी । यह है जानेबामा भारत ! इन खानों को इन अमूल्य रत्नशक्ति बंशुटियों को ब्रितानी लीज हो सके उनके सामने फँक दो और हवा में बिसीत हो जाओ । फिर कभी बिसाबी न तो केवल अपने काम खुने रती । तुम अन्तर्ध्यात हुए महीं कि तुम अपने कानों से पुनर्जायत भारत क जन्म की घोषणा तुमोये या सद्यःकपि येष-नर्जनाओं के समान सम्पूर्ण विश्व में प्रतिध्वनि कर सकेगी "बाह मुक की प्यह ।"

**धैर्य के 'बिष्य प्रेम' का यह विकृत रूप\***

यो वैतम्य महामनु अक्षीम त्यागी पुष्टर थे । के स्त्री व काम-वासना से विन्मूत रहे व । विन्मु, परबर्तीकाम में उनके बिष्यों में अपने सम्प्रदाय से

\* वास्तविक और बर्षा' से उदित

स्त्रियों को प्रविष्ट कर लिया । वैश्व के नाम पर वे उनसे अंधाधुन्ध बुल-मिस मये और उनके समस्त कार्य को नष्ट भ्रष्ट कर डाला । महाप्रभु ने अपने जीवन में प्रेम का जो आदर्श प्रस्तुत किया था वह पूर्णतया निहंतुक था और वासना से रहित था । वह कामुकता रहित प्रेम कभी जन-साधारण की सम्पत्ति नहीं बन सकता । किन्तु परवर्ती वैश्व गुरुजनों ने वैश्व के जीवन के वैश्व पथ पर सर्वप्रथम विधेय भाष्य करने के बजाय उनका समस्त उत्साह उनके प्रेम के आदर्श को जन-साधारण में प्रचारित और अनुप्राणित करने में ही खर्च कर डाला । जिसका परिणाम हुआ कि साधारण लोग उनके दिव्य-प्रेम के उच्च आदर्श को न तो ग्रहण कर सके और न आत्मसात् कर पाये और स्वाभाविक ही उन्होंने उसे नापी और पुरुष के कामुक प्रेम का निम्नतम रूप ही लिया ।

इस राष्ट्र की बच्चा निहारो और देखो कि इस दुर्बुद्ध प्रयास का क्या फल निकला है । उस विह्वल प्रेम के व्यापक प्रचार के फलस्वरूप वह सम्पूर्ण राष्ट्र मधुंसक बन गया है—स्त्रियोचित्त मान ही भर गया है । पूरा उड़ीसा कामरों के वेष्ट में परिवर्तित हो गया है । और बंगाल इन विगत चार सौ बरों में राधा प्रेम के पीछे उन्मत्त होकर अपना समस्त पुरुषत्व खो बैठा है । ये लोग केवल रोने-बीसने में ही घेर रहे पये हैं । यह उनका प्राचीन स्वामान-सा बन गया है । बरा उनके साहित्य पर दृष्टिपात करो क्योंकि यही तो किसी जाति के दिव्यारों और मातों का वास्तविक स्वरूप होता है । इन चार सौ बरों में सम्पूर्ण बंगाली साहित्य से केवल रोने और निडगिङ्गाने की ही ध्वनि निकल रही है । उसने एक भी ऐसी कविता को जन्म नहीं दिया जिसमें सच्चा और मान्य हितोर्षे नारा हो ।

जब तक हृदय में कामुकता है उसका एक रूप ही शेष है जब तक सच्चा प्रेम ही नहीं सकता । उस दिव्य प्रेम के अविकारी चेष्ट वैश्वियों में भी जो महान् हो उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता । यदि प्रेम के उच्च सर्वोच्च आदर्श को जन-साधारण में फैलाने का प्रयास किया गया तो वह अप्रत्यक्ष रूप से मानवी अंत-करण पर अक्षय अधिकार जमाने वाले सांसारिक प्रेम को अक्षयित करेगा । स्वयं को परमात्मा की अज्ञानिनी बचवा प्रिया समझ कर ईश्वर के चरणों का ध्यान करने के प्रयास में व्यक्ति हर क्षण अपनी पत्नी का ही पिन्धन करता रहेगा । इसका परिणाम स्पष्ट है, उसे बचाने की आवश्यकता नहीं ।

## हे ईसाई पादरियों ! \*

यह सत्य नहीं है कि मैं किसी धर्म का विरुद्ध हूँ। यह भी उतना ही असत्य है कि मैं भारत के ईसाई प्रचारकों के प्रति कटुता रखता हूँ। हिन्दु मुझे उनके अमेरिका में भग्न एकत्रीकरण के कठिन उपायों पर जोर आपतित है। बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे चित्रों को प्रकाशित करने का क्या अर्थ है, जिनमें भारतीय माता का अपने बच्चों को बोधा में मग्नमग्न का मुँह में फेंकते हुए चित्रित किया गया है। उसमें भी माता दुष्प्रवर्ती है हिन्दु बच्चे को पीछेकी चित्रित किया गया है ताकि अधिक करवा जायत करके अधिक मन बटोरा जा सके। उन चित्रों का क्या अर्थ है जिनमें एक पुंस्य को अपने हाथों अपनी पत्नी को जीवित जसले दिखाया गया है ताकि उसकी पत्नी प्रेतात्मा बनकर अपने पति के शत्रु का प्रसन्न करे। उन चित्रों का क्या उद्देश्य है जिनमें विद्यालय स्कूलों के नीचे मनुष्य को कुचलते हुए दिखाया गया है। कुछ दिनों पूर्व इस देश में बच्चों के लिए एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसमें एक प्रचारक अपनी कमकता-भाषा का वर्णन करता है। यह कहता है कि उसने कमकता की लड़कों पर अन्धविश्वासियों को एक रज के नीचे प्राप्तस्वाव करते हुए देखा। ऐसे ही एक सज्जन को मैने मैम्पिष्ठ में यह प्रचार करते हुए सुना कि भारत के प्रत्येक ग्राम में नन्हें-नन्हें बच्चुकों की हड्डियों का भय एक ठामाव होता है।

यार्किट, हिन्दुओं के ईसा के इन चेतों का क्या विमोहा है कि वे प्रत्येक ईसाई बच्चे को हिन्दुओं को "हुट्ट" 'पतिव्रत' एवं 'पुष्पी के सबसे ययंकर उपासक' कहना सिखाते हैं। यहाँ विद्यालयों में एरिबारीय शिक्षा का यह अरिबायें भय बन गया है कि उसमें बच्चों को प्रत्येक वीर-ईसाई से विशेषकर हिन्दुओं से नृणा दिखाई जाती है ताकि वे अपने शास्त्रकाष्ठ से ही इन ईसाई प्रचारकों को बन्धा देना सीख लें। यदि सत्य के लिए नहीं तो कम से कम अपने बच्चों की शैठिकता के हित के ही ईसाई प्रचारकों को ऐसी बातें बन्द कर देनी चाहिए। इसमें क्या आश्चर्य है, यदि ऐसे बच्चे बड़े होकर निर्दयी और मुबल्ल स्त्रीपुंस्य निरर्थक ?

को ईसाई प्रचारक अन्ध नरक के अत्याचारों का यहाँ बचकने वाली ज्वाला का अयावह निरन्तर कर सकता है उसी को अन्धविश्वासियों के हाथ में स्वाव दिया जाजा है। मेरे एक विषय की परिचारिका को पुनस्तपनवादी

\* 'महात्मा अहिंसात्मक के उत्तर' में से उद्धृत

समाजों में हिंसा लेने के परिणामस्वरूप पागसखाने भेजना पड़ा था । सरकारों की अमानुषों के अमानुष विचारों को यह सहन नहीं कर पाई । फिर मद्रास में प्रकाशित होने वाली हिन्दू धर्म विरोधी पुस्तकों की खोर भी बेलो । यदि कोई हिन्दू ईसाई-धर्म के विरुद्ध ऐसी एक भी पंक्ति लिख दे तो ये ईसाई प्रचारक उसके विरुद्ध हिंसा और बदला का सूत्रण लड़ा कर देंगे ।

मेरे बेलोवासियों ! मुझे इस देश में बापस पीटे एक वर्ष से अधिक हो गया । मैंने समाज का समय-प्रत्येक कोण छान डाला है और तुमनात्मक अध्ययन के आधार पर मैं तुम्हें बताता हूँ कि न तो हम रासद हैं वैसे ईसाई प्रचारक हमारे बारे में संसार को बताते हैं और न वे देवदूत हैं वैसे वे अपने बारे में दावा करते हैं । ईसाई प्रचारक हिन्दुओं की अनतिक्रमिता सिद्ध-हत्या एवं विवाह-प्रथा की भ्रष्टाचारों के बारे में जितना कम बोलेंगे उतना ही उनके लिए हितकर होना । कुछ ईसाई बेलों के ऐसे सन्ने बिना भी हो सकते हैं जिनके समस्त ईसाई प्रचारकों द्वारा चिहित हिन्दू समाज के काल्पनिक बिना विस्तृत पीके पड़ जायेंगे । किन्तु मेरे जीवन का ध्येय बेलन सोपी निम्नक बनना नहीं है । मैं हिन्दू समाज की पूर्णता का दावा करने वालों में से विस्तृत नहीं हूँ । शायद ही कोई व्यक्ति हिन्दू समाज के दोषों एवं दुर्भाग्यपूर्ण अताक्षियों में अत्यन्त विद्वत्तियों के प्रति मुझसे अधिक आग्रहक होगा । ऐ दिवेली मित्रो ! यदि तुम सचमुच हमारे देश के लिए सच्ची सहानुभूति लेकर सहायता के लिए आओ न कि केवल विध्वंस के लिए तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करे । किन्तु यदि एक पराजित जाति के घिर पर मीके-बेनीके गतिवियों की निरन्तर बीछार कर तुम केवल अपने राष्ट्र की नैतिक श्रेष्ठता का डंका पीटना चाहते हो तो मैं तुम्हें स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि यदि न्यायपूर्णक कोई तुमनात्मक अध्ययन करने का प्रयास हुआ तो हिन्दू जाति संसार की समस्त जातियों से संसार के समस्त अन्य राष्ट्रों से नैतिकता के क्षेत्र में बाँसों ठेकी सिद्ध होगी ।

**ईश्वर और एवणाओं की पूजा साथ-साथ सम्भव नहीं\***

एक बात मैं तुम्हें बताऊँगा । इसे निम्न मत समझना । तुम लोगों को प्रतिक्रिया करते हो आना-रूपका और बेलन बेले हो सो काई के लिए ? क्या

\* डेट्राय में दिव मये एक मापन से ।

इसलिए कि मेरे देश में जाकर मेरे पूर्वजों मेरे धर्म और मेरी सब चीजों को बानिशा दें और निन्द्य करें ? वे मन्दिर के निकट जायें और कहें 'ओ मूर्ति पूजको ! तुम गरुड़ में बसोये !' किन्तु वे भारत के मुसलमानों से ऐसा कहने का साहस नहीं कर पाते, क्योंकि सब तसबारी निकल जायेंगी । किन्तु हिन्दू बहुत धीम्य है इसीलिए वह मुस्कान देता है और यह कहकर टाल देता है कि 'बूझो को बचने दो ! यही है उसका बुद्धिकोप !'

तुम स्वयं तो बानिशा देने और आलोचना करने के लिए लोगों को सिधित करते हो किन्तु यदि मैं बहुत बज्जा उद्देग लेकर तुम्हारी ठिक भी आलोचना करूँ तो तुम चपम पड़ते हो और बिस्माने मरते हो— 'हमें मत देखो हम अमेरिकन हैं । हम बुनिया के सब लोगों की आलोचना करें, निन्दा करें व उन्हें बानिशा दें 'वाह ओ कहें पर हमें मत देखो क्योंकि हम सुई-मुई के पेट हैं ।'

तुम्हारे मन में जो बात तुम कर सकते हो किन्तु साम ही मैं तुम्हें बठा देता चाहता हू कि इस बीते भी बी रहे हैं उससे पूर्वतया सन्तुष्ट हैं और एक माने में हम बहुत अच्छे हैं क्योंकि हम अपने बच्चों को कभी ऐसे भयानक असत्य नियमना नहीं सिखाते ।

\* और जब कभी तुम्हारे पाहरी हमारी आलोचना करें वे इस बात को | कभी न भूमि कि यदि सम्पूर्ण भारत बड़ा हो जाने और हिन्दु-महोदधि की | तसहरी की सभ्य कीचड़ की उठाकर पावताप देवों के मूँ पर फेंक दे तो \* वह उस दुर्भवहार का लजास भी न होना जो तुम-हमारे प्रति कर रहे हो ।

और यह सब क्यों ? क्या हमने कभी एक भी धर्म-प्रचारक को बुनिया में किनी का धर्म-परिवर्तन करने के लिए भेजा ? हमारा तुमसे कहना है—'तुम्हारे धर्म का स्थापन । किन्तु हमारा धर्म ह्वारे पास रहने दो ।'

तुम अपने धर्म की आशामक धर्म कहती हो, तुम आशामक हो किन्तु फिर भी तुम शिठने लोगों को अपने धर्म में ला पाये ? बिस्व की जनसेवना का प्रयेक छत्र ब्यक्ति चीनी है और वह बीठ है । इसके अतिरिक्त आपान विषयत कम साहबोरिया बयॉ, स्वाम भी तो बीठ हैं । और आपद तुम यह बात हजम न कर पाओ किन्तु तुम्हारी यह ईशार्ई नीतिकता यह केबोतिक गिरजापर भी नहीं से पैदा है ? और यह सब कैसे हुआ किस क्रिया गया ? एक बूँद बदले बिला । की बहूकारियो ! बडाओ तुम्हारी ईशान्यत न कनी अणक के



बता दो मैं दो नहीं चाहता । मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पूर्वजों का धर्म-परिवर्तन किस प्रकार हुआ था । मृत्यु या धर्म-परिवर्तन—उसके सामने केवल दो ही मार्ग थे इसके अतिरिक्त कुछ नहीं । अपनी समस्त दार्मिक गर्वनामों के बावजूब तुम इस्लाम से किस क्षण से धोखे हो ? अरबों ने मर्कना की भी 'हमीं भेप्टे हैं केवल हम ही ! —क्यों ?— 'क्योंकि हम दुसरो की हत्या कर सकते हैं । किन्तु वह बरब अब कहाँ हैं ? रोमन भोग भी यही कहा करते थे पर अब वे कहाँ हैं ? इसलिये ठीक ही कहा गया है कि 'अस्य है शान्ति के पुनारी के ही इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे । ऐसी बातें रिखा नहीं करनी उनका महत्व बालू के डेर पर बना होता है जिसका बहना अक्षय्यमापी है ।

### निःस्वार्थी और उदार मनो

५

प्रत्येक वस्तु जिसकी नीब स्वार्थ है प्रतिस्पर्धा ही जिसकी कर्म-मीरणा है और विषय-मुक्त जिसका लक्ष्य है डेर या छेवर अक्षय्य मरेगी । ऐसी वस्तुओं को मरना ही चाहिये । बन्धुओ ! मैं तुम्हें बताता हूँ कि यदि तुम बीबित रहना चाहते हो यदि तुम मजसुब चाहते हो कि तुम्हारा राष्ट्र बीबित रहे तो तुम ईसा की ओर बापस लौटो । वस्तुतः तुम अपने ईसाई नहीं हो । नहीं एक राष्ट्र के नाते भी नहीं हो । ईसा की ओर-बापस लौटो उसकी ओर बापस लौटो जिनके पास सिर टिकाने के लिए भी बगहू नहीं थी । 'बिड़ियों के पास बौसले हैं पशुओं के पास भड़िं हैं किन्तु मनुष्य-मुक्त के पास सिर टिकाने के लिए भी बगहू नहीं है । और तुम विसाधिता का वाकर्षण दिलाकर धर्म का प्रचार करते हो । माय्य की कैसी बिहम्बना है ! इसे बरबो यदि तुम बीबित रहना चाहते हो तो इसे बरब जानो । जो कुछ मैंने इस देश में सुना है वह सब धोप है, यदि यह राष्ट्र बीबित रहना चाहता है तो इसे ईसा की ओर बापस लौटने दो । तुम ईस्वर और एपचार्य, दोनों की एक साथ पूजा नहीं कर सकते । यह सब भोव-ऐस्वरब ईसा के नाम पर ? ईसा होते तो इस सब नास्तिकता को तुच्छ धैरे । शैतानिकत के साम आनेवासा समस्त भोग-ऐस्वर्य नस्वर है अगमन्दुर है । अनररब केवल उठ परम्पिता में ही है । यदि तुम इन दोनों बीबों का—इस आश्चर्यजनक समृद्धि का और ईसा के बादलों का समन्वय कर रको तो बहुत अच्छी बात है किन्तु नहीं कर सकते तो अच्छा होया कि तुम ईसा की ओर लौट पनो और इसे स्वाय्य दो । ईसा के साथ बीबड़ों में रहने की शैगारी उमके बिना महनों में रहने से नहीं अविध सैप्टे है ।

मिरा पैगम्बर ही सच्चा पैगम्बर है\*

जब हरेक मनुष्य उड़ा होकर कहे कि 'मेरा पैगम्बर ही सच्चा पैगम्बर है' तब वह सत्य बात नहीं बोलता। उसे धर्म का 'क' 'ख' 'ग' भी नहीं आता। धर्म न तो तल बर्षा न वैज्ञानिक मतबाद और न उसके लिये बौद्धिक स्वीकृति का ही नाम है। वह है अन्तःकरण में साक्षात्कार, ईश्वर से संपर्क। वह एक मायना है, एक अनुभूति है कि मैं विश्वात्मा का एक अंश मात्र हूँ और उसी अस्तित्व के अन्तर्भावों में से एक हूँ। यदि तुम अन्तःकरण परमपिता के घर में प्रवेश कर चुके हो तो तुमसे सचके अन्तर्भावों को देखकर भी कैसे नहीं पहचानना? और यदि तुम अन्तर्भाव नहीं पहचान सकते तो इसका अर्थ है कि तुमसे परमपिता के घर में प्रवेश किया ही नहीं। माता अपने बच्चे को किसी भी बेस में पहचान लेती है, और साथ ही अन्तर्भाव में अपने घर भी उसे जान ही जाती है।

अन्तःकरण सुख और अन्तःकरण वेद के महान् आध्यात्मिक स्वी-पुरुषों को पहचानो और देखो कि उनमें एक दुबरे से बहुत भिन्नता नहीं है। वहाँ कहीं अन्तर्भाव नहीं है, वह दिव्य स्पर्श ही सुख है, आत्मा का परमात्मा से मिलन हुआ है, वहाँ अन्तर्भाव विमान हुआ है और उसे सब और अन्तर्भाव ही सब पड़ा है।

कुलतमान तोय इस दुःख से सबसे अधिक संतुष्ट और अन्तर्भाववादी हैं। उनका बोध-भाव है— 'अन्तर्भाव केवल एक है और सुहृद् अन्तर्भाव पैगम्बर है। उसके अन्तर्भाव को कुछ है वह न केवल सुख है अन्तर्भाव ही अन्तर्भाव है। इस बोध-भाव पर आस्था न रखने वालों को अन्तर्भाव मार डालना चाहिये। जो सुख उनकी अन्तर्भाव-अन्तर्भाव से निम्न है उसे अन्तर्भाव अन्तर्भाव कर देना चाहिये। जो अन्तर्भाव अन्तर्भाव निम्न अन्तर्भाव लेती है उसे अन्तर्भाव अन्तर्भाव चाहिये। पाँच को वहाँ तक अन्तर्भाव महावाग्य से अन्तर्भाव महावाग्य तक रक्त की भाँति बहायी गयी। वही है अन्तर्भाववादी।

आत्मकेन्द्रित आति।

मनुष्य अन्तर्भाव स्वाधीन होता है अन्तर्भाव ही अन्तर्भाव होता है। यही आति आति के साथ ही है। जो आति अन्तर्भाव ही वही वह अन्तर्भाव अन्तर्भाव में अन्तर्भाव-

\* अन्तर्भाव (अन्तर्भाव) में लिये गये एक भाषण से।

१ अन्तर्भाव में लिये गये एक भाषण से।

बिक दुष्ट एवं अत्याचारी सिद्ध हुई है । संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं है जो अपने-पराये की इस भावना का इतना अधिक तिकार रूढ़ ही बितना कि अरब के पैगम्बर द्वारा स्थापित धर्म । और कोई दूसरा धर्म न होगा जिसने अल्प धर्मावलम्बियों पर इतने अधिक अत्याचार किये हों और रक्षणात् किया हो । कुरान में यह आदेश दिया गया है कि जो इन उपदेशों को नहीं मानते उनका कत्ल कर देना चाहिये उनकी हत्या करना उन पर ब्या करना है । और सुम्बर हूरो तथा सब प्रकार के ऐजो-आराम से परिपूर्ण अस्त (स्वर्ग) को पाने का निश्चित मार्ग एक ही है और वह है इन काफिरों को मार डालना । ऐसे विषवासों के फलस्वरूप जो भीपण रक्षणात् हुआ है उसकी कल्पना तो करो ।



# भाग चार

मनुष्य-निर्माण

अथवा

कार्यकर्त्ताओं

का

गठन



# मनुष्य निर्माण

अथवा

## कार्यकर्त्तव्यों का गठन

हमें चाहिये प्रज्ञावान, वीर और सेबस्वी युवक जो मृत्यु से व्यासप्तन करने का—समुद्र को साँप जाने का साहस रखते हों ।

हमें ऐसे संकड़ों कार्यकर्त्ता चाहियें—पुरुष और स्त्री दोनों । केवल इसी सद्य की सिद्धि के लिये अपनी पूरी शक्ति लगाओ । अपने पतुदिक लोगों का हृदय-परिवर्तन करो एवं उन्हें हमारे धरित्र निर्माण के महातन्त्र में लयाओ । स्थान-स्थान पर निर्माण-केन्द्र स्थापित करो । बबिकाधिक लोगों को दीक्षित करो ।

सिंह के पीस्य से युक्त, परमात्मा के प्रति अटूट निष्ठा से सपन्न और पावित्र्य की भावना से सहीप्य सहस्रों नर-नारी, दरिद्रों एवं उपेक्षितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति लेकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण करते हुये मुक्ति का, सामाजिक पुनरुत्थान का, सहयोग और समता का संदेश देंगे ।

## संगठन

एक बार उन्होंने (स्वामीजी ने) मेरी दाबीजी से कहा कि 'मेरे जीवन का सब से बड़ा आकर्षण अमेरिका में है। मेरी दाबी ने थोड़ा खुदकी काटने से लिये उनसे पूछा— 'ऐसी वह कौन है स्वामी ?' वह ठहाका मारकर हंस पड़े और बोले, "वोह वह कोई स्त्री नहीं है बल्कि संवत्स है।" उन्होंने समझाया कि किस प्रकार रामकृष्ण परमहंस से सिध्द अर्धसे निकल पड़ते हैं और जब वे किसी ग्राम से निकल पड़ते हैं तो घुपघात एक बूझ से नीचे बैठ जाते हैं, पगली प्रतीक्षा में, जो अपनी आपत्तियों में बनकी तलाश मानने आते हैं। "किन्तु मैं अमेरिका में देखा कि संगठित प्रयास से द्वारा कितना अधिक कार्य किया जा सकता है।" किन्तु सब तक वे यह निश्चित नहीं कर पाये थे कि संगठन का कौन सा प्रकार भारतीय-स्वभाव से लिये पूर्वतया उपयुक्त होगा। और वे इत जारे में बहुत विस्तार-मनन और अभ्यसन कर रहे थे कि पारबाराय जगत् में जो कुछ वे अच्छा समझते हैं उसे अपने देशवासियों से अधिकतम श्रित की बुद्धि से कैंसे उपयुक्त बनायें।

—ड० कॉर्नर

### लोकतांत्रिक छात्रों की पूर्वपीठिका\*

अनेक देशों में प्रयत्न करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि संगठन के बिना संसार में कोई भी महान् एवं स्थायी कार्य नहीं किया जा सकता। किन्तु भारत जैसे देश में विकास की वर्तमान अवस्था में मुझे यह

\* रामकृष्ण मिशन की स्थापनाके अवसर पर रामकृष्ण परमहंस के शिष्यों के समस्त भाषण करते हुये।

सर्व-परमार्थ नहीं सपटा कि जनतागिक आचार पर कोई नया संघटन प्रारम्भ किया जाय जिसमें प्रत्येक सपत्न की समान भाषाज हो और जिसमें बहुमत के आचार पर निर्णय लिये जायें। परिचामी देशों की स्थिति भिन्न है—हम भी बिना के प्रसार के साथ-साथ जब यह सीख जायेंगे कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थों एवं हितों से ऊपर सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्र के हित के लिये त्याग किया जाय तब हमारे लिये भी जनतागिक प्रभाती से कार्य करना सम्भव हो सकेगा इस बात को ध्यान में रखकर हमें कितनाहाम अपने संगठन के लिये एक सर्वाधिकारी मार्गदर्शक अपनाता होगा जिसकी आज्ञाओं का सब सोय पालन करें। उपयुक्त समय आने पर उसका कार्य संभल सभी सदस्यों के मत एवं सहमति से हो सकेगा।

### हिन्दुओं का संगठन

ऐसा संगठन जो पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव सिखा सके परमात्मक है। मेरे कार्य की सपहना करने के लिए कमकठमें में जो समा हूँ उसमें पाँच हजार सोय जाए। ऐसे ही अन्य स्वानों पर भी सैकड़ों की संख्या में सोय जाए। बहुत अच्छी बात है। किन्तु यदि तुम उनमें से प्रत्येक से एक आना देने को कहो तो क्या वे ऐसा करेंगे? हजार सम्पूर्ण राष्ट्रीय आरिभ्य बच्चों के समान पचसम्बी बन गया है। सब सोय आने का स्वाद तो सेना चाहते हैं मगर वह उनके मुँह के पास पहुँच जाय ठीकी। कुछ तो यहाँ तक चाहते हैं कि वह उनके पस के नीचे उठार दिया जाय। तुम्हें धीने का बनेई अधिकार नहीं यदि तुम अपनी सहायता स्वयं नहीं कर सकते हो।

भारत में तीन सोय मिल-जुल कर पाँच मिनट तक कार्य नहीं कर सकते। प्रत्येक सत्ता पाने के लिए संघर्ष करता है और फलस्वरूप आये का कर सम्पूर्ण संगठन संघट में पड़ जाता है। हे ईश्वर! हे प्रभु! हम ईर्ष्या न करना क्य सीख जायेंगे? ऐसे राष्ट्र में ऐसे व्यक्तियों का जो मतभिन्नताओं के चूहे हुये भी अमर स्नेह के सूत्र में बंधित हों संगठन तैयार करना क्या आश्चर्य की बात नहीं? यह संगठन बढ़ा जायगा। अद्भुत निवास-सुखयता से समुक्त शासक नकि एवं प्रपत्ति का यह भाव सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो जाना चाहिये। इस पुनाम राष्ट्र की उच्चधिकारी के रूप में उपसम्भ संयंकर ज्ञानम पाति मेय, पौपापन्वी और ईर्ष्या के बावजूद यह भाव सम्पूर्ण राष्ट्र में बिदुत्सैतन्य भी देना उभे सवान के रोय-रोम में मर देना चाहिये।



## कार्य की तीन अवस्थाएँ

\* प्रत्येक कार्य को तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है—उपहास  
| विरोध और अन्त में स्वीकृति ।

\* ऐसे प्रत्येक मनुष्य के बारे में जो अपने समय से बहुत आगे की सोचता है भ्रान्ति उत्पन्न होना निश्चित है । अतः विरोध और अपाचारों का स्वागत । केवल मुझे बूढ़ और भुड़ होना चाहिये तथा ईश्वर में अगाध यत्ना रखनी चाहिये । फिर, ये सब अपने आप सुप्त हो जायेंगे ।

## प्रसिद्धि-लोसुप्तता एवं निर्माण कार्य साथ नहीं चलते

कभी किसी ने समाज को प्रसन्न रखने और साथ ही महान् कार्य करने में धारणता नहीं पाई । किसी को केवल अपनी अन्तरात्मा के आदेशों का पालन करते रहना चाहिये और यदि वह आदेश सही और शुभ है तो समाज को उस का अनुसरण करना ही हाया मने ही वह उसकी मृत्यु के महाभिर्षो बाध करे । हम मन बुद्धि और अदृष्ट से अपने कार्य में जुट जायें । जब तक हम केवल एक और केवल एक ही विचार के सिध अन्वय सब कुछ व्यापने के लिए तैयार नहीं होंगे तब तक हमें कभी भी प्रकाश का दर्शन नहीं होगा कभी भी नहीं ।

जो सोप मानवता की सच्ची सेवा करना चाहते हैं उन्हें अपने सुख-सुख की प्रति प्रतिष्ठल तथा अन्य समस्त स्वार्थों को गठरी में बाँध कर समुद्र में फेंक देना चाहिए और तब भगवान् के घरलों में आना चाहिये । यही समस्त महा पुरुषों ने कहा और किया ।

## पूर्ण आत्माकारिता

जो आत्मापालन करना जानता है वही आत्मा देता भी जान सकता है । पहले आत्मापालन सीखो । इन समस्त पाश्चात्य वैज्ञानिकों में स्वतन्त्रता की तीव्र भावना के साथ ही आत्मापालन की भावना भी उठनी ही तीव्र है । हम सभी अपने-अपने को महारूपपूर्ण समझते हैं, जिसके कारण कोई कार्य नहीं हो पाता । महान् समय असीम उत्साह प्रचण्ड छत्ति और इन सबसे ऊपर पूर्ण आत्मा कारिता केवल इन्हीं पुरुषों के सहारे व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय पुनरुत्थान सम्भव है । इन पुरुषों का हम में सर्वथा अभाव है ।

यहाँ प्रत्येक बैठक बनना चाहता है आजापासन करना कोई नहीं जानता । महान् कार्यों को करने में बैठक की आजाओं को मात्र मूढ वर पासन करना होता है । यदि मेरे पुत्र्याई अभी मुत्सुस कहें कि मुझे अपने जीवन का शेप भाव मठ की शानियां साफ करने में बिठाना है तो निरूप्य जानो कि मैं इस भाजा का बिना किसी विरोध के पासन करूँगा । केवल वही महान् सेनापति हो सकता है जो सर्वजनहिताय प्रत्येक भाजा की बिना ननुनच किए, पासन करना जानता है ।

आजापासन के रुप का बिकास हो करो किन्तु अपनी आत्मशुद्धा को मत छोडो । अपने शरिष्ठों की आजापासन के बिना एकनुरता सम्भव नहीं । ध्वष्टि-मठ शक्तिशों के ऐसे केन्डीकरण के बिना कोई भी महान् कार्य नहीं किया जा सकता ।

### सहयोगियों के प्रति व्यवहार

तुम्हें किसी की योजना का निरावर कर उसे निरस्तसाहित नहीं करना चाहिए । आलोचना को बिलकुल छोड़ दो । सबकी सब तक सहायता करो जो जब तक तुम्हें बिनाई से कि से ठीक कर रहे हैं और जब कभी से सतत रूप बजती बिनाई से तो उनकी सुनों को शीम्यतापूर्वक उनकी बुष्टि में साको । एक दूसरे की आलोचना ही समस्त सभार्यों की बड़ है । वही संबन्धों के बिचटन का मुख्य कारण बनती है ।

तुम्हारे समस्त कार्यों की सफलता पूर्वतया तुम्हारे पारम्परिक स्नेह पर निर्भर है । जब तक ईर्ष्या देव एवं शईबादिता कायम है, जब तक कोई भला नहीं होने वाला है ।

अपने अनुबुद्धों के बिचारों का आवर करो और सबैव सद्भाव स्थापित करने का पाल करो । यही सफलता का रहस्य है ।

### आदर्श कार्य-विधि

माग्य में समस्त संमुक्त प्रपास एक ही बुचई के बीस से बनकर बूब जाते हैं । हमने अभी तक स्वयं में कार्य-विधि के सिडान्तों के कठोर पासन की बुष्टि बिगुष्टित नहीं की है । कार्य को उसके आदर्श रूप में ही करना चाहिये । फिर उसमें किसी 'बिचता' वा प्रबन्धित मुहावर के अनुसार 'आज की मग्ना' को स्थान नहीं बिगना चाहिए । अपने बभिकार में जो भी कोप हो उसके पाई-पाई

का सेना-जोता रहना चाहिए और भूलकर भी कभी एक मर की घनराशि का किसी दूसरी मर के लिए, बाहे जो हो यहां तक कि अपने ही दान भूखों मरने की नौबत पहुंच चुकी हो तब भी उपयोग मत करो । यही है कार्य-विधि की बुद्धि ।

### सगठन के स्थायित्व का रहस्य

ऐसा तन्त्र निर्माण करो जो स्वचासित हो । फिर चिन्ता नहीं कीज और है कीज मरता है । हम भारतीयों का एक बड़ा भारी दोष यह है कि हम स्थायी संघटन नहीं बढ़ा कर पाते । और उसका कारण है कि हम कभी दूसरों को अपने अधिकारों में सहभागी बनाना नहीं चाहते और कभी वह चिन्ता ही नहीं करते कि हमारे जमे जाने के बाद क्या होगा ।



## नेतृत्व

### चरित्र की शुद्धता

यदि नेता चरित्रवान् नहीं है तो अनुयायियों में उसके प्रति बड़ा टिकना सम्भव नहीं। पूर्वजन्म का गुण चरित्र के आधार पर ही मट्ट बनना और विश्वास टिक सकते हैं।

### सोक-संग्रह के जन्मजात गुण

नेता केवल एक बन्धु में नहीं बन जाता। वह जन्मजात ही होता है। संघर्ष की स्थापना करना बंधन बोधनायें बनाना इतना कठिन कार्य नहीं है। नेता की वास्तविक कसौटी यह है कि वह बहुत विपन्न बच्चों और प्रवृत्ति के लोगों को भी उनकी समान वेदनाओं-मादनाओं के आधार पर एकत्र एक सकता है या नहीं। और यह कार्य बड़े सङ्घर्ष में ही होता है बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करके नहीं।

### नेतृत्व के अनिवार्य-गुण-सेवा और स्नेह

नेता के चरित्र को निभाना बहुत ही कठिन कार्य है। उसके लिए व्यक्ति को 'बाधत्व बाध' —बाधों का बाध बनना पड़ता है और सहस्रों हृदयों को अपने बन्दर बनाना पड़ता है। उसके प्रति सेवाभाव रखनेवाला ही बनना सच्चा स्वामी बन सकता है। ईर्ष्या और स्वार्थ का लक्षणात्मक लप न रहने पर ही गुण नेता बन सकते हैं। जन्मजात और निःस्वार्थ व्यक्ति ही नेता हो सकता है।

यह सैनिक भावना है ही नहीं जो आरम्भ से ही अनुभव को सेवा और आजागमन सेवा आरम्भ-सुषम का अभ्यास कराना सिखाती है? सैनिक भावना

है आत्मत्याग में न कि आत्मदृष्ट में। दूसरों के हृदयों एवं जीवनों पर शासन करने के पूर्व व्यक्ति को दूसरे की आज्ञा पर आगे बढ़कर अपने प्राण देने के लिए भी तत्पर रहना चाहिए। सर्वप्रथम बलिदान करने की सिद्धता रखनी चाहिये।

### अग्रिम मोर्चे पर नेता को रहना होगा

क्या भारतीय सैनिक युद्धस्थल में कावळा दिखाता है? कभी नहीं किन्तु उन्हें योग्य नेता मिलने चाहिये। मेरे एक अंग्रेज मित्र जनरल स्ट्रांग १८५७ की सैनिक क्रांति के समय भारत में थे। वे उस समय की कई घटनाएँ सुनाया करते थे। एक दिन बाँदा के बीराम मीने उनसे पूछा कि जो सैनिक बन्दूकों सत्ताओं एवं खाद्यसामग्री आदि से पूरी तरह सम्पन्न थे वो अनुभवी बुरग्वर ने वे इतनी बुरी तरह क्यों हारे? उन्होंने उत्तर दिया कि उनके नेता स्वयं माने न बढ़कर पीछे किसी सुरक्षित स्थान पर से ही चित्लाते थे 'जैसे जामो बहादुरो आदि आदि। किन्तु जब तक आज्ञा देने वाला सेनाधिकारी माने नहीं बढ़ता और मृत्यु का सामना नहीं करता तब तक साधारण सैनिक कभी पूरे हृदय से नहीं लड़ सकता। जीवन के प्रत्येक क्षेप में यही बात है। 'आपक को अपने जीव का बलिदान देना ही होगा'—यदि तुम किसी सैन्य के लिये अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकते हो केवल तभी तुम नेता बनने के अधिकारी हो। किन्तु हम सब पर्याप्त त्याग किये बिना ही नेता बनने के चक्कर में रहते हैं बिचका परिणाम है—शून्य! कोई हमारी बात नहीं सुनता।

### नेता मिष्यता एवं व्यस्ति निरपेक्ष हूँ

(१) पक्षपात सब कुप्राप्तियों की जड़ है। कहने का अतिशय है कि यदि तुम एक के प्रति दूसरे की अपेक्षा अधिक स्नेह प्रदर्शित करते हो तो बिस्वास रखो तुम भावी संकटों के बीच खो रहे हो।

बहु कभी नेता नहीं बन सकता जिसके स्नेह में थोड़ा भी ऊँच-नीच का भेद है। बिचका स्नेह अन्याय है जिसमें ऊँच-नीच का भेद नहीं समस्त संसार उसके चरणों पर सोटता है।

मैं देखता हूँ कि लोग मुझे अपना समभय सम्पूर्ण स्नेह अर्पित कर देते हैं। किन्तु मैं बदले में अपना सम्पूर्ण स्नेह किसी एक को नहीं दे सकता क्योंकि उसी दिन कार्य चौपट हो जायेगा। फिर भी कुछ लोग जो व्यक्ति-निरपेक्ष विज्ञान

दृष्टिकोम से सम्पन्न नहीं हैं। बचने में सम्पूर्ण स्नेह की अपेक्षा करेंगे। कार्य के हित में वह नितांत आवश्यक है कि मैं पूर्वतया व्यक्ति-निरपेक्ष रहते हुए अधिक से अधिक लोगों का उत्थाहमुख स्नेह व्यक्त कर सकूँ। अम्बका ईर्ष्या और आपड़े सब कुछ विवर्धित कर जाते हैं। नेता को व्यक्ति-निरपेक्ष ही रहना चाहिये।

### सहानुभूति और सहिष्णुता

यदि कोई तुम्हारे पास आकर अपने किसी भाई की बुराई करके सवे तो उसकी बात बिमरुम मत सुनो। मित्रा मुलना भी पाप है। इसी में भावी संकटों के बीज निहित हैं।

प्रत्येक की कमियों को सहन करो। नाशों अपराधों की क्षमा करो। यदि तुम सबको बि स्वार्थ भाव से प्रेम करोगे तो वे सब भी शत्रु-शत्रु एक दूसरे को प्रेम करने लगेंगे। जब वे यह जसी प्रकार समझ जायेंगे कि एक का हित दूसरों के हित पर निर्भर करता है तभी उनमें से प्रत्येक ईर्ष्याभाव को त्याग देगा। मित्र-मुक्त कर कोई कार्य करना मानों हमारे राष्ट्रीय चरित्र का अंग ही नहीं रह गया है। अतः तुम्हें इस भावना को बहुत चिन्तापूर्वक पैदा करने का यत्न करना चाहिये और पूर्वपूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिये।

### शिशुवत् नेतृत्व ही सर्वोत्तम

कुछ काम मार्गदर्शन मिलने पर बहुत अच्छे कार्य कर सकते हैं। प्रत्येक नेता बनने के लिये बंधा नहीं हुआ है। सर्वोत्तम नेता बही है जो एक शिशु के समान नेतृत्व करता है। शिशु ऊपर से देखने पर तो सजी का आश्रित है, किंतु वस्तुतः बही सम्पूर्ण परिवार का सम्राट् होता है। कम से कम मेरे विचार में तो बही पगब है।

नेतृत्व करने का पोंड़ा सा भी दिखावा जगों में ईर्ष्या को बढ़का कर सब कुछ जीपट कर जाता है।

## सच्चा मार्गदर्शक

### शब्दों के सामर्थ्य का रहस्य

जो अपने को ईश्वरार्पण कर देते हैं वे संसार के लिए इन समाकषित कार्मिकताओं की अपेक्षा बहुत कुछ कर पाते हैं। यदि किसी एक व्यक्ति ने अपनी पूर्ण आत्मसुद्धि कर ली है तो वह इन उपदेशकों के पूरे इतनी अपेक्षा नहीं अधिक कार्य पूरा कर लेता है। आत्मसुद्धि और मीन में ही शब्दों का अपूर्व सामर्थ्य पैदा होता है।

### गुरु का व्यक्तित्व

एक बार ईप्सैड में एक मित्र ने मुझसे प्रश्न पूछा था 'हम गुरु के व्यक्तित्व की ओर इतना क्यों तिहारें? हमें केवल उनके उपदेशों पर विचार करना चाहिए और उन्हें अपनाया चाहिए। किन्तु यह ठीक नहीं है। यदि कोई व्यक्ति मुझ रसायनशास्त्र भ्रमण गति विज्ञान या कोई अन्य भौतिक विज्ञान पढ़ाना चाहता है तो उसका चरित्र चाहे जैसा हो वह इन विषयों को पढ़ाने में सक्षम हो सकता है। क्योंकि भौतिकवादी विद्याओं का ज्ञान केवल बौद्धिक होता है और बौद्धिक शक्ति पर निर्भर करता है। कोई भी मनुष्य आत्मा का रचनात्मक विकास किसे बिना ही ऐसे क्षेत्र में प्रवृत्त बौद्धिक सामर्थ्य से सम्भव हो सकता है। किन्तु आध्यात्मिक विद्याओं में प्रारम्भ से अन्त तक यह असम्भव है कि समुद्र आत्मा से ठीक भी आध्यात्मिक प्रकाश मिल सके। ऐसी आत्मा क्या सिखा सकती है? उसे कुछ ज्ञान नहीं। घुड़ता में ही आध्यात्मिक सत्य निहित है।

आध्यात्मिक गुरु जूनते समय सर्वप्रथम हमें देना चाहिये कि हमका व्यक्तित्व क्या है। केवल तभी उसके शब्दों का कुछ मूल्य हो सकता है, क्योंकि

उसका व्यक्तित्व संभारण मग्न शैला काम करता है। वह संभार ही क्या करेगा यदि उसमें वह आध्यात्मिक शक्ति है ही नहीं? उदाहरणस्वरूप यदि बिजली का बूझा गर्म है तो वह सम्पत्ता की तरफ प्रवाहित कर सकता है। किन्तु यदि वह गर्म नहीं है तो उसके द्वारा ऐसा होना असम्भव है। इसी प्रकार आध्यात्मिक गुरु से भी पारमार्थिक तरफ निकलती है जो शिष्य के चित्त तक पहुंचती है। यह समस्या है आत्मिक शक्ति को प्रदान करने की न कि केवल हमारी बौद्धिक शक्तियों को उत्तेजित करने की। गुरु से एक वास्तविक अनुभव में मानेवासी शक्ति प्रवाहित होती है और शिष्य के अंतःकरण में बढ़ने लगती है। जब यह अनिवार्य आवश्यकता है कि गुरु सच्चा हो। हम बहुत बढ़िया भाषण सुनते हैं, बहूत ठाँव से मुक्त प्रवचन भी सुनते हैं किन्तु घर जाकर इन सबको भूल जाते हैं। कमी-कमी हम बहुत सरस भाषा में जो चार शब्द ही सुनते हैं किन्तु वे हमारे अस्तित्व पर छा जाते हैं। हमारे सम्पूर्ण जीवन को स्थायी रूप से बदल जाते हैं। उस व्यक्ति के शब्द जो अपना व्यक्तित्व-बल उसमें उन्मुख है प्रभाव डाल सकते हैं किन्तु उतका व्यक्तित्व तेजस्वी होना चाहिये। सादान प्रदान का नाम ही निजत्व है। गुरु देता है और शिष्य ग्रहण करता है। किन्तु एक के पास देने के लिये कुछ होना चाहिये और दूसरे का द्वार खोलने के लिये खुला रहना चाहिये।

### गुरु का कार्य

(१) शिष्या मनुष्य की आन्तरिक पूर्णता की अभिव्यक्ति माग है।

(२) गर्म मनुष्य में निघमान शैल्य की अभिव्यक्ति है।

जब दोनों मामलों में गुरु का एकमेव कर्तव्य शिष्य के मार्ग की समस्त बाधाओं को हटाना है। इसीलिये मैं सबैव कहता जाया हूँ—'हस्तक्षेप मत करो। देप सब अपने काम ठीक हो जायेगा। अर्थात् हमारा कार्य मार्ग साफ करना है। शेष सब भयवान् करेगा।

### निपेधात्मक विचार मनुष्य को दुर्बल बनाते हैं

—निपेधात्मक विचार मनुष्य की शक्ति सीम करते हैं। क्या आप नहीं देखते कि जो माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने के मोह में उन्हें हर समय ताड़ना देते रहते हैं कि 'तुम मूर्ख हो तुम कमी कुछ नहीं सीख सकते' उनके बच्चे अधिकांश उदाहरणों में सचमुच ऐसे ही निकल जाते हैं।



यदि तुम बच्चों से मजबूर बचन बीनो और उन्हें उरसाहित करो तो बीरे-बीरे उमपा मुपार होता अवश्यम्भावी है । जो बात इन छोटे बच्चों पर लागू होती है, वही उच्च विचारों के क्षेत्र के महामनुष्यों पर भी लागू होती है । यदि तुम उन्हें भावात्मक विचार दे सको तो वे सोच सचमुच ही मनुष्य बन पायेंगे और अपने पैरों पर खड़ा होता सीख सकेंगे । भाषा और साहित्य कला और कविता—प्रत्येक क्षेत्र में उन भूलों की ओर ही इंगित नहीं करना चाहिये जो वे विचार अथवा कृति से कर रहे हों अपितु उन्हें वह मार्ग दिखाना चाहिये जिस पर बसकर अपने कार्य को अच्छी प्रकार कर सकें । कमियाँ बतसाने से मनुष्य की भावनाओं को भावात लगता है । हमने देखा है कि भयवान् रामकृष्ण उन लोगों को भी प्रोत्साहन दिया करते थे जिन्हें हम बिस्कुल निरुत्साह समझते थे और इस प्रकार उनके जीवन की बिछा को भी बरस डालते थे । उनके विराज का तरीका अप्रुतपूर्व था ।

---

# सफल जीवन का रहस्य

अथवा

## कर्म-कौशल

मस्तिष्क को उच्च आदर्श से भर दो

भास्करेवियों के डाय बलि का जो प्रयटीकरण होता है उसे ही कार्य कहते हैं। किन्तु जहां विचार नहीं वहां कार्य नहीं। अतः मस्तिष्क को उच्च विचारों से उच्च आदर्शों से भर दो। उन्हें बिल परत अपने सामने रखो और एक उद्यम से महान् कार्य निष्पन्न होगी।

आकाश को हर कोई देख सकता है यहाँ तक कि बरछी पर रेंजने वाला बुर कीड़ा भी उस नीलाकाश को देखता है। किन्तु वह रूप समझे किशोरी बुर है। यही बात आदर्श से घाब है। इसमें सन्देह नहीं कि वह बहुत बुर है किन्तु घाब ही हम जानते हैं कि हमारे पास वह होगा ही चाहिये। हम उच्चतम आदर्श अपने समक्ष रख सकते हैं। दुर्भाग्यवश इस जीवन में अधिकतर लोग लक्ष्यबिहीन ही संशेरे में मटक रहे हैं। यदि सत्यवान व्यक्ति एक उद्यम शुरू करता है तो मेरा विश्वास है कि लक्ष्य-बिहीन व्यक्ति पचास सहस्र घूमें करेगा। अतः कोई न कोई आदर्श सामने होना चाहिये। उस आदर्श के नाम में हम अधिक से अधिक श्रमण करें ताकि वह हमारे अस्त-करण में हमारे मस्तिष्क में हमारी रबों में समा जाय। यहाँ तक कि एक की प्रत्येक बुर में शैतन्य भर है। और बरछी के प्रत्येक रंग में समा जाय। हम हर घण उद्यी

का चिन्तन करें। 'अन्त-करण की परिपूर्णता में से ही वाणी मुखरित होती है और अन्त-करण की परिपूर्णता के परभाव ही हाथ भी कार्य करते हैं।

### सीप-समान धनो

मोती की सीप के समान धनो। एक बड़ी सुन्दर भारतीय कथा है कि यदि स्वाति नक्षत्र में वर्षा का एक बूँद भी उस सीप में पड़ जाता है तो वह मोती बन जाता है। सीप यह बात जानती है जब वह स्वाति नक्षत्र के चमकते ही बल की सतह पर आ जाती है और उस मूसलानू वर्षा की बूँद को पाने के लिये प्रतीक्षा करती रहती है। जैसे ही कोई बूँद उसके मुख में प्रवेश करती है तो सीप तुरन्त अपना मुँह बन्द कर लेती है और बुबकी लपाकर समुद्र के तल पर पहुँच जाती है। वहाँ वह धीरे-धीरे बूँद को मोती का रूप दे देती है।

हम भी जैसे ही बनें। पहले सुनो जब मनन करो और अन्त में सब बुद्धियाँ को छोड़कर अपने अन्त-करण को बाह्य प्रभावों की ओर से बन्द कर लो और अपने अन्तर उस सत्य के पोषण में लग जाओ। एक विचार को केवल उसके लक्ष्य से आकर्षित ही अपना सैना और फिर उसके भी लक्ष्य विचार के लिए उसकी स्थान देने की वृत्ति से ही पूर्ण सतिर्मा विचार पाने का भय है। एक विचार को लो लो छोड़ो उसे अन्त तक पहुँचाओ और जब तक उसके छोड़ पर न पहुँचो उसे त्यागो मत। जो अपने लक्ष्य के प्रति पागल हो गया है उसे ही प्रकाश का दर्शन होता है। जो चौड़ा हृदय छोड़ा ऊपर हाथ मारते हैं वे कोई लक्ष्य पूर्ण नहीं कर पाते। वे शून्य दार्ढ्य के लिये बड़ा योग विद्यते हैं किन्तु वह बीघ्न ठंडा हो जाता है।

अन्त एक तटस्थ अपनाओ। उस लक्ष्य को ही अपना जीवन कार्य समझो। हर क्षण उसी का चिन्तन करो उसी का स्वप्न देखो। उसी के सहारे जीवित रहो। मरिचिक मांसपेचियाँ नसें आदि शरीर के प्रत्येक अंग उसी विचार से ओत प्रोत हों और तब तब अन्त प्रत्येक विचार को किनारे पड़ा रहने दो। सफलता का यही राजमार्ग है इसी मार्ग पर चलकर जब तक साध्यारिक्त महापुरुष पदा हुए हैं। अन्तों को केवल बोलने वाला यन्त्र समझो।

—सत्प्राप्ता के लिये अत्यधिक अभ्यसनाय एवं प्रबल इच्छाशक्ति का होना आवश्यक है। अभ्यसनायी आत्मा कहती है 'मैं समुद्र को पी जाऊँगी। मेरी इच्छाशक्ति से पर्वत चूर चूर हो जायेंगे। यह कर्मशक्ति यह इच्छाशक्ति प्राप्त करी कठोर परिश्रम करो और तुम निश्चित ही लक्ष्य पर पहुँच जाओगे।

## महावीर को आदर्श मानो

तुम्हें महावीर के चरित्र को आदर्श के रूप में अपने सामने रखना होगा। देखो किसे प्रकार से रामचन्द्र की आत्मा पर समुद्र को सांच मये। उन्होंने अपने जीवन वा मृत्यु की ठनिक चिन्ता नहीं की। वे अपनी इन्द्रियों के पूर्ण स्वामी थे और अद्भुत प्रज्ञा से सम्पन्न थे। तुम्हें व्यक्तिगत सेवा के इस महान् आदर्श के समुद्र पर अपने जीवन का निर्माण करना होगा। उसके द्वारा जन्म समस्त आदर्श भी जीवन में स्वतः बीरे-बीरे प्रकट होंगे। तुम्हें भी आत्मा का आंच मूँव कर प्राप्त करो। ब्रह्मचर्य का निष्ठापूर्वक आचरण ही सफलता का मूल-सम्बन्ध है। हनुमान जहाँ एक ओर सेवा के आदर्श के प्रतीक हैं वहीं दूसरी ओर वे समस्त संसार को आर्तकृष्ण कर देने वाले सिंहवत् साहस के भी प्रतीक हैं। राम के हित के लिये उन्हें अपने प्राणों का बलिदान करने में ठनिक भी संकोच नहीं है। राम की सेवा के अतिरिक्त प्रत्येक जीव की ओर से विरक्त हैं। यहाँ तक कि विश्व के महान् देवता ब्रह्मा अथवा विष्णु के स्थान को प्राप्त करने की भासना भी नहीं है। उनके जीवन का एक ही षट है— राम की प्रत्येक इच्छा को क्रियान्वित करना। ऐसी ही पूर्ण-समर्पणकारी भक्ति चाहिये।

## मिन सोसा, तिन पाइयां

एक सड़क पर घूमते हुए एक आसानी व्यक्ति ने एक बड़े व्यक्ति को अपने मकान के दरवाजे पर बैठे हुए देखा। उसने ठहरकर उस बड़े से एक प्राम का पया ठिकाना पूछा। उसने पूछा, "अमुक-अमुक नाम यहाँ से किन्ती दूर है? पूछा मीन रहा। उस आसानी ने कई बार उसी प्रश्न को दोहराया। तब भी कोई जवाब नहीं मिला। इससे झुंझलाकर यात्री जमाने के लिये मुड़ पड़ा। तभी बड़े ने खड़े होकर कहा 'अमुक प्राय यहाँ से केवल एक मीन दूर है।' 'अया! यात्री ने कहा 'तुमने यही बात जब मीने पूछा तब क्यों नहीं बताया? बड़े ने कहा— 'क्योंकि तब तुम जाने के बारे में काफ़ी उबासीन और हीने रिबाई है रहे थे और अब जब तुम पक्के इरादे के साथ जाने के लिए तैयार होखते हो तब तुम उत्तर पाने के अधिकारी हो गये हो। क्या तुम इस कहानी को स्मरण रखोगे? कार्य में जुट जाओ सैय साजन अपने आप पूरे हो जायेंगे। भयवान ने मीया में कहा है

अनायासिवास्तपन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां श्रित्वाभिसुखताम योष-कोनं ब्रह्मान्यहम् । (गीता ९/२९)

जो अनस्य भाव से मेरी ही उपासना करते हैं उनके योग-लोक की शिखा में स्वयं करता हूँ ।

- ईसा के शिष्यों की स्मरण रखो 'मांगो और वह तुम्हें मिलावे, लोको और तुम पा जाओगे । अपपपाओ और द्वार तुम्हारे लिये खुल जायेंगे । ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं इनमें केवल टपक या कल्पना नहीं है ।'

क्या कोई ऐसी वस्तु है जिसकी तुमने अपने अस्त-करण से कामना की हो और न मिली हो ? ऐसा कभी नहीं हो सकता । इच्छा में ही शरीर की पैदा क्रिया । प्रकाश में ही तुम्हारे अस्तक पर जो छेद पैदा किये जिन्हें तुम अलें कहते हो । यदि प्रकाश न होता तो तुम्हारे पास अलें न होतीं । अन्ध में कानों को बताया । विषय पहले आवे और उन्हें ग्रहण करने वाली इन्द्रियाँ बाद में ।

लेकिन तुम्हें समझना होगा कि इच्छा-इच्छा में भी अन्धर होता है ।

एक शिष्य अपने गुरु के पास गया और बोला— दीमन् मैं ईश्वर को पाना चाहता हूँ । गुरु ने उस मुक्क की ओर देखा एक शब्द नहीं बोले और केवल मुस्करा दिया । मुक्क प्रतिदिन जाता था और मासक करता था कि उसे ईश्वर चाहिये । किन्तु उस बुद्ध को मुक्क की अपेक्षा अधिक ज्ञान था । एक दिन जब बहुत गर्मी पड़ रही थी गुरु ने मुक्क से अपने हाथ चम कर नदी में स्नान करने का कहा । मुक्क ने जैसे ही नदी में डुबकी लगायी बुद्ध ने पीछे से आकर उसे बसपूर्वक पानी में ही डबा लिया । जब मुक्क कुछ देर तक भुक्ति के लिये छटपटा चुका तो समझने लगे छोड़ दिया और पूछा कि 'जब तुम पानी के अन्धर थे तब तुम्हारी एकमेव इच्छा क्या थी ? शिष्य ने उत्तर दिया 'हवा की केवल चाह । तब गुरु ने कहा 'ज्या तुम्हारी ईश्वर को पाने की इच्छा भी उतनी तीव्र है ? यदि हो तो वह तुम्हें एक खज में मिला आयेगा । जब तक तुम्हारी मुक्क तुम्हारी इच्छा उतनी ही तीव्र नहीं है तब तक तुम परमात्मा को कदापि नहीं पा सकते जाहे तुम कितना ही बौद्धिक व्यापार अथवा कर्मकाण्ड करो ।

### बुद्धि की कदना अयनाओ

क्या तुम्हारे मन में दूसरों के प्रति सहानुभूति है ? यदि है तो तुम एकल का साक्षात्कार कर रहे हो । यदि तुम्हारे अन्ध दूसरों के प्रति सहानुभूति

नहीं तो तुम बाह्य संसार के सबसे बड़े बुद्धिवासी दैत्य हो किन्तु तुम कुछ भी नहीं बन सकोगे । तुम गिरे मुक्त बुद्धिवासी हो और जैसे ही सदा बने रहोगे ।

क्या तुमने विश्व के इतिहास में कभी यह धामने का प्रयास किया है कि बर्म प्रवर्तकों की शक्ति का साथ कहां है ? क्या यह बुद्धिबल में था ? क्या जन्मों से किसी ने भी दर्शन पर कोई मुल्य पुस्तक लिखी तर्क की बटित बृत्तियों में उमझने का प्रयास किया ? एक ने भी नहीं । वे केवल थोड़े से बन्ध बोलते । ईसा के समान सहानुभूति रखो और तुम ईसा बन जाओगे । बुद्ध के समान सहानुभूति करो और तुम बुद्ध बन जाओगे । यह सहानुभूति की भावना ही यह जीवन है, बक्ति है, बल है, जिसके बिना कितने ही बौद्धिक व्यायाम से तुम ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकते । बुद्धि तो केवल क्रिया-चेतनाहीन मय है । भावना का संयोग हमें पर ही उस बंध में बधि जाती है और वे कार्य करते लगते हैं । समस्त संसार में ऐसा ही होता है और इस बात की तुम्हें सदा स्मरण रखना चाहिये ।

### वाल्मीकि का प्रथम इलोक कथना से उद्भूत

—एक दिन जब ऋषि वाल्मीकि पवित्र गंगा नदी में स्नान करने के लिये जा रहे थे तब उन्होंने शीश के एक थोड़े का आकार में विहार करते और दूसरे का चूमन करते देखा । ऋषि उसकी यह भीड़ा देखकर प्रसन्न हुए किन्तु दूसरे ही क्षण एक तीर उनके निकट से मुबरा और भर शीश उसके द्वारा गाय गया । यह बरती पर गिर गया तब मादा-शीश विषाद में बरकर चीत्कार करती हुई अपने त्रिप साथी के सह के चारों ओर मंडराती रही । उस दृश्य को देखकर कवि के अस्त-कल्प में इतनी वेदना और कष्टता उमड़ी कि उन्होंने हृत्पार विषाद को कहा 'यू दुष्ट है, तुममें दया का संभवान भी नहीं ! तेष हृत्पाप हाथ धम को देखकर भी नहीं बका !'

मा विषाद प्रविष्टा त्वमयत्तः शारवती उमा ।

माश्रीम्बमिधुनारेकमवधीः काम मोहितम् ॥

(वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड)

उसी कवि ने अपने मन में सोचा 'यह क्या ? यह मैं क्या कह गया ? इस वंश से तो मैं इसके पूर्व कभी नहीं बोला था । और तब एक देववासी गुनाही दी 'इस मंत्र । यह कविता है जो तुम्हारे मुख से निकल रही है । संसार के अस्याप के लिये राम का चरित काम्य में लिखो ।' इस प्रकार प्रथम

अन्यासिन्नमपत्तो माम् ये जना पर्युपासते ।

तैर्वा निर्यामियुक्तान योष-कोर्म बहाम्यहम् । (गीता ९/२२)

‘ओ अनन्य भाव से मेरी ही उपासना करते हैं उनके योष-योम की चिन्ता में स्वयं कष्टा हूँ ।

“ ईसा के शब्दों को स्मरण रखा ‘मागो और वह तुम्हें मिलेगा ओओ और तुम या जाओये । पपबपाओ और ठार तुम्हारे लिये खुल जायेंगे । ये शब्द बदरशा-सत्य हैं इनमें केवल सपक या कल्पना नहीं है । ”

क्या कोई ऐसी वस्तु है जिसकी तुमने छान्ने अन्त-करण से कामना की हो और न मिली हो ? ऐसा कभी नहीं हो सकता । इच्छा में ही शरीर को पैदा किया । प्रकाश ने ही तुम्हारे मस्तिष्क पर जो छेद पैदा किये जिन्हें तुम बाँस कहते हो । यदि प्रकाश न होता तो तुम्हारे पास बाँस न होतीं । शब्द में कानों को बनाया । विषय पहले आये और उन्हें ग्रहण करते बाँस इच्छिया बाद में ।

नकिन्तु तुम्हें समझना होगा कि इच्छा-इच्छा में भी अन्तर होता है ।

एक शिष्य अपने गुरु के पास गया और बोला— धीमन् मैं ईश्वर को पाना चाहता हूँ । गुरु ने उस युवक को बोले देखा एक शब्द नहीं बोले और केवल मुस्करा दिया । युवक प्रतिविन जाता था और कापड़ करता था कि उसे ईश्वर चाहिये । किन्तु उस युवक को युवक की अपेक्षा अधिक ज्ञान था । एक दिन जब बहुत गर्मी पड़ रही थी गुरु ने युवक से अपने साथ चल कर नदी में स्नान करने को कहा । युवक ने जैसे ही नदी में डुबकी लगायी गुरु ने पीछे से आकर उसे बलपूर्वक पानी में ही बसा लिया । जब युवक कुछ देर तक मुक्ति के लिये झटपटा बुका तो उन्होंने उसे छोड़ दिया और पूछा कि ‘जब तुम पानी के अन्तर से तब तुम्हारी एकमेव इच्छा क्या थी ?’ शिष्य ने उत्तर दिया ‘ज्वा की केवल साँस । तब गुरु ने कहा ‘क्या तुम्हारी ईश्वर को पाने की इच्छा भी जतनी तीव्र है ? यदि हो तो वह तुम्हें एक जग में भिन्न आवेगा । जब तक तुम्हारी गुरु तुम्हारी इच्छा जतनी ही तीव्र नहीं है तब तक तुम परमात्मा को कदापि नहीं पा सकते चाहे तुम कितना ही बौद्धिक व्यायाम अपना कर्मकाण्ड करो ।

### बुद्धि की करुणा अपमाओ

क्या तुम्हारे मन में दूसरों के प्रति सहानुभूति है ? यदि है तो तुम एकत्र का धारात्कार कर रहे हो । यदि तुम्हारे अन्तर दूसरों के प्रति सहानुभूति





कविता का अग्रम हुआ। आखिरकि वात्मीकि के मुख से कवना के उत्रक में प्रथम श्लोक का उच्चार हुआ। उसके बाद ही उन्होंने राम के चरित्र पर 'रामायण' बेसी सुन्दर रचना की।

### सही दृष्टिकोण

- तुम जो कुछ कार्य करते हो वह बहिर्मुखी है। वह तुम्हारे अपने कल्याण के लिये है। ऐसा मत समझो कि ईश्वर कहीं दारि में गिर पड़ा है ताकि हम-तुम कोई अस्पृहास जादि बनबाकर उसकी सहायता कर सकें। वह केवल तुम्हें काम करने का अवसर देता है। यदि वह तुम्हें इस विशाल व्यापारशासा में अपने स्नायुओं की व्यापार करने का अवसर देता है तो इसलिये नहीं कि उस तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है बल्कि इसलिये कि तुम स्वयं अपनी सहायता कर सको ! क्या तुम समझते हो कि तुम्हारी सहायता के अभाव में एक बीटी भी मर सकेगी ? यह विचार ईश्वर-निष्ठा है।

"हम धन्य हैं कि हमें उसके लिये कार्य करने का न कि उसकी सहायता करने का अवसर मिला। इस 'सहायता' शब्द की अपने अस्तित्व से निर्यास रेंको। तुम सहायता नहीं कर सकते। यह विचार केवल नास्तिकता है।

- तुम्हें उसकी पूजा का अवसर दिया गया है। इस अवसरपुत्र भाव से सम्पूर्ण विश्व की ओर देखो ; तब तुम्हारे अन्दर पूर्ण निष्काम भाव जयेगा। यही तुम्हारा कर्तव्य है। यही कार्य के प्रति सही दृष्टिकोण है। यही कर्मयोग का रहस्य है।

### निःस्वार्थ कार्यकर्ता ही सबसे सुखी है

मिथारी को कभी सुख नहीं मिलता। उसे क्यापूर्वक एक टुकड़ा मिल जाता है किन्तु उसके पीछे जेया और मुजा का भाव रहता है। कम से कम वह भाव तो रहता ही है कि मिथारी कोई तुच्छ वस्तु है। वह जो कुछ पाता है उसमें उसे सुख नहीं मिलता।

हम सब मिथारी हैं। हम जो कर्म करते हैं उसका बदला चाहते हैं। हम सब व्यापारी बन गये हैं। हम बीजन का व्यापार करते हैं, मुर्षों का व्यापार करते हैं कर्म का व्यापार करते हैं। जाह ! हम प्रेम का भी व्यापार करते हैं।

यदि तुम व्यापार ही करना चाहते हो यदि तुम्हारे सामने सेना-बैना ही है कर्म-विक्रम का ही प्रसन्न है तो फिर कर्म-विक्रम के नियमों का पालन करो।

समय बाप्य भी होता है और बुरा भी । कभी कीमतें ऊपर चढ़ती हैं और कभी नीचे गिरती हैं । व्यापार में तुम सर्वत्र बाटे के लिये प्रस्तुत रहते हो । वह वर्षण में बेहतर देखने के समान है । उसमें तुम्हारा बेहतर दिखानी देता है । यदि तुम मुंह बनाते हो तो वह भी मुंह बनाता है । तुम हँसते हो तो वर्षण भी हँसने लगता है । कम-बिक्रय, बाजार-अभाव में इसी प्रकार होता है ।

किन्तु हम पढ़ते बाते हैं ? कैसे ? जो हमने विद्या उसके कारण नहीं अपितु जो हम अपेक्षा करते हैं उसके कारण । हम अपने स्नेह के बदले दुःख पाते हैं । इसलिये नहीं कि हमने प्रेम किया बल्कि इसलिए कि हमने बदले में प्रेम चाहा । जब किसी चीज की चाह ही नहीं तो दुःख कैसा ? इच्छा, चाह ही प्रत्येक दुःख की जननी है । इच्छाओं सफलता और असफलता के नियमों से बंधी हुई हैं । यह इच्छाओं के साथ दुःख का आना अनिवार्य है ।

—निष्ठाके प्रतिष्ठित साधु वासना और कर्मों को त्याग देने के बाद भी यह और लोकेपवा की इच्छा के बाध हो पाते हैं । क्या तुम्हें नहीं आता कि 'समस्त वासनाओं से मुक्त येष्ठ मनुष्यों का भी लोकेपवा पीछा नहीं छोड़ती । मन्ते ये इससे सरल कोई बात नहीं कि 'मैं कर्म के लिये कर्म करता हूँ किन्तु व्यवहार में इससे कठिन कोई अन्य वस्तु नहीं । मैं बीस मील तक अपने चिर के बस बसकर उस व्यक्ति के दर्शनों के लिये जाने को तैयार हूँ जो केवल कर्म के लिये कर्म कर सके । कहीं न कहीं कोई कामना निश्चयान् रहती ही है । यदि वह मन की कामना नहीं है तो सत्ता की मूख है । यदि सत्ता की मूख नहीं है तो यह भी मानस है । इस प्रकार कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में कोई न कोई कामना छिपी ही रहती है ।

यह सकाम कर्म ही दुःख का जनक है । जिस कर्म को हम अपने मन्त्र-करण का स्वामी बनकर करते हैं केवल वही हमें निष्काम बनाता है और मानस देता है ।

### निष्काम काम ही सर्वोत्तम

—बनकर सोच करते हैं कि बिना कामना के तुम कर्म ही नहीं कर सकते । वे ऐसी बात कहते हैं क्योंकि उन्होंने उष्मादी कट्टरता के प्रभाव के अधिनित कहीं अन्य निष्काम कर्म देखा ही नहीं ।

—निष्काम कर्म ही कर्म का सर्वोत्तम रूप है । कोई कामना नहीं—न मन की, न मन की न किसी अन्य बात की । जब मनुष्य इस स्थिति को

प्राप्त कर लेता है तो वह बुद्ध बन जाता है। तब उसमें से संसार की बस्तु बने वाली शक्ति—महाशक्ति का आविर्भाव होता है। वही व्यक्ति कर्मयोग के सर्वोच्च आदर्श का प्रतीक बन जाता है।

बुद्ध बनेस धर्म प्रवर्तक थे जिन्होंने कहा— 'मुझे ईश्वर सम्बन्धी तुम्हारे डेरों सिद्धांतों को जानने की कोई उत्सुकता नहीं। आत्मा सम्बन्धी इन अतिम एवं सूक्ष्म सिद्धांतों की परीक्षा करने से काम ही क्या है? नते बनो और भलाई करो और इसी मार्ग पर चल कर तुम निर्वास भी पा जाओगे और महाशरय का साम्राज्य भी कर सकोगे। उन्होंने जीवन भर व्यक्तिगत कामनाओं से अभिप्रेत रहकर कार्य किया और उनसे अधिक कौन कार्य कर पाया है? इतिहास में मुझे कोई दूसरा उदाहरण बताओ जो उन से अधिक ऊंचा उठ सका हो' ।

—वे आदर्श कर्मयोगी थे पूर्ण निष्काम थे। सम्पूर्ण मानव इतिहास में अब तक उनसे बड़ा महापुरुष पैदा नहीं हुआ। उनमें हृदय और शक्ति का महानतम सम्मिलन हुआ जिसकी कोई तुलना नहीं मिलती आत्म-शक्ति की अब तक उससे महान् अभिव्यक्ति नहीं हुई ।

सूर्य समुद्र से जल ग्रहण करता है किन्तु उसे वर्षा रूप में लौटाने के लिये। तुम भी आशान प्रदान के एक मंत्र भाव हो। तुम ग्रहण करते हो ताकि तुम दे सको। जब सबसे में कुछ मत मांगो क्योंकि तुम जितना अधिक बोधे उतना ही अधिक पाओगे। तुम जितनी बस्ती इस कमरे की हवा वाली करोगे उतनी ही शीघ्र बाहरी हवा इसे भर देगी। किन्तु यदि तुम सब दरवाजों और छिद्रों को बन्द कर दोगे तब वो अन्दर है वह अन्दर रह जायेगी किन्तु वो बाहर है वह कभी अन्दर न आ सकेगी। परिणामस्वरूप अन्दर की हवा स्थिर होकर पत्थी होती जायेगी और विपास बन जायेगी। नवी का प्रवाह उठत समुद्र में फिर रहा है और उठत भरता आ रहा है। उसका समुद्र में गिरने का द्वार अबतक मत करो। जिस क्षण तुम यह करने मृत्यु तुम्हें पकड़ लेगी।

**निष्काम कार्यकर्ता ही सर्वाधिक सफल होता है**

† अज्ञान और आनन्दता के लिए निष्काम भाव से किये गये कर्म से ही मनुष्य आशक्ति के बन्धन में नहीं पड़ता । -

† जो मनुष्य स्वाधीन एवं प्रेम-भाव से कर्म करता है वह फल की परवाह नहीं करता। किन्तु तुमाम कोड़ा मतने पर ही कर्म करने का अभ्यस्त होता है।

है और शेषक बनना बचन बाइटा है। ऐसा ही सम्पूर्ण जीवन में होता है। उदाहरणस्वरूप सार्वजनिक जीवन को ही में सार्वजनिक बस्तु अपने भोगों से बोझी प्रवृत्ति घुसफुसाहट एवं तामियों की अपेक्षा करता है। जब तुम उसे यह नहीं देखते तो तुम उसके सत्साह को ठंडा कर दोगे क्योंकि वह उसका मुखा रहता है। यह वास्तव्य कार्य करता है। एसी परिस्थितियों में बदले में कुछ अपेक्षा रहना ही मनुष्य का स्वभाव बन जाता है।

प्रत्येक सकल मनुष्य के जीवन में बहुत निष्ठा ही प्रामाणिकता का कोई न कोई केन्द्र बनकर रहता है और वही उसके जीवन में सफलता का मूल स्रोत होता है। हो सकता है वह पूर्वतया निस्वार्थ न बन सके हो किन्तु वह उस ओर बढ़ रहा है। यदि वह पूर्वतया निष्काम बन गया होता तो वह भी कुछ समय ईसा के समान सफलता के महान् विचार पर ही पहुँच गया होता। निस्वार्थता की भाषा के अनुपात में ही सफलता की भाषा रहती है।

अस्तु, सच्ची सफलता और सच्चे कुछ का महामन्त्र यही है। जो किसी प्रकार का प्रतिफल नहीं चाहता ऐसा पूर्वतया निष्काम मनुष्य ही सबसे अधिक सफल रहता है। यह बड़ा विरोधाभास लगेगा। क्या हम नहीं जानते कि प्रत्येक निस्वार्थ व्यक्ति को जीवन में बोलता मिमता है हानि उठानी पड़ती है? अगर स देखने पर यह सत्य है 'ईसा निस्वार्थ न किन्तु उन्हें काँची बर लटका दिया गया' यह सच है किन्तु हम जानते हैं कि उनही निस्वार्थता ही उस महान् विजय का एकमेव कारण है जिसके परिणामस्वरूप लाखों-लाखों जीवनों को सच्ची सफलता के मुकुट में सुशोभित किया।

### इस क्षुद्र 'मि' से मुक्ति पाओ

यह अहंकार कि 'मिने बहुत किया' 'मि' बहुत कर रहा हूँ, योग मार्ग का अवगमन करने समय गप नहीं रहता। पाश्चात्य लोग यह बात नहीं समझ पाते। वे कहते हैं कि यदि अहंकेतना सन्निक न रहे, यदि यह अहंकार विकल्पुत समाप्त हो जाय तो मनुष्य काम ही कैसे कर सकता है? किन्तु जिस समय कोई मनुष्य स्वयं को विकल्पुत भुमाकर एकाग्र मन से कार्य करता है, उस समय ही कार्य होता है, वह जाब मुना अच्छा होता है। यह अनुभव हममें से प्रत्येक ने अपने जीवन में प्राप्त किया हीमा।

हम मोहन पथाना आदि अनेक कार्य मनवाने में करते हैं अनेक कार्य भेदनापूर्वक करते हैं और कुछ कार्य में जब हम अपने सूर 'अहं' को विमल्लुग मुसा देते हैं तब मारों समाधि व्यवस्था में पठुंन कर करते हैं ।

यदि चित्रकार अपनी 'अहं-चेतना' को विस्तृत छोड़कर अपनी कलाकृति में ही पूर्णतया जो बाय तो वह कला के अद्वितीय नमूने निर्माण कर सकेगा ।

जो योग के द्वारा उस महाप्रभु के साथ एक हो जाता है वह अपने समस्त कार्यों को एकाग्र मन से करता है और किसी व्यक्तिगत नाम की अपेक्षा नहीं करता । इस प्रकार कार्य करने से संसार का केवल भसा ही होता है उससे कभी हानि नहीं हो सकती । पीता का सम्येह है कि प्रत्येक कार्य इसी भावना से किया जाना चाहिए ।

“व्यक्तिगत 'अहं' चेतना ही वह सुदुर्लभ बीमार है जिसमें हम स्वयं को बन्द कर लेते हैं । हम प्रत्येक वस्तु का नावा अपने से जोड़ लेते हैं । सोचते हैं मैंने यह किया मैंने वह किया मैंने क्या नहीं किया । इन सूर 'मैं' से छुट करण पामो अपने अन्दर बुरी हुई इस वैजायिकता को मार डालो मैं नहीं हू ही —यही नहो यही अनुभव करो इसके अनुसार ही बियो । जब तक हम 'अहं' निर्मित इस संकुचित बुनिया का परिव्याग नहीं कर देते तब तक हम स्वयं के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते ।

शक्ति के पुंन के मीन पुरुष है जो केवल प्रीयित रहते हैं और स्नेह करते हैं तथा कुपबाप अपने व्यक्तिव को फर्मसौत्र से हटा लेते हैं । वे कभी 'मैं' और 'मेरा' की रू नहीं सगाते । वे केवल निर्मित मन में ही स्वयं को हठार्थ मानते हैं । ऐसे मनुष्यों में से ही ईसा और बुद्ध प्रकट होते हैं । —वे मानव रूप में पुंनमूठ यादर्स मान हते हैं उनके अतिरिक्त कुछ नहीं ।

परमार्थमा मे स्वयं पौ सर्वोत्तम वंग से खिया रथा है अथ उग्रम कार्य ही कर्षधेष्ट है । इसी प्रकार जो अपने को सर्वोत्तम वंग से पीजे रण करता है वही सबसे बज्जा और अयिन्न कार्य कर सकता है । अपने वाप पर विजय पा सो तो समस्त विजय तुम्हारा हो जायेगा ।

### आवश के लिये जियो

— जो किसी बात की चिन्ता नहीं करता उसके पास सब कुछ बाप ही बाप पडुप जाता है । जन-सम्पत्ति तो जनल मारी के समान है वह उसकी परवाह नहीं करती जो उसे बहुत चाहता है । मन अपनी कर्षा उसके निकट

आकर कर जाता है, बिस्ने उसकी परवाह कभी नहीं की इसी प्रकार लोक-प्रसिद्धि भी इतनी अधिक मात्रा में जाती है कि वह सिरदर्द और भार बन जाती है। वे सब सदा स्वामी के पास जाते हैं। उनका दास कभी कुछ नहीं पाता। स्वामी बही है जो उनके विना भी रह सके जिसका जीवन संसार की सद् एवं मूर्खतापूर्ण चीजों पर निर्भर नहीं करता। एक और केबल एक-आदर्श के सिधे बियो। उस आदर्श को इतना महाम् इतना मक्तिमायी बनाओ कि उसके अतिरिक्त धर्म कुछ अन्तःकरण में रह ही न जाये। किसी अन्य वस्तु के लिए स्वाम नहीं किसी अन्य बात के भिन्न समय नहीं।

### साधनों की महत्ता

अपने जीवन में सदैव सबसे बड़ा पाठ यह सीखा है कि अपने काम की साधना की ओर भी उतना ही ध्यान दो जितना उसके साध्य की ओर। सफलता का मूल रहस्य इसी में है कि साधनों को भी उतना ही महत्त्व दिया जाय जितना साध्य को।

हमारे जीवन की भारी कमी यह है कि हम आदर्श की ओर इतना अधिक खिच जाते हैं धाम्य का आदू हम पर इतनी कुटी तरह सवार हो जाता है यह हमें इतना मोह लेता है वह हमारे मस्तिष्क में इतना बड़ा आकार धारण कर लेता है कि उसकी प्राप्ति के साधनभूत छोटी-सोटी बाँटें हमारी दृष्टि से बिल्कुल मौसम हो जाती हैं।

जब कभी अक्षमता मिलती है, तब यदि हम उसका आलोचनात्मक विश्लेषण करें तो निम्नान्वे प्रतिष्ठत मामलों में हम एक ही निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि साधनों की भार हमारा ध्यान न देना ही उसका कारण है। आक्षेपकता इस बात की है कि हम साधनों की पुष्टता एवं पूर्णता की ओर उचित ध्यान दें। यदि साधन बिल्कुल सही है तो साध्य प्रायः हाकर रहेगा। हम भूल जाते हैं कि कारण ही परिणाम का जनक होता है। परिणाम अपने आप पैदा नहीं हो जाता। और जब तक कारण सही अबूक और सगत नहीं होंगे तब तक कोई परिणाम नहीं निकलेगा। एक बार यदि आदर्श को चुन लिया और साधनों का निर्णय कर लिया तो फिर यदि कुछ समय के लिए हम आदर्श को समयम भूम भी जाय तो कोई हर्ज नहीं क्योंकि हमें विरक्त है कि साधनों की पूर्णता के साथ उसकी किडि अपगिहार्य है। यदि कारण है तो फिर कार्य की क्या है किन्ता ? कार्य-कारण नियम के अनुसार उठे तो होगा ही है। हम कारण की

चिन्ता करें परन्तु अपनी चिन्ता स्वयं करेगा । आपस की प्राप्ति परिणाम मात्र है । साधन उसका कारण है । अतः साधनों की चिन्ता ही जीवन की सफलता की कुञ्जी है ।

### पूजागृह ही सब कुछ नहीं

एक बात जान लेना चाहिए महान् ऋषियों का जन्म संसार को कोई विशेष संवेद देने के लिये होता है न कि अपना नाम बनाने के लिए । किन्तु उनके अनुयायी उनके उपदेशों को तो किनारे रख देते हैं और केवल उनके नाम के लिये झपका करने लगते हैं । यही संसार का अब तक का इतिहास बताता है । मेरा इस बात पर विशेष आग्रह नहीं कि लोग उनका (श्री रामकृष्ण का) नाम स्वीकार करते हैं अथवा नहीं किन्तु मैं उनके उपदेशों उनके चरित्र एवं उनके संदेश को समस्त संसार में फैलाने के लिये अपने प्राणों का बलिदान करने को भी तत्पर हूँ । मुझे सबसे अधिक डर जिस बीज से लगता है वह है 'पूजागृह' । वह स्वयं में कोई सारा बीज नहीं है किन्तु कुछ लोगों में प्रवृत्ति रखती है कि वे उसे ही सब कुछ मान लेते हैं और उस पुरातनपन्थी मूर्खता की पुनर्स्थापित कर देते हैं । इस विषय मात्र से ही मैं बचप जाता हूँ । मैं जानता हूँ कि वे पुराने निर्जीव कर्मकाण्डों में क्यों स्वयं को व्यस्त रखते हैं । उनकी आत्मा कार्य करने के लिये तरसती है किन्तु जब उनकी शक्ति को कोई सही मार्ग समझ में नहीं आता तो वे अंगी बनाने आदि में ही अपनी शक्ति व्यर्थ कर देते हैं ।

### मताग्रह मत धनो

भारत के एक भिक्षु का कथन है मैं बिस्वास्त कर लूंगा यदि तुम कहो कि मैं मठस्थल की रेत को पीसकर तेल निकाल सकता हूँ मगर मन्थ के मुँह में हाथ डाल कर उसके बाँध को बिना हाथ कटवामे तोड़ कर सा सकता हूँ किन्तु यदि तुम कहो कि मठाग्रह को भी बदला जा सकता है तो मैं कदापि बिस्वास्त नहीं कर सकता ।

.....भारत के बेजब सोम जो ईश्वारी होते हैं सबसे अग्रहिष्णु सम्प्रदाय में आते हैं । एक अन्य ईश्वारी सम्प्रदाय—सैबों में घण्टकर्ण नामक एक भक्त के बारे में एक कथा प्रचलित है । वह कथा इस प्रकार है घण्टकर्ण बिब का इलाका कट्टर भक्त था कि वह किसी दूसरे देवता का नाम भी अपने कानों से नहीं सुनना चाहता था अतः उसने अपने दोनों कानों में दो बटियाँ लटका ली

कीं ताकि यदि किसी अन्य देवता का नाम उसके कानों में पड़ने लगे तो वह बंटियों के स्वर में उस नाम की ध्वनि को बहा दे। शिव के प्रति अकाट्य भक्ति होने के कारण शिव उसे यह समझाना चाहते थे कि शिव और विष्णु में कोई भेद नहीं है। अतएव वे उसके समस्त भावा विष्णु और भावा शिव का शरीर बारब कर प्रकट हुए। उस समय वह भक्त अपन इष्टदेव का पूजार्चन कर रहा था। किन्तु उस वक्तकर्म की मतामता होने परसे सिरे की भी कि म्यों ही उसने देखा कि भूष की सुगन्ध विष्णु की नाक में प्रवेश कर रही है उसने अपनी अनुमी उसमें बुझे दी ताकि विष्णु उस मकुर सुगन्ध का आनन्द न ले सके।

### कट्टरवादी मत धनो

कट्टरवादी अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ लोग सुरा क विच्छ कट्टर होते हैं कुछ लोग सिवार के विच्छ। कुछ समझते हैं यदि लोग सिवार पीना छोड़ दें तो संसार में स्वर्गमुप आ जायेगा। भारत में कुछ कट्टरवादी सुधारक सोचते हैं कि यदि कोई स्त्री अपने पति के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह कर लेती तो सब कुुराहियों का अन्त हो जायगा। यह निरी कट्टर धारिता है।

अपन में मैं भी यही सोचा करता था कि यह कट्टरधारिता कार्य का अनिवार्य अंग है। किन्तु अब बड़ा होन के पश्चात् मुझे लगता है कि यह बात सही नहीं है।

कोई व्यक्ति है जो सबको ठप्ता धूमता है उस पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। कोई स्त्री उसके निकट भुरजित नहीं है। किन्तु हो सकता है वह कुछ शराब न पीता हो। यदि ऐसा हो तो उसे किसी शराब पीने वाले में कोई अन्धारी नहीं दिखाई देती। फिर वे सब राक्षसी हृत्प जिन्हें यह स्वर्ग करता है उसकी दृष्टि में कोई कुुराई ही नहीं रहते। यह मानव प्रकृतिमूलक स्वार्थपरता एवं एकांगीपन है।

सौ में विभागके कट्टरधारियों का मा ली महत्त विकृत होया अथवा वे अतिमाद्य रोग के शिकार रहते होंगे या अन्य किसी बीमारी के। ननं ननं चिचित्तकों की समस्त में भी यह बात आ जायेगी कि यह कट्टरधारिता एक प्रकार की बीमारी है। मैं इसे बहुत देस चुका हूँ। ईश्वर ही इससे बचाये।

मेरे अनुभव का यह निचोड़ है और बुद्धिमानी इसी में है कि सब प्रकार के कट्टरपग्वी सुधारों से बचा जाय। संसार बीमारी गति से बढ़ रहा है उसे



उसी मति से चलने देना चाहिये । हम जस्वी क्यों कर रहे हैं ? अच्छी प्रकार सोचो और अपने शरीर को स्वस्थ रखो । अच्छा भोजन करो और संसार के प्रति सहानुभूति रखो । कट्टरवादी केवल ब्रूया फँसाते हैं - - -)

जब तुम कट्टरवादियों की संमति से बाहर निकलने लभी तुम पास्तुरिक स्नेह और सहानुभूति का पाठ सीख सकोगे और स्नेह तथा सहानुभूति की मात्रा जैसे-जैसे तुममें बढ़ती जायगी इन बच्चे कट्टरवादियों की निन्दा मर्स्नना करने की तुम्हारी प्रकृति भी उठनी ही पडती जायगी । उम्हें उम्हें उनकी भूलों पर क्या जायेगी ।

एक समय एक राजा ने जब यह सुना कि पड़ोसी देश का राजा उसकी राजधानी पर घेरा बालभे के लिये आगे बढ़ रहा है तो उसने शत्रु से देश की रक्षा के उपायों पर विचारार्थ एक जनसभा बुलाई । इंजीनियरों ने परामर्श दिया कि राजधानी के चारों ओर मिट्टी की एक ऊँची दीवार खड़ी कर दी जाय और उसके साथ-साथ एक चौड़ी खाई खोद दी जाय । मोक्षियों ने सुझाव दिया कि बहू दीवार बमड़े की बनवाई जाय क्योंकि 'बमड़े से उभय कोई बस्तु नहीं है । सोहार भिस्सावे नहीं ये समत कहते हैं । दीवार की लोहे से बननाया जाय । और सब वकीलों की बारी जायी । उम्होंने तर्क दिया कि राज्य की रक्षाका सर्वोत्तम उपाय एक ही है कि शत्रु को वैधानिक तरीके से यह बतनाया जाय कि बहू दूसरे की सम्पत्ति की हड़पने का प्रयास कर एक अनुचित एक वीरकानूनी अपराध कर रहा है । सबसे अन्त में पुरोहित जाये बड़े । वे इन सब सुझावों पर उपेक्षा भरी हंसी के उपरान्त बोले 'तुम सब पागलों जैसी बातें कर रहे हो । सर्वप्रथम बेवताओं को बलि देकर प्रसन्न करना चाहिये और लभी हम बजेय हो सकते हैं । इस प्रकार राज्य की रक्षा करने के बजाय वे मुर्ख आपस में बाद विबाह करते रहे और क्षणकृते रहे । इसी बीच शत्रु आगे बढ़ जाया उसने आक्रमण कर राजधानी को ध्वस्त कर दिया । ऐसे होते हैं ये कट्टरवादी ।

**सब दुर्बलताओं और अंधविश्वासों को त्यागो**

- - मेरी सिखा का सर्वप्रथम पाठ यह है । ऐसी किसी भी चीज को जो आध्यात्मिक मानसिक अथवा शारीरिक दुबलता की जनक हो उसे बिलम्बे से भी न सुनो । धर्म मनुष्य में विद्यमान जन्मजात शक्तियों की अतिव्यक्ति मात्र है । इस छोटे से शरीर के भीतर प्रचण्ड शक्ति का स्रोत दिया पड़ा है । और

वह सोच ही स्वयं को कैसाता है। जैसे-जैसे वह शक्ति का मोठ कैसाता जाता है एक के बाद दूसरी देह अपर्णाप्त होने लगती है। उन्हें त्याग कर वह बीकन सेक्टर देह कायम करता जाता है। यही है मानव जर्म सम्मता या प्रयति का सच्चा इतिहास— ।

तुम बेटाये कि ज्योतिष्य आदि रहस्यवादी विद्यार्थे सामान्यतया दुर्बल मस्तिष्क के लक्षण होती हैं। वरु ज्यों ही वे तुम्हारे मस्तिष्क में महत्त्व पाने लगे तुरन्त विचित्रपुत्र के पास जाओ मध्या मोचन लो और विद्याम करो।

एक प्राचीन कथा है कि एक ज्योतिषी एक राजा के पास जाया और कहने लगा 'तुम छ. महीने में मर जाओगे।' राजा उसकी बात सुनकर इतना डर गया कि उसी क्षण डर के कारण मरने की स्थिति में पहुँच गया। किन्तु उसका मन्त्री बड़ा बुद्धिमत् व्यक्ति था। उसने राजा से कहा कि वे ज्योतिषी सोच मूर्ख होते हैं। राजा को उस पर विश्वास नहीं हुआ। तब मन्त्री ने राजा को यह दिखाने के लिये कि ज्योतिषी मूर्ख होते हैं एक उपाय सोचा। उसने ज्योतिषी को पुन राजमहल जाने का निमन्त्रण भेजा। वहाँ उसने ज्योतिषी से पूछा कि क्या उसकी वयना बिल्कुल सही है। ज्योतिषी ने कहा उसमें भ्रम हो ही नहीं सकती। किन्तु छिद्र भी मन्त्री को अनुपुष्ट करने के लिए उसने बोधार्थ गमना की और कहा कि वह बिल्कुल सही है। राजा का बेहूत भय से पीसा पड़ गया। तब मन्त्री ने ज्योतिषी से कहा 'तुम्हारी गमना के अनुसार तुम्हारी बाणी मृत्यु कब आयेगी? ज्योतिषी ने उत्तर दिया "बारह बरस बाद। मन्त्री ने तुरन्त अपनी इयाज खींची और ज्योतिषी का छिद्र बड़ ल पृथक कर वह राजा से बोला 'बेटा आपने उठका लूठ? वह तो इसी क्षण मर गया।

### कठिनाइयों का निर्भय होकर सामना करो

— एक बार जब मैं बाराणसी में था मैं एक ऐसे स्थान से निकला जिसके एक ओर विद्यालय जलाशय था और दूसरी ओर एक छोटी दीवार। जमीन पर बहुत सारे मन्दर बँडे हुये थे। बाराणसी के मन्दर विद्यालयपर और भीतर होते हैं। उन पर यह शूठ सवार हो गया कि मैं उसकी सड़क से न गुजर पाऊँ। उन्होंने बुद्धिमान दिखाना बीछना-बिल्लाना शुरू कर दिया और जैसे ही मैं उनके निकट से निकला वे मेरे पैरों की ओर झपटे। जैसे जैसे वे मेरे मन्त्रीक आते गये मैंने दौड़ना शुरू कर दिया मैं मिठनी देखी से दौड़ता था उठती ही पैरों से मन्दर मेरी ओर झपटते थे और मुझे काट घाने को दौड़ने

इसी गति से चलने देना चाहिये । हम जल्दी क्यों कर रहे हैं ? अच्छी प्रकार सोचो और अपने शरीर को स्वस्थ रखो । अच्छा मोशन करो और संसार के प्रति सहानुभूति रखो । कट्टरबादी केवल गुना फैलाते हैं ।

जब तुम कट्टरबादियों की संवत्ति से बाहर निकलोगे तभी तुम वास्तविक स्नह और सहानुभूति का पाठ सीख सकोगे और स्नेह तथा सहानुभूति की मात्रा जैसे-जैसे तुममें बढ़ती जायगी हम बेचारे कट्टरबादियों की निम्ना भर्त्सना करने की तुम्हारी प्रकृति भी उठनी ही पट्टी जायगी । जस्टे तुम्हें उसकी भूलों पर दया जायेगी ।

एक समय एक राजा ने जब यह सुना कि पड़ोसी देश का राजा उसकी राजधानी पर घेरा डामने के लिये आगे बढ़ रहा है तो उसने शत्रु से देश की रक्षा के उपायों पर विचारार्थ एक जनसभा बुलाई । इंजीनियरों ने परामर्श दिया कि राजधानी के चारों ओर मिट्टी की एक ऊँची दीवार खड़ी कर दी जाय और उसके साथ-साथ एक चौड़ी खाई खोद दी जाय । मीथियों ने सुझाव दिया कि वह दीवार बमड़े की बनवाई जाय क्योंकि 'बमड़े से बलम कोई बस्तु नहीं है । सीहार बिस्माय 'नहीं ये मसत कहते हैं । दीवार को मोहो से बनवाया जाय । और तब बकीला की बारी आयी । उन्होंने ठर्क दिया कि राज्य की रक्षाका सर्वोत्तम उपाय एक ही है कि शत्रु को बैधानिक तरीके से यह बतसाया जाय कि वह बुरे की सम्पत्ति को हड़पने का प्रयास कर एक अनुचित एक वीरकानूनी अपराध कर रहा है । सबसे अन्त में पुरोहित आगे बढ़े । वे इन सब सुझावों पर उपेक्षा भरी हँसी के उपरान्त बोले 'तुम सब पापनों जैसी बातें कर रहे हो । सर्वप्रथम बेचतामों को बलि देकर प्रसन्न करना चाहिये और तभी हम बजेय हो सकते हैं । इस प्रकार राज्य की रक्षा करने के बजाय वे मुर्ख जापस में बाद-बिबाद करते रहे और शयकते रहे । इसी बीच शत्रु आगे बढ़ आया उसने आक्रमण कर राजधानी को ध्वस्त कर दिया । ऐसे होते हैं वे कट्टरबादी ।

सब दुर्बलताओं और अघबिद्यताओं को त्यागो

-- मेरी शिवा का सर्वप्रथम पाठ यह है ऐसी क्रिती भी बीज को जो आध्यात्मिक, मानसिक अथवा शारीरिक दुर्बलता की जनक हो उसे चिमटे से भी न छुओ । धर्म मनुष्य में विद्यमान अन्तःमात शक्तियों की अभिव्यक्ति मात्र है । इस छोटे से शरीर के भीतर प्रबल शक्ति का स्रोत छिपा पड़ा है । और

बहु स्रोत ही स्वयं को पैसाता है। जैसे-जैसे वह शक्ति का स्रोत पैसाता जाता है, एक के बाद दूसरी देह अपर्याप्त होने लगती है। उन्हें त्याग कर यह जीवन व्योमंतर देह पारण करता जाता है। यही है मानव जर्म, सम्मता या प्रगति का सच्चा इतिहास।

तुम देखोगे कि ज्योतिष जादि रहस्यवादी विचारों सामान्यतया दुर्बल मस्तिष्क के लक्षण होती हैं। यद्यपि ज्यों ही वे तुम्हारे मस्तिष्क में महत्त्व पाने लगे तुरन्त चिकित्सक के पास जाओ अच्छा भोजन सो और विराम करो।

एक प्राचीन कथा है कि एक ज्योतिषी एक राजा के पास आया और कहने लगा "तुम छ. महीने में मर जाओगे।" राजा उसकी बात सुनकर इतना डर गया कि उसी लख डर के कारण मरने की स्थिति में पहुँच गया। किन्तु उसका मन्त्री बड़ा कुशल व्यक्ति था। उसने राजा से कहा कि वे ज्योतिषी भ्रम मूर्ख होते हैं। राजा को उस पर विश्वास नहीं हुआ। तब मन्त्री ने राजा को यह विचारने के लिए कि ज्योतिषी मूर्ख होते हैं एक उपाम सोचा। उसने ज्योतिषी को पुनः राजमहल आने का निमन्त्रण भेजा। वहाँ उसने ज्योतिषी से पूछा कि क्या उसकी मयना बिस्तुम सही है। ज्योतिषी ने कहा उसमें भ्रम ही नहीं सटती। किन्तु फिर भी मन्त्री को सन्तुष्ट करने के लिए उसने बोधाप मयना की और कहा कि वह बिस्तुम सही है। राजा का बेहूष भ्रम से पीता पड़ गया। तब मन्त्री ने ज्योतिषी से कहा "तुम्हारी मयना के अनुसार तुम्हारी अपनी मृत्यु कब आयेगी? ज्योतिषी ने उत्तर दिया "बारह वर्ष बाद। मन्त्री ने तुरन्त अपनी इयाप खींची और ज्योतिषी का सिर बड़ से पृथक कर वह राजा से बोला, देखा आपने उसका मूठ? वह तो इसी दिन मर गया।

### फठिनाइयों का निर्मम होकर सामना करो

..... एक बार जब मैं बाघमछी में था मैं एक ऐसे स्थान से निकला, जिसमें एक ओर विशाल पलायन था और दूसरी ओर एक ऊँची दीवार। पानी पर बहुत सारे दम्पर बँठे हुये थे। बाघमछी के बन्दर विमानकाम और बैठान होते हैं। उन वर यह सूट सवार हो गया कि मैं उनकी सड़क से न मुबर पाऊँ। उन्होंने पृथिव्या रिखाना, बीसना-बिस्ताना शुरू कर दिया और जैसे ही मैं उनके निरुद्ध से निकला वे मेरे पैरों की ओर लपटे। जैसे-जैसे वे मेरे मजरीक लगे गये मैंने पीड़ना शुरू कर दिया मैं जितनी तेजी से दौड़ता था उतनी ही तेजी से बन्दर मेरी ओर लपटते थे और मुझे काट सामे को पीड़ने

सगे । उनसे बचकर निकलना असम्भव था समझे गया । सभी एक अपरिचित व्यक्ति ने पुकार कर मुझसे कहा 'इन दुष्टों के सामने डटे रहो मैं मुझकर बन्दरों के सामने डट गया । तब मे पीछे हट गये और आखिर मैं भाग गये । 'यही जिहा जीवन भर के लिये गाँठ बाँध लेनी चाहिये । मुसीबतों का सामना करो निर्भीकतापूर्वक सामना करो । उन बन्दरों के समान ये मुसीबतें भी अपने आप सब जायेंगी - - - जब हम स्वयं उनके सामने से भागना बन्द कर देंगे ।

### दो प्रकार का साहस

साहस दो प्रकार का होता है । एक प्रकार है तोप के सामने डक जाना । दूसरा प्रकार है आध्यात्मिक विस्वासाँ पर डटे रहना । एक सम्राट् ने भारत पर आक्रमण किया । उसके मुख में आदेश दिया था कि वह भारत के कुछ संस्था सियों से बचस्य लिये । बहुत बोज करने के बाद उसे एक छ्त् एक छिता पर बैठा हुआ दिखायी पड़ा । सम्राट् ने उससे बोड़ी सी बात की । वह उस संस्थासी के साथ से बहुत अधिक प्रभावित हुआ । उसने संस्थासी से मागह किया कि वह उसके साथ उसके देश को जमे । संस्थासी ने कहा 'महीं मैं यहाँ इस जंगल में पूर्वतमा समुत्त हूँ । सम्राट् ने कहा 'मैं तुम्हें घन-बैभव पद-वशिष्ट सब कुछ दूंगा । मैं विश्व का सम्राट् हूँ । इस पर संस्थासी ने उत्तर दिया 'महीं मैं इन चीजों का भूषा नहीं । तब सम्राट् ने भयकी थी । 'यदि तुम नहीं बसोवे तो मैं तुम्हें मार डालूंगा । तब वह संस्थासी उपेसापूर्वक मुस्कृतया और बोला 'दे सम्राट् ! यह तुमने सबसे बड़ी मुर्खतापूर्वक बात कही । तुम मुझे नहीं मार सकते । मुझे न मूर्ख मुखा सकता है न जग्नि जमा सकती है । न तलवार काट सकती है क्योंकि मैं ब्रह्मा जगत्, नित्य सर्वव्यापक एवं अविनाश्यात् आत्मा हूँ । यह है आध्यात्मिक निर्भीकता । दूसरे प्रकार का साहस सिंह या व्याघ्र का साहस है ।

### धीर और उदार बनो

एक बार मैंने एक पन्ना पढ़ी कि कुछ बहाय बगिणी समुद्र द्वीपों (South sea Islands) में तुफान से धिर गये । इस घटना का एक चित्र इन्स्ट्रुटेड सन्दन स्कुल' नामक समाचारपत्र में छपा भी था । वे सभी बहाय ध्वस्त हो गये । केवल एक इम्निठ पहाय तुफान की टकरार से बचकर भी बचा रह

पया । उस दिन में दिखाया गया था कि जो लोग समुद्र में डूबने जा रहे थे वे अपने डूबते बहाव पर खड़े होकर उन सापियों को बिनका बहाव नुकसान की चपेट से बच निरुत्सा वा हर्षप्रति हाथ बिबाई दे रहे थे । इतने बीर और उदार बनो । बन्नों को उठ पड़े में मठ खींचो जिसमें तुम स्वयं फिर पड़े हो ।

### प्रसन्नतापूर्वक सहम करो

यदि तुम संसार का मार उठाने के लिये सचमुच तत्पर हो तो प्रसन्नता पूर्वक उठओ । किन्तु हमारे कानों में तुम्हारी कण्ठों की मर्मिताओं की ध्वनि नहीं पकनी चाहिये । हमें अपनी मुसीबतों के डण्डों मठ ठाकि हम समझने लगे कि हम ही अपनी मुसीबतों के साप तुमसे ज्यादा सुखी हैं । जो मनुष्य वास्तव में वास्ता उठता है वह संसार को बन्धबाह देता हुआ चुपचाप अपने मार्ग पर चलता है । उसके मुख से निम्ना यत्कर्ता या आलोचना का एक शब्द नहीं निकलता । इसलिये नहीं कि नहीं कोई कुपार नहीं है बल्कि इसलिये क्योंकि उसने स्वेच्छा से स्वयंप्रेरणा से उस बाध को अपने कर्णों पर उठाया है । उदार को अपने मार्ग पर वातम्पूर्वक चलना चाहिये न कि जिसका उदार किया गया ।

न तो कष्टों को निमग्न हो और न उनसे भापो । जो धाता है, उसे श्रेयो । किसी चीज से प्रभावित न होना ही मुक्ति है । केवल श्रेयो ही मत्त ममिष्ठ भी रहो ।

‘सुख कितनेबासा है—बहुत बच्छी बाठ है । उसे किसने मना किया ? सुख मानेबासा है उतका भी स्वागत । उस बैस की कथा स्मरण रहो । एक मच्छर को एक बैस के सीम पर बैठे हुए बहुत देर बीत गयी । तब उसके दिल में कुछ चुना और वह बैस से बोला धीमान् बैस । मैं बहुत देर से यहाँ बैठा हूँ । धावर इससे बाग दृष्ट हो गये होने । मुझे इसका वेद है । अब मैं चला जाता हूँ । किन्तु बैस ने उत्तर दिया ‘महीं नहीं विलुप्त नहीं । तुम धरम पूरे परिवार को मे बाभो और मेरे सीम पर रहो । तुम मेरा बिबाइ ही क्या लपटो हो ? यही उत्तर हम मापदाओं को भी क्यों न दें ।

### सुख और असफलतायें वरदान स्वरूप

विचार ही हमारी मुख्य प्रेरणा शक्ति होते हैं । मस्तिष्क को उच्चतम विचारों से भर दी । प्रतिदिन उनका ध्यान करो प्रतिमाह

करो । असफलताओं की चिन्ता मत करो । वे स्वामाबिक हैं । वे जीवन का सौन्दर्य हैं । उनके बिना जीवन में रह ही क्या जायेगा ? यदि संघर्ष न हो तो जीवन को पाने का उपयोग ही क्या ? जीवन की कठिनाई ही सब कहां रह जायेगी ? संघर्षों की भ्रमों की चिन्ता मत करो । मैंने कभी पाप को झूठ बोला ही नहीं सुना । किन्तु वह केवल गाय है । मनुष्य कभी नहीं । अब इन असफलताओं की परवाह मत करो । अगर थोड़ा पीछे फिसल ही जये तो क्या हुआ ? आदर्श को पकड़ने के लिये सहस्र बार जाये बड़ो और यदि तुम सहस्र बार असफल हो जाओ फिर भी एक नया प्रयास बरबस करो ।

संसार में कोई चीज बिल्कुल नुपी नहीं है । यदि यहां सेतान है तो ईश्वर भी है अन्यथा वह होता ही नहीं ।

हमारी भ्रमों का भी स्वान है । बड़े जलो । यदि तुम सोचते हो कि तुमने कोई अनुचित कर्म कर दिया है तो भी पीछे मत देखो । क्या तुम्हारा विश्वास है कि यदि तुमने ये गलतियां पहले न की होतीं तो तुम वह बन पाते जो आज हो ? तो अपनी गलतियों को मन्यबाद दो । वे अनजाने में बरदान बन कर आयीं । कष्टों को भी मन्यबाद । सुखों को भी मन्यबाद !! तुम्हारा क्या होगा इसकी चिन्ता मत करो । आदर्श पर डटे रहो । जाने बड़ो । छोटी-छोटी गलतियों और चीजों की ओर पीछे मत निहारो । इस जीवन-संघाम में सुखों का सर्व-गुम्बार जडेमा ही । जो इसने जाना है कि इस सर्व गुम्बार को भी नहीं सहन कर सकते वे पंक्ति के बाहर निकल कर बड़े हो जाय ।

## अपने देवत्व को पहचानो

मैं हिमालय पर यात्रा कर रहा था । लम्बा मार्ग हमारे सामने फैला पड़ा था । हम पतलीन भिक्षुकों का झोने के लिए कौन भिम पाठा ? अब हमें पूरी यात्रा पैदल ही पार करनी थी । हमारे साथ एक बूढ़ पुरुष भी थे । सिकड़ों मीलों तक वह मार्ग ऊपर बढ़ता था नीचे उतरता था । अब उन बूढ़ भिक्षु मैं यह सब देखा तो वे बोले "जोह मैं कैसे मार्ग पार कर पाऊंगा ? मैं अब अधिक नहीं बन सकता । मेरा बम टूट रहा है । मैंने उनसे कहा "अपने पैरों को और देखो । उन्होंने बीसा ही किया । तब मैंने कहा, "यह सड़क जो आपके पैरों के नीचे है वही है जिसको आपने सब तक पार किया है और यही वह सड़क है जो आप अपने सामने देख रहे हो । यह भी सीमा ही तुम्हारे पैरों के नीचे जायेगी । सर्वोत्तम बन्गुएँ भी तुम्हारे पैरों के नीचे

है क्योंकि तुम हिम्ब नश्वर हो। ये सब चीजें तुम्हारे पैरों के नीचे हैं। यदि तुम चाहो तो नश्वरों को भी त्रिपद सकते हो। यह है तुम्हारा वास्तविक स्वभाव। बसवान् बनो समस्त अन्धबिस्वाहों से ऊपर उठो और मुक्त हो जाओ।

### मौन व अविरत कार्य

बड़ा स्थान पाकर कोई भी बड़ा बन सकता है। रंगमंच के लट्टूओं के प्रकाश में कायर भी बीर बन सकता है। संसार उसे देखेगा। किसका हृदय नहीं उलझन पड़ेगा? जब तक अपने से सर्वोत्तम बन पड़ता है, तब तक किसी नाकिर्मी की गति सीध नहीं खूती किन्तु उत्तरोत्तर मुझे उस कीड़े में सच्ची महानता के दर्शन हो रहे हैं जो अपना कर्त्तव्य-यातन कुपचाप एवं अकिरण गति से प्रतिक्षण प्रतिपन्न करता रहता है। एक प्राचीन कथा इस प्रकार है कि एक नन्ही सी विनहरी बार-बार रेश में जोटती थी और दीककर सेतु की ओर जाती थी वहाँ अपना लीर झाड़कर फिर रेश में आ जाती थी। इस प्रकार वह भी भगवान् राम के सेतु-निर्माण मंत्र में अपना अकिरण योग दे रही थी। बन्दर उसे देखकर हस पड़े क्योंकि वे पूरे पहाड़ पूरे जंगल रेश के विशाल डेर सेतु के बिपु जल-जल कर ला रहे थे। मठ ने उस नन्हीं सी विनहरी पर इसे जो रेश में जोट कर अपने लीर पर जमे रेश को पुस पर झाड़ जाती थी। किन्तु राम ने जब इसे देखा तो उन्होंने कहा— 'अन्ध है यह नन्ही सी विनहरी। वह अपनी गति पर अधिक से अधिक कार्य कर रही है। मठ वह भी पत्नी ही महान् है जिठना तुममें है अन्ध कोई। तब उन्होंने विनहरी की पीठ पर स्नेहपूर्वक चपकी की और राम की बंधुनियों के निशान बाब की विनहरी की पीठ पर देखे जा सकते हैं।

### प्रत्येक कर्त्तव्य पवित्र है

प्रत्येक कर्त्तव्य पवित्र है और कर्त्तव्यनिष्ठा ईश्वरोपासना का सर्वोत्तम प्रकार है। जो कर्त्तव्य हमारे विस्तृत समीप है जो कर्त्तव्य हमारे हार्मों में है उसे अच्छी प्रकार करके हम स्वयं को ही बसवान् करते हैं और इस प्रकार एक-एक पग पर अपनी शक्ति को बढ़ाते हुए हम उस जगत्प्राय में पड़ने वाले जगत्प्राय को जगत्प्राय तथा जगत्प्राय में सबसे अधिक और सम्मानित कर्त्तव्यों के वासन करने का मुम्बसुर भी प्राप्त होता।



हम उस स्थान पर पहुंच जायेंगे जिसके हम योग्य हैं। प्रत्येक वस्तु का अपना स्थान निश्चित होता है। यदि किसी में दूसरे से अधिक क्षमता है तो संसार उसका भी पता समा सेवा। इस विश्व-व्यवस्था में ऐसा ही होता जाया है। अतः अस्तित्व रहने से कोई साम नहीं। कोई नयी व्यक्ति दुष्ट हो सकता है किन्तु उसमें कुछ गुण भी अवश्य होंगे जिन्होंने उसे धनवान् बनाया। यदि किसी दूसरे व्यक्ति में भी वे ही गुण हों तो वह भी नयी बन जायगा। तब समय आने और विकसित करने से साम ही क्या? उससे हमें अच्छी बातों की ओर बढ़ने में सहामता नहीं मिलेगी।

### प्रत्येक कर्तव्य में रस लो, उसे कोसो मत

जो अपने हिस्से में जाये हुए छोटे से काम को करते समय भी बुद्धिवादी है, वह हरेक काम में बुद्धिवादी है। सदैव बुद्धिवादी होने वह एक दुष्टपूर्ण जीवन बितायेगा और प्रत्येक कार्य में असफल होगा। किन्तु वह व्यक्ति जो अपने कर्तव्य को पूरी शक्ति के साथ करता रहेगा पहिले में अपना कर्मा सपाये रहेगा अन्त में वह अवश्य ही फल पायेगा और अधिकारिक उत्तर दायित्व निभाने का अवसर उसे मिलेगा।

फल के प्रति आसक्ति रखनेवाला कार्यकर्ता ही अपनी पूरी शक्ति के साथ उत्तरदायित्वों को निभाने में हिचकिचाहट दिखाता है। निरासक्त कार्यकर्ता के लिए सब कर्तव्य बराबर हैं, अच्छे हैं। प्रत्येक कर्तव्य उसके लिए स्वार्थ और विषमतामुपलब्धता का अनुभव करने के लिए एक सुन्दर अस्त्र बनकर जाता है उसके द्वारा वह आत्मा की मुक्ति प्राप्त करता है।

असन्तोषी को सब कर्तव्य अरिबिकर समझे हैं। वह कभी अस्तित्व नहीं हो सकेगा और उसका सम्पूर्ण जीवन असफलता की कहानी बनकर रहेगा। हम कर्म करते जैसे जो कार्य हमारे हिस्से में जाये उसे करें और कार्य के फल में अपना कर्मा सपाये रहें, तब हमें उस क्वीतिर्मय के दर्शन होना निश्चित है।

कोई कार्य तुच्छ नहीं। यदि मनोसन्द कार्य मिल जाये तो मूर्ख भी उसे पूरा कर सकता है किन्तु बुद्धिमान पुरुष नहीं है जो प्रत्येक कार्य को अपने सिधे दृष्टिकर बना ले।

इस संसार में प्रत्येक वस्तु बटुस के बीच के समान है जो यद्यपि देखने में तो सरसों के दाने के समान समु चीक पड़ता है तथापि अपने अन्तर विशाल

एव को द्विपामे हुए है। सचमुच महाम् नहीं है जो यह बात परत कर  
 एक कार्य को महाम् बनान में सकलता प्राप्त कर दिखान।

**आत्मनिरीक्षण करो, अन्यो को दोष मत दो**

हमें यह ज्ञान सेना चाहिए कि हम सब एक कुछ नहीं बन सकते जब तक  
 स्वयं ही उसके लिए तैयार न हों। जब तक शरीर की तैयारी न हो  
 ही रोप प्राप्त नहीं हो सकता। रोप का आगमन केवल कौटुम्बिकों पर  
 नहीं निर्भर करता अपितु शरीर में उनके लिए विद्यमान अनुकूलता पर  
 निर्भर करता है। हम जिसके योग्य हैं वही हमें मिलता है। हम अपना  
 मन छोड़ें और इस बात को समझें कि वकारण कुछ कभी नहीं आता।  
 कोई आघात बिना उसका प्राप्त नहीं सकता। कोई बुध्दी नहीं की जिसके  
 लगे मने अपने हाथों रास्ता तैयार न किया हो वह हमें समझना  
 चाहिए।

अपना विभेदपन करो तो तुम्हें पता लग जायेगा कि तुम्हें प्रत्येक आघात  
 निम्ना क्योंकि तुम स्वयं को उसके लिये तैयार किया। मात्रा कार्य तुमने किया  
 रोप आभा बाह्य जगत् न पूरा कर लिया। इस तरह तुम्हें आघात मिला।  
 यह ज्ञान होने पर हम विनम्र हो सकेंगे। मात्र ही इस आत्मनिरीक्षण में से  
 आघात का स्वर भी मुहार्द बना। वह स्वर है बाह्य जगत् पर पने ही मेरा  
 कोई बल न आता ही किन्तु अपने आन्तरिक जगत् पर, जो मेरे अस्त  
 निष्ठ है मेरे अन्दर ही है, तो मेरा नियन्त्रण बल सकता है। यदि किसी  
 असफलता के लिए इन दोनों का संयोग होना आवश्यक है, यदि मुझे आघात  
 अपने के लिए दोनों का मिलन होना अनिवार्य है तो मैं अपने अधिकार के  
 जगत् को इस कार्य में योग नहीं देने दूंगा। तब क्या आघात क्यों कर लग  
 सकेगा? यदि मैं सच्चा आत्मनियन्त्रण पाऊं तो मुझे आघात कभी नहीं  
 सकेगा।

बस एक अपनी भूलों के लिए किसी को दोष न दो, अपने पैरों पर खड़े  
 होओ, और सम्पूर्ण आत्मिक अपने अन्दर ही। वही यह विषय जिसे मैं छोड़  
 रहा हूँ मेरी अपनी करनी का कर्म है। और इसी से सिद्ध है कि इसे मैं स्वयं  
 ही दूर करूँगा। जिसकी रचना मैंने की उसका विनाश भी मैं ही करूँगा।  
 किन्तु जिसे किसी बन्ध ने बनाया है, उसका विनाश मैं कभी नहीं कर  
 पाऊँगा।" अतः उचित है। निर्भीक बनो, सर्व बनो। सम्पूर्ण उत्तरदायित्व

अपने कर्मों पर संभालो और समझ लो कि तुम ही अपने भाग्य विधाता हो । जितनी शक्ति और सहायता तुम्हें चाहिए वह सब तुम्हारे वन्दर ही है । अतः अपना भविष्य स्वयं बनाओ । 'मृत मरीच को बचना हो' अन्तर्भव भविष्य तुम्हारे सामने है । और सर्वत्र स्मरण रखो कि प्रत्येक क्षण, विचार और कृति तुम्हारे भाग्य का निर्माण करता है । जिस प्रकार बुदे कर्म और विचार व्याघ्र के समान तुम्हारे ऊपर झपटने को तैयार हैं, उसी प्रकार एक आत्मा की किरण भी है कि अच्छे कर्म और विचार सद्गुरुओं की शक्ति से तुम्हारी सदा सर्वदा रक्षा करने को भी तत्पर हैं ।

### सह स्वयं अपने भाग्य निर्माता

बिना अधिकारी बने कोई कुछ नहीं पा सकता । यही सनातन नियम है । कमी-कमी हमें ऐसा भयता होना कि हाथ-पद सह सही नहीं हैं, किन्तु अन्तर्भव मत्वा हमें इसका विश्वास होकर रहना । कोई व्यक्ति जीवन भर बनी बनने के लिए छटपटाता रहे उसके लिए सद्गुरुओं लोगों को छोड़ो किन्तु अन्त में एक दिन वह देखता है कि काम-बह बलवान बनने के योग्य ही नहीं था और तब अपना सम्पूर्ण जीवन उसे भार या विपदा दिखाई देता है । हम यम ही अपने इन्द्रिय सुख के लिए अनेकों साधनों को बना करते रहे किन्तु उनमें से केवल वही हमारा है जिसे हमने अज्ञित किया है । एक मूर्ख संसार की समस्या किताबें खरीद बाले और वे सब उसके पुस्तकालय में सजी रहे किन्तु वह उनमें से केवल उतनी ही पढ़ पायेगा जितने का वह अधिकारी है और वह अधिकार कर्म द्वारा उत्पन्न होता है ।

हमारा कर्म निर्णय करता है कि हमारा कितना अधिकार है और हम कितना आत्मसात कर सकते हैं । स्वनिर्माण की शक्ति हमारे पास है । हम भाग्य को कुछ हैं यदि यह हमारे विद्यमान कर्मों का परिणाम है तो इससे निश्चित तर्क निकलता है कि जो कुछ हम भविष्य में बनना चाहते हैं वह हमारे वर्तमान कर्मों का परिणाम होगा । अतः हमें विचार करना चाहिए कि हम कर्म कैसे करें ।

### सहायता भीतर से मिलेगी

हम रक्षक के कीड़ों के तुल्य हैं । हम अपनी देह में से ही भाषा कातते हैं और अपने चारों ओर एक कोया बुन मते हैं और फिर कुछ समय परचाय

उसके बन्दर बन्दी हो जाते हैं। किन्तु यह सदा नहीं खोया। उस कोमे के भीतर रहकर हम आध्यात्मिक साक्षात्कार कर लेंगे और तितली के समान मुक्त होकर बाहर निकल आयेंगे। कर्म का यह ठाना-बाना सबसे अपने चारों ओर घूर लिया है। ब्रह्मानन्द हम समझते हैं कि हम ब्रह्म में पड़े हैं और तब सहायता के लिए भीखते पुकारते हैं। किन्तु सहायता बाहर से नहीं आती वह हमारे बन्दर से ही आयेगी। चाहे तुम बिरब के समस्त देवताओं का नाम सफर बिस्माओ पुकारो। मैं भी क्यों तरु बिस्माया। बन्ध में मने पाना कि मुझे सहायता मिली किन्तु वह मेरे बन्दर से आयी। जो कुछ मैंने भूर्से की थी उतका मुझे निरुत्तरण करमा पड़ा। यही एकमेव मार्ग है। मुझे जब बाद को वाटमा पड़ा जो मने अपने चारों ओर घूर लिया था और उसे काटने की शक्ति अपने बन्दर ही विद्यमान है। मैं यह बिस्मावपुत्र कह सकता हूँ कि मेरे विगत जीवन की एक भी बच्छी या बुरी कामता व्यर्थ नहीं गयी और आज मैं जो कुछ भी हूँ अपने सम्पूर्ण अतीत (मने वा बुरे) का ही परिणाम हूँ। मैंने जीवन में अनेक भूर्से की हैं किन्तु ध्यान को मुझे निरन्ध और उनमें से प्रत्येक भूर्से को किये बिना मैं वह नहीं बन पाता जो आज हूँ और इसीलिए मुझे पूर्ण सम्बोध है कि मैंने वे भूर्से कीं। मेरे कहने का यह अर्थ कदापि नहीं कि तुम बर बापस जाकर जान-भूमकर पतयियां करना शुरू कर दो। मेरे कथन का यह पक्ष अर्थ मत समझो। किन्तु जो भूर्से तुमने हो चुकी हैं उनका तिय बिना मत होओ। स्मरण रखो कि बन्ध में सब कुछ ठीक हो जायगा। इसके अतिरिक्त कुछ अल्प हो ही नहीं सकता क्योंकि हमारी प्रकृति ही सुख-दुःख है। और वह प्रकृति मष्ट नहीं की जा सकती। हमारी भूर्से प्रकृति सदा बनी रहती है।

### सवधरित्र का निर्माण

मनुष्य मार्तो एक केन्द्र है जो अपनी ओर चारों ओर से ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों को आकर्षित कर रहा है। इस केन्द्र में वे समस्त शक्तियां समाहित होकर पुनरपि एक शक्ति-प्रवाह के रूप में वहाँ से बापस सीट रही हैं।

पान-भुष्य दुःख-मुख— सब उसकी ओर दीफ़ रहे हैं और उसे चिपट रहे हैं। उन्हीं में से वह प्रकृतियों की उस प्रबल पाय का निर्माण करता है जिसे बलिब कहते हैं तथा उसे प्रकामित करता है। जिस प्रकार उसमें सब कुछ

आकर्षित करने की शक्ति विद्यमान है, उसी प्रकार उसे विकीर्ण करने की शक्ति भी विद्यमान है ।

यदि कोई मनुष्य समाचार अधुन बाटें सुने अधुन चिन्तन करे, अधुन कर्म करे तो उसका अन्त-कर्म बुरे संस्कारों से मग्न हो जायगा । वे उसके मन जाने में ही उसके समस्त विचारों और कार्यों को प्रवाहित करेंगे । वास्तव में ये सुसंस्कार सर्वत्र कार्यशील बने रहते हैं और उनका परिणाम होता है । केवल अनिष्ट कर्म और मनुष्य बुरा मनुष्य बन जाता है । वह इसे रोक नहीं सकता । ये समस्त संस्कार एकत्रित होकर उसके अन्तर बुरे कर्मों के लिए प्रबल इच्छा उत्पन्न कर देंगे । वह इन संस्कारों के हाथ की कठमूतनी बन जायेगा और वे उसे निरन्तर दुष्कर्म की ओर ढकेलेंगे ।

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य शुभ चिन्तन करता है शुभ कर्म करता है तो उनके संस्कारों का संघन शुभ होगा । ये शुभ संस्कार ठीक उसी प्रकार उसे उसकी इच्छा के विपरीत भी उत्पन्न करेंगे । जब मनुष्य अत्यधिक शुभ कर्म एवं शुभ-चिन्तन कर चुका होता है तो उसमें अपनी इच्छा के विपरीत भी शुभ कर्म करने की अप्रतिहत प्रवृत्ति उत्पन्न होती है । यदि वह पाप कर्म करना चाहे तो भी उसका मन उसकी प्रवृत्तियों से बंधा होने के कारण उसे वह पापकर्म करने की अनुमति नहीं देगा । उसकी प्रवृत्तियाँ उसे आपस लौटा लारेंगी क्योंकि वह पुरातया शुभ प्रवृत्तियों के बन्धीभूत है । जब ऐसी स्थिति पहुँच जाय सभी जानना चाहिए कि मनुष्य में सञ्चरित कुछ भूल हो गया है ।

जब कोई मनुष्य विचारों पर कोई भुन बनाता सीलता है तो प्रारम्भ में वह प्रत्येक पर्व पर अपनी अनुसिद्धा समझ-समझ कर रहता है । यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि अनुसिद्धा का चसना उसका स्वभाव न बन जाय । बाद में वह उस भुन को प्रत्येक पर्व की ओर ध्यान दिये बिना ही सरलतापूर्वक बना लेता है । इसी प्रकार हम अपने बारे में भी देख सकते हैं कि हमारी वर्तमान प्रवृत्तियाँ हमारे पिछले विचारपूर्वक चिन्ते वसे कर्मों का परिणाम हैं ।

### आत्म-संघम की शक्तियाँ

जब हम अपनी भावनाओं को सुना छोड़ देते हैं तो हम अपनी बहुत सी शक्ति नष्ट करते हैं । हमारे स्नायु सीधे होते हैं मन बँचन रहता है और बहुत

बोझा कार्य ही पाता है । जो शक्ति कार्य करने में व्यय होती चाहिये थी, वह निरर्थक ही भावना के रूपमें गप्ट हो गयी जिसका कोई उपयोग नहीं हुआ । जिस समय मन पूर्णतया स्थिर एवं एकाग्र होता है तभी उसकी पूरी शक्ति सुम कार्य करने में व्यय होती है । और यदि तुम संसार के महापुरुषों के जीवन शरित्त पढ़ो तो तुम्हें पता चलेगा कि वे अद्भुत स्थिर व्यक्ति थे । कोई भी वस्तु मानों उनके सम्मुख को भंग नहीं कर सकती थी । यही कारण है कि जो व्यक्ति क्रुद्ध हो जाता है वह कभी अधिक कार्य नहीं कर पाता और जिस व्यक्ति को कोई क्रुद्ध नहीं बना सकता वह बहुत अधिक कार्य कर पाता है । जो मनुष्य क्रोध ईर्ष्या या अन्य किसी विकार का दास बन जाता है, वह कार्य नहीं कर सकता वह अपने स्वर्ग के खण्ड-खण्ड कर डालता है और कोई ठोस कार्य नहीं करता । शास्त्र अध्यायीत सन्तुलित एवं स्थिर मन ही सबसे अधिक कार्य कर पाता है ।

विकारों की प्रत्येक गहर पर विजय से तुम्हारे सामर्थ्य में वृद्धि होती है । बतएव क्रोध के बपने क्रोध न करना भी अन्य नैतिक कार्यों के समान ही उपादेय होती है । ईसा ने कहा था "कुपारि का प्रतिरोध मत करो । हम इस शस्त्रको तब तक नहीं चपक सकेंगे जब तक हम यह न जोख लें कि यह केवल वैश्विक दृष्टि से ही उचित नहीं अपितु सर्वाधिक उत्तरीय भी है क्योंकि क्रोध को बपाने वाले की अपनी शक्ति का ही ह्रास होता है । तुम्हें अपने मन को क्रोध और बुका शक्ति की विकार तरंगों के बधीभूत नहीं होने देना चाहिये ।

एक बार बोझों की बग्गी पह्राड़ी के डाल पर अनियमित हो डुमक बाप बबबा शरित्त उठके घोड़ों को नियन्त्रण में रखे । शक्ति की क्रियमें अधिक अभिव्यक्ति है—घोड़ों को बुरी छूट देने में या उन पर नियन्त्रण रखने में ? एक बम का बोसा हवा में दूर तक उठवा जाता है और बन्ध में घरटी पर पिर बड़ता है । दूधरा पीसा मार्ग में बीबार से टकरा जाने के कारण बही रह गया किन्तु उन दोनों की टक्कर से बल्यबिध ताप शक्ति पैदा होती है । स्वार्थ हेतु की टक्कर जो शक्ति तुमसे बाहर जाती है उसमें तुम्हारे पाप बापस कुछ नहीं मोट्या किन्तु यदि उसे संयमित कर लिया गया होता तो काफी बहित होकर लौटती ।

इस बालक-नियन्त्रण के द्वारा वह प्रबल इच्छा-शक्ति व शरित्त पैदा होते हैं जिनमें से ईसा या क्रुद्ध पैदा होते हैं ।

यदि कोय की एक बड़ी सहर मन में उठे तो उस पर हम कैसे नियन्त्रण करें ? ठीक उसकी बिरोधी सहर उत्पन्न कर । अर्थात् प्रेम भाव को उद्दीपित करो । कभी कोई स्त्री अपने पति से बहुत नाउजब हो जाती है और यदि उसी स्थिति में तन्हा शिशु बर्हा जा जाता है तो माँ उस बच्चे को प्रेम से चुम्ब लेती है पुणनी सहर मर जाती है और बच्चे के लिए प्रेम की एक नयी सहर जन्म ले लेती है । वह दूसरी सहर को बना लेती है प्रेम भ्रम का प्रतिपत्नी है । इसी प्रकार जब मन में चोरी का भाव उठे तब चोरी, न करने के भाव का चिन्तन करना चाहिए । जब उपहार पाने की कामना मन में जगे तब उसे उसके बिरोधी विचार से दबा दो ।

आदर्श पुरुष वह है जो बधिक्रम भीरवता और एकान्त में भी तीव्र क्रियाशीलता प्रकट करता है और जो तीव्र क्रियाशीलता के बीच भी मद्दस्थता की निस्तम्भता और एकान्तता का अनुभव करता है उसने संयम का रहस्य सीख लिया है और अपने ऊपर नियन्त्रण पा लिया है । किसी बड़े नगर की कोसा हलपूर्य सड़कों पर घूमते हुए भी उसका मन इतना शांत रहता है जैसे मानों वह ऐसी कसरत में बैठा हो जहाँ ध्वनि भी उसके निकट नहीं पहुँच सक्ती तब भी इस पूरे समय में अति क्रियाशील रहता है । यही कर्मयोग का आदर्श है और यदि तुम यह आदर्श प्राप्त कर सको तो समस्त मो कि तुमने कर्म का रहस्य जान लिया ।

### सच्चे विचारों की शक्ति

“गीतम बुद्ध के जीवन में हम उन्हें सदैव यह कहते हुए पाते हैं कि वे पञ्चीसवें बुद्ध हैं । उनसे पूर्वकालीन चौबीस बुद्ध इतिहास को जगता हैं, यद्यपि इतिहास को ज्ञात बुद्ध ने अपना जीवन उन चौबीस बुद्धों द्वारा निर्मित जीवन पर ही खड़ा किया होगा ।

महात्म्य पुरुष शांत मीन और अज्ञात रहते हैं । वे सोच ही बस्तुविचारों की शक्ति को जानते हैं । उन्हें विश्वास रहता है कि यदि वे किसी बुद्धा में प्रवेश कर द्वार बन्द कर लें और केवल पाँच सच्चे विचारों का चिन्तन कर अपनी देह को त्याग दें तो उनके ये पाँचों विचार अनन्त काल तक जीवित रहेंगे । सच ऐसे विचार परबतों को भेदकर, समुद्रों को सौंघकर संसार मर में ध्याप्त हो जायेंगे । वे मानव-हृदयों और अस्तित्वों में महुरे प्रवेश कर जायेंगे । सहस्रों नर-नारियों को कर्म-शैलता से भर देंगे । और वे उन विचारों

को मानव - जीवन क क्रिया कक्षाओं में व्यावहारिक अभिव्यक्ति करके बिखारेंगे ।

### तुम स्वयं शक्ति बनो

तुम्हें केवल पुराने शक्तियों के उपदेह को सीखने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये । वे शक्ति या बुद्धे और उनके साथ ही उनके मत भी । तुम्हें स्वयं शक्ति बनना होगा । तुम भी उसी प्रकार बनो जिस प्रकार अब तक उत्पन्न हुए सजस्त महापुरुष—यहाँ तक कि अवतार भी—मनुष्य थे । केवल मन्त्र-नाट से क्या बनेगा ? केवल ध्यान-जादू भी क्या कर पायेगी ? मन्त्र वान भी कल्याण नहीं कर सकते । तुम्हें अपने पैरों पर ही खड़े होना होगा ।

### सच्चा मानव

तुम्हें इस नयी प्रजासी को—मनुष्य-निर्माण की प्रजासी को—अपनाना ही होगा । सच्चा मनुष्य वह है जो मुक्तिमत्त पौरुष के समान सामर्थ्यवादी हो किन्तु साथ ही नारी के जैसे कोमल अन्तःकरण से भी युक्त हो । तुम अपने चारों ओर घूनेवाले ललाचक प्रभावों के प्रति सहानुभूति तो हो किन्तु उसके साथ ही तुम बड़े एवं कर्तव्य मनोर भी बनो । तुममें मायाकाण्ठा भी अवश्य रहे मने ही वे शक्ति तुम्हें परस्पर विरोधी मयें—किन्तु ऊपर से परस्पर विरोधी दीखने वाले इन बुद्धों को अपनाना ही होया । यदि तुम्हारा गरिष्ठ तुम्हें नयी में झूठकर एक मय को पकड़ने का आदेश दे तो भी तुम पहले उसकी इस माया का पासन करो और बाद में तर्क-वितर्क करो । यदि कोई माया पकत हो तब भी पहले उसका पासन करना चाहिए, और बाद में उसके शक्ति का अध्ययन ।

सम्प्रदायों का मुख्य अविचार यह है — यदि किसी का बोझ भी भिन्न मत हुआ तो वह तुरन्त एक नया सम्प्रदाय प्रारम्भ कर देता है, उसमें प्रतीक्षा के लिये तनिक धैर्य नहीं होता । अब तुम्हें अपने संन के लिये मट्ट पत्रा का आच रचना चाहिए । वही माया मय के लिये तनिक भी स्वात नहीं है ।

— हमारे तनिक में एक भी शोही न रहे । तुम पवन के सवात उभूत छोड़ो किन्तु साथ ही इस नीचे एवं ग्यान के सवात आजाकारी भी बनो ।



## समय की माँग—संन्यासी

हममें से कुछ लोग इस प्रपञ्च से अलग रहे और केवल परमात्मा के लिये जीवित रहे । संसार के लिये जर्म की रक्षा करें । यदि तुम धीरग्य धारण करो तो बुढ़तापूर्वक बड़े रहो । यदि इस युद्ध में सैफ़कों मिर जाय तो भी पताका नो पाने रहो और बड़ते जाओ । चिन्ता नहीं कीज मिरता है सत्य संकल्प के पीछे भयवान् स्वयं विद्यमान है ही । जो मिरे बहु पताका को दूसरे हाथों में लीजत है और तब बहु कभी नहीं मिर सकेगी ।

जीवन की सुदृ मर्यादाओं में बंधे से बंधारे गृहस्थ कर ही चिन्ता सवते हैं ? यह संन्यासियों का कार्य है जिस के पत्नों का कार्य है कि जाकाब को 'हर । हर' शम्भो' के निताव से गुंजावमान कर दें ।

मेरी समस्त मायी जाबा उन युवकों में केन्द्रित है—जो बरिभवान् हों बुझिमान हों लोकसेवा के हेतु सर्वस्वत्यागी और जाबापालक हों जो मेरे विचारों को क्रियान्वित करने के लिये और इस प्रकार अपने तथा देश के व्यापक कस्माय के हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकें । जम्पवा साधारण सेनी के लड़के मुंड के मुंड धाते हैं और जाते रहेंगे । उनके मुख मिस्तेज हैं उनके हृदय कर्मचिंतना से धूम्य हैं । उनके शरीर दुर्बल हैं और कठोर परिश्रम करने के योग्य नहीं हैं उनम साहस का अभाव है । ऐसे लोगों के हाथ क्या कार्य हो सकेगा ? यदि मुझे मचिकेता की अदा से सम्पन्न केवल बस या बाएड युवक मिल जायें तो मैं इस देश के विचारों और कार्यों को एक नयी विधा में मोड़ सकता हूँ ।

जिनमें मुझे कुछ व्यक्तिगत समतायें बीच पड़ती हैं उनमें से कुछ विवाह के बंधन में बन्ध गये हैं । कुछ ने स्वयं को नाम प्रतिष्ठ या मन कमाने के लिये बेच बासा है और कुछ शरीर से दुर्बल हैं । रोप जिनकी संख्या अधिक है किसी उच्च मात्र को पहन करने में ही समर्थ नहीं हैं ।

मिस्त्रोह... क्योंकि ईश्वरीय दृष्ट्या से इन्हीं लड़कों में से कुछ समय बाद बाप्पारिमकता और कर्म-व्यक्ति के महान् पुत्र उदित होंगे जो भविष्य में मेरे विचारों को क्रियान्वित करेंगे ।

### शिक्षित युवकों को संगठित करो

विधित युवकों में कार्य करो, उन्हें एकत्र लाओ और संगठित करो । महान् त्याग के द्वारा ही महान् कार्य सम्भव है' करो मेरी योजना मेरे

विचारों को विचारित करो। " मेरे बीर धेड़ उदात्त बन्धुबो—अपने कर्तव्यों को कार्यकर्म में लगा दो कार्यकर्म बर वृद्ध बाबो। मत्त टहरो पीछे मत्त देखो—न नाम न लिये न मत्त के लिये बीर न ऐसी ही किसी अन्य निरर्थक वस्तु के लिये। व्यक्तिगत बहुमन्यता को एक ओर रोक दो और कार्य करो। स्वरथ रथो "वास के अनेक ठिकनों को जोड़कर जो रस्ती बनती है उससे एक उन्नत हाथी को भी बाधा ना सफ़टा है।

### श्री रामकृष्ण से मेरी प्रार्थना

जब मैं सार्वभौमिक समन्वय के संदेश क प्रकाशता बन्धुबो श्री रामकृष्ण से प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वयं को तुम्हारे अन्त-करणों में प्रकाशित करें ताकि तुम समस्त ऐहिक कामनाओं से ऊपर उठकर साहसपूर्ण हृदय स अन्तों को भी भावा-मोह के भीषण भंवर से बाहर निकाल सको।

तुम सदैव मौन से सम्पन्न रहो। केवल बीर ही मुक्ति को सरलतापूर्वक पा सकता है न कि कायर। कमर कसो को भीरो। तुम्हारे सामने धनु खड़ा है—मह भावा-मोह की कूर सेना। इसमें तनिक संदेह नहीं कि समस्त महान् सफलताओं के मार्ग भावा बाबाओं से भरे हैं किन्तु तब भी तुम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अधिकतम प्रयत्न करते रहो।

श्री बीर बायबाबो ! बाये बढ़ो धाये बढ़ो ! उन्हें मुक्त कराने के लिय जो जंजीरों से बंधे हुए हैं, उनका बोझ हलका करने के लिये जो दुःख के मार से सवे हैं, उन हृदयों को आतोकित करने क लिय जो अज्ञान की गहन लमिना में डूबे हुए हैं। गुनो ! वेदान्त इकि की बीठ नीवना कर रहा है "अपी (निर्बन्ध बनो) ईश्वर करे यह पवित्र स्वर बरती के समस्त प्राणिमों क हृदयों की प्रखिनी खोलने में समर्थ हो।

### ओ ह्मिन्बुओ ! मोहनिद्रा को त्यागो

हृद प्रत्येक आत्मा को आह्वान करें "उत्तिष्ठत बापत प्राप्य बरधिबोधत—उठी जाओ और जब तक लक्ष्य प्राप्त न कर लो वहीं मत इहरी।" उठी। जाओ। दीर्घत्व के मोहनाल से निकलो कोई वास्तव में पुर्वत नहीं है। आत्मा अनन्त सर्वलक्षितवान् एवं सर्वभ्यारी है। बड़े ही स्वयं को सबभोरी अपने बन्दर व्याप्त ईश्वर का आह्वान करो। उसकी सत्ता को

अस्वीकार मत फटते । हमारी पाठि पर बहुत अधिक निष्क्रियता बहुत अधिक दुर्बलता और बहुत अधिक मोहवास छाया रहा है और अब भी है ।

ऐ हिन्दुओं ! इस मोहवास को उतार देंको । इससे मुक्त होने का मार्ग वही है जो तुम्हारे पवित्र शास्त्रों में बर्णित है ।

अपने सच्चे रूप को स्वयं समझो और अन्य प्रत्येक को सिखाओ । मुक्त आत्मा को जगाओ और फिर देखो वह कैसे बसती है । एक बार जहाँ यह मुक्त आत्मा अपने सच्चे स्वरूप को पहचान कर कार्यक्षेत्र में उतरी कि तुम्हारे पास प्रभुता, कीर्ति सुचिन्ता श्रद्धा और अन्ध जो कुछ भी श्रेष्ठ मुक्त है सब अपने आप अपने आयेंगे ।

### पुनर्युवा उज्ज्वल भारत

मैं भविष्य को नहीं बघटा न ही उसे जानने की विन्ता करता हूँ । किन्तु एक दृश्य मैं अपने मनश्चक्षुओं से स्पष्ट देख रहा हूँ 'यह प्राचीन मातृ भूमि एक बार पुनः जाम गयी है और अपने सिंहासन पर आसीन है—यहसे से कहीं अधिक मौरव एवं वैभवं से प्रशील । शान्त और मर्मलमय स्वर में उसकी पुनर्प्रतिष्ठा की घोषणा समस्त विश्व में करो ।



